भारत का सांस्कृतिक इतिहास

लेखक
प्रो० एस० एम० चाँद
एम ए, एल एल बी
निदेशक
राष्ट्रीय इतिहास संस्थान

दी स्टूडेन्ट्स बुक कम्पनी

प्रथम संस्करण : 1986

मूल्य : 75 00

प्रकाशक : दी स्टूडेण्ट्स बुक कम्पनी
चौड़ा रास्ता, जयपुर 302003
फोन : 72455, 74087

मुद्रक : वी के कम्पोजिंग सेन्टर
809, रावों का चौक, जाट के कुए का रास्ता चांदपोल बाजार जयपुर 1

Bharat ka Sanskritik Itihas S M CHAND
Cultural History Rs 75 00

प्राक्कथन

सस्कृति सर्वोत्तम प्रकाशन माना गया है। सस्कृति सरिता का प्रवाह माग है, जो समय पर बदलता रहता है। इसलिए सस्कृति को सामाजिक व्यवस्था के साथ मिलाकर देखा जाता है। वास्तव मे, सस्कृति जीवन के उन समनोलो का नाम है, जो मनुष्य के अन्दर व्यवहार, ज्ञान एव विवेक उत्पन्न करते हैं। सस्कृति ही मनुष्य के सामाजिक व्यवहारो को निश्चित करती है, और मानवीय सस्थाओ को गति प्रदान करती है। सस्कृति साहित्य एव भाषा को सवारती है, और मानव जीवन के आदश एव सिद्धान्तो को प्रकाशमान करती है। सस्कृति समाज के भावनात्मक एव आदश विचारो मे निहित है। इस तरह कहा जा सकता है कि जीवन के सवतो मुखी विकास हेतु 'सस्कृति' एक अपरिहाय साधन है।

इस सन्दर्भ मे, भारतीय सस्कृति का इतिहास बहुत विस्तृत एव रोचक है। जहा विश्व की अनेक प्राचीन सभ्यताएँ विलुप्त हो चुकी हैं, वहा भारत की सभ्यता एव सस्कृति के अवशेष हजारो वर्षो के अतिक्रमण पर भी अद्यावदि उपलब्ध हैं। प्रोफेसर हुमायूँ कबीर के शब्दो में, "भारतीय सस्कृति की कहानी एकता और समाधानो का समन्वय है तथा प्राचीन परम्पराओ और नवीन मानो के पूण सयोग की तथा उन्नति की कहानी है। यह प्राचीनकाल मे रही है और जब तक यह विश्व रहेगा तब तक हमेशा रहेगी।"

भारत स्वतन्त्र होने के पश्चात् हमारे देश के इतिहास का अध्ययन राष्ट्रीय एकता एव धमनिरपेक्ष वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करना जरूरी हो गया है। ऐसा करने पर ही, हम भारतीय सभ्यता व सस्कृति के प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक काल के सच्चे स्वरूप का दिग्दशन कर सकते है।

प्रस्तुत पुस्तक मे भारतीय इतिहास के घटनाक्रम पर निष्पक्ष दृष्टि से प्रकाश डाला गया है। इसमे धार्मिक, सामाजिक, सास्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सभी पक्षो के क्रमिक विकास का समुचित चित्रण किया गया है। उपलब्ध सामग्री के आधार पर इस ग्रन्थ को सुरुचिपूर्ण, सरल एव उपयोगी बनाने का भरसक प्रयास किया गया है।

देश विदेश के ख्यातिप्राप्त इतिहासकारों एवं विद्वानों द्वारा भारतीय सांस्कृतिक इतिहास पर रचित हिन्दी, उर्दू व अंग्रेजी ग्रन्थों से, इस पुस्तक मे, उपयुक्त सामग्री सधन्यवादपूर्वक ली गई है, जिसके लिए लेखक उनका अत्यन्त आभारी है।

पुस्तक को यथासम्भव उपादेय एवं त्रुटिमुक्त बनाने का पूरा प्रयत्न किया गया है। सहृदय विद्वानों के बहुमूल्य सुझावों का लेखक स्वागत करेगा। अन्त में लेखक अपने प्रकाशक श्री ताराचन्द जी शर्मा को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने व्यक्तिगत रुचि लेकर पुस्तक को समय पर आकर्षक रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया।

मोहिनी बाजार
ब्यावर (राजस्थान)

—एस एम चाँद

विषय-क्रम

विषय-प्रवेश
(Introduction)

I 'सभ्यता' और 'सस्कृति' से तात्पर्य
II भारतीय सस्कृति का स्वरूप विशेषताएँ
III भारतीय सस्कृति की मूलभूत एकता

भारतीय सभ्यता और सस्कृति के इतिहास का अध्ययन करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि (1) 'सभ्यता' और 'सस्कृति' का क्या अर्थ है तथा इन दोनो का आपस मे क्या सम्बन्ध है ? (2) भारतीय सभ्यता व सस्कृति का वास्तविक स्वरूप क्या है ? और (3) उसकी विशिष्टता एव मूलभूत एकता के क्या मौलिक कारण है ?

I सभ्यता एव सस्कृति का अर्थ एव परिभाषा

अक्सर 'सभ्यता' और सस्कृति' दोनो की चर्चा साथ साथ की जाती है। इसलिए जन साधारण इन दोनो शब्दो का पर्यायवाची समझने की भूल कर बठते हैं। परन्तु, शास्त्र की दृष्टि मे इन दोनो में आधारभूत अन्तर है। साधारण शब्दो मे इनकी तुलना मनुष्य के बाह्य शरीर एव आत्मा से की जाती है, अर्थात यदि सभ्यता मानव जीवन का बाह्य स्वरूप है तो सस्कृति उसकी आत्मा। किन्तु, एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हुए भी दोनो का अपना अपना स्थान एव महत्व है तथा दोनो के अर्थो एव स्वरूप म बडा अन्तर है।

सभ्यता का अर्थ एव स्वरूप —सभ्यता मानव विकास की प्रथम सीढी है। ऐतिहासिक स्तर पर आदिम मानव ने अपने इहलौकिक अथवा भौतिक सुख के लिए अनेक उपादानो की खोज की। उसने उनका विकास किया। इस तरह मानव समाज ने सभ्यता की ओर कदम बढाया। सभ्यता का सम्बन्ध उन उपकरणो से है जो मनुष्य अपने इहलौकिक जीवन को सुखी बनाने के लिए जुटाता है, परन्तु इसका स्वरूप सदैव परिवर्तित होता रहता है। पाषाण युग से लेकर आज तक अनेक परिवर्तन हो चुके हैं। सुख सुविधा के लिए मनुष्य ने अनेक उपकरण जुटाए हैं। यह सब विकास सभ्यता के अन्तर्गत आता है।

सभ्यता का शाब्दिक अर्थ 'समाज की विकसित तथा शिष्ट अवस्था' माना जाता है। प्रो० हुमायूँ कबीर के मतानुसार 'सभ्यता जीवन की सगठित सस्था है, जो नागरिक समाज को सभव बनाती है।" नागरिक समाज सहकारी जीवन की *परिस्थितिया निर्मित करता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति फलादयी और निर्माणात्मक* कार्यों मे लगा रहता है।

जीवन मात्र के तीन मुख्य ऐहिक ध्येय हैं—अशन (भोजन), वसन (वस्त्र) और निवसन (निवास)। जब से मनुष्य ने मानवी बानक अपनाया है तभी से वह इन तीन आवश्यकताओ की पूर्ति के साधन जुटाने म सलग्न रहा है। इसी हेतु वह विविध सामाजिक तथा राजनीतिक सस्थाओ और आर्थिक यन्त्रो और साधनो का अन्वेषण करता रहा है। इनका क्रम सुदूर अतीत से, जब से उसने पत्थर के हथियार और औजार बनाना जान पाया था, आज तक आधुनिक हवाई जहाज, रेल, तार, लोहे और कपडे के विशाल कारखाने आदि के रूप मे अनवरत रूप से चला आ रहा है। उसकी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सस्थाओ का भी मुख्य-तया यही उद्देश्य रहा है कि मनुष्य-जीवन की इन तीन आधारभूत आवश्यकताओ की पूर्ति सरलता, सुगमता और विश्वसनीय रूप से हो सके। इन समस्त रचनाओ, सस्थाओ और साधनो का सम्बद्ध और सस्था रूप व्यवस्था का नाम ही 'सभ्यता' है। साराश मे मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति एव सतुष्टि के लिए किये गये प्रयास और उनकी अभिव्यक्ति का नाम ही 'सभ्यता' है।

'सस्कृति' का अर्थ एव स्वरूप—'सस्कृति' एक ऐसा शब्द है जिसका अर्थ *समझना तो बहुत सरल है किन्तु जिसकी निश्चित परिभाषा देना सरल नहीं है।* यह एक ऐसा शब्द है जिसे प्राय विद्वानो द्वारा अलग अलग अर्थों में प्रयुक्त किया जाता रहा है। साधारणत सस्कृति शब्द का अर्थ 'सुधरी हुई अच्छी स्थिति' माना गया है। किसी भी देश, जाति अथवा समुदाय विशेष की सस्कृति से अभिप्राय होता है—उस देश, जाति अथवा समुदाय के लोगो के रहन-सहन अथवा जीवन यापन का तरीका।

प्रत्येक सभ्यता के क्रमिक विकास मे एक स्तर आता है जब वह विशेष मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक आदर्शों का निर्माण कर लेता है। यह उसके सामूहिक जीवन मे इस तरह घुल मिल जाते हैं कि समस्त समाज इन उदात्त और सूक्ष्म विशेषताओ में रँग जाता है। उसके सभ्य जीवन की समस्त सामग्री इन उच्च ध्येयो की पूर्ति का एक साधन मात्र बन जाती है। उसकी समस्त रचनात्मक कृतियाँ इन 'सस्कृत', निखरे हुए, उद्देश्यो के प्रतीक हो जाते हैं।

विभिन्न विद्वानो ने सस्कृति की परिभाषा भिन्न भिन्न प्रकार से की है। बेकन के शब्दो मे, "सस्कृति में मानव की आतरिक एव स्वतन्त्र जीवन की अभिव्यक्ति होती है।" एक अन्य विद्वान डॉ० व्हाइट हेड ने लिखा है "Culture is

activity of thought and receptiveness to beauty and human feelings" अर्थात 'संस्कृति मानसिक प्रक्रिया है और सौन्दर्य तथा मानवीय अनुभूतियों को हृदयगम करने की क्षमता है।" दूसरे शब्दों मे, बौद्धिक चिन्तन के द्वारा सत्य की खोज, सौन्दर्य की अभिव्यक्ति और मानव प्रेम का विकास संस्कृति के प्रमुख तत्त्व हैं। "सत्य, शिव, सुन्दरम्" ही संस्कृति का महामन्त्र है। "सभ्यता" के सूक्ष्म, शुद्ध और उदात्त तत्त्वों के रचनात्मक विकास और पल्लवन का नाम "संस्कृति" है।

डॉ० रामधारीसिंह 'दिनकर' के अनुसार "संस्कृति एक ऐसा गुण है जो हमारे जीवन मे व्याप्त है। एक आत्मिक गुण है, जो मनुष्य स्वभाव मे, उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार फूलों मे सुगन्ध और दूध मे मक्खन।" प्रो० हुमायूँ कबीर ने लिखा है कि, "संस्कृति भाषा और कला, धर्म व दर्शन, सामाजिक रीति-रिवाजो व आदतों तथा राजनैतिक संस्थाओं तथा आर्थिक संगठनों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। इनमें से अलग अलग एक इकाई संस्कृति नहीं है, परन्तु संयुक्त रूप से वे जीवन की अभिव्यक्ति हैं, जिसे हम संस्कृति कहते हैं। संस्कृति सभ्यता से ही पुष्पित पल्लवित होती है।' डॉ० आबिद हुसैन के शब्दों मे, "संस्कृति किसी समाज मे निहित चरम मूल्यों की सामंजस्यपूर्ण चेतना है जिसकी अभिव्यक्ति उसने अपनी सामूहिक संस्थाओं मे की हो, जिसकी अभिव्यक्ति उसके व्यक्ति-सदस्यों ने अपने भाव स्वभाव, अपनी प्रवृत्तियों, अपने आचरण में और भौतिक वस्तुओं को दिये गये महत्त्वपूर्ण रूपों में की हो।" सत्य की खोज, सौन्दर्य की अभिव्यक्ति और मानव-प्रेम के विकास को सांस्कृतिक प्रेरणा का साधन कहा जा सकता है। सारांश में "संस्कृति किसी समाज की चरम-मूल्य विषयक भावना है जिसके अनुसार वह अपने जीवन को ढालना चाहता है।"

सभ्यता एवं संस्कृति के बीच सम्बन्ध—सभ्यता और संस्कृति का सम्बन्ध और इनके बीच अन्तर को यथेष्ट रूप से समझने के लिए इनकी तुलना क्रमशः मानव शरीर तथा आत्मा से की जा सकती है। 'सभ्यता' देह है, तो 'संस्कृति' उसमें अनुप्राणित आत्मा। जैसे देह का वर्णन सरल है, परन्तु आत्मा का दिग्दर्शन कराना कठिन है, इसी तरह 'सभ्यता' का विशेष चित्रण आसान होता है, परन्तु 'संस्कृति' विशेष का वास्तविक बोध और विवेचन केवल सुहृद प्रयास, निरन्तर अनुसंधान और सूक्ष्म चिन्तन द्वारा ही सम्भव है।

प्रो० सी ई एम जोड ने सभ्यता और संस्कृति का भेद स्पष्ट करते हुए लिखा है 'Culture is what we are, civilization is what we make" प्रो० हुमायूँ कबीर के मतानुसार "एक सीमा तक सभ्यता के विकास और विस्तार के बाद ही संस्कृति का उद्भव और विकास संभव है।" डॉ० आबिद हुसैन ने लिखा है कि सभ्यता किसी जाति या राष्ट्र के सांस्कृतिक विकास की वह अवस्था

1

है, जब वह बडे बडे स्थानो मे— जिन्हे हम नगर कहते हैं—विकसित होती है। उनमे भौतिक जीवन का अधिक ऊँचा स्तर परिलक्षित होता है। पाश्चात्य लोग इसे 'रहन-सहन का ऊँचा स्तर' कहते है। लेकिन भौतिक जीवन के ऊँचे स्तर में सास्कृतिक तत्त्व तभी होता है जब वह किसी चरम नैतिक मूल्य से अनुप्राणित हो या उसकी सिद्धि का साधन बने।

सभ्यता और सस्कृति का आधार—(1) सभ्यता के विकास का प्रथम आधार हमारा भूमण्डल है। प्राकृतिक परिस्थितियाँ, प्रदेश विशेष के रहन सहन के ढंग, खान पान की रीतियाँ, उत्पादन व्यवस्था, व्यवसाय के साधन, और इन क्रियाओं की उपयुक्त सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था का निरूपण सभ्यता करती है। (2) सभ्यता के विकास का दूसरा आधार समूह विशेष के प्राकृतिक गुण और सस्कार हैं। भूगोल और इतिहास की भिन्नताओ के कारण भिन्न भिन्न जातियो मे, भिन्न भिन्न गुण या योग्यताएँ पाई जाती हैं जो उनकी सभ्यता और सस्कृति मे प्रदर्शित होती हैं। जातियो के पारस्परिक आदान प्रदान भी उनकी सभ्यता और सस्कृति को प्रभावित करते रहते हैं।

II भारतीय सस्कृति का स्वरूप और विशेषताएँ

भारतीय सभ्यता विश्व की प्राचीनतम एव श्रेष्ठतम सभ्यताओ मे से एक है। इसे मानव समाज की एक अमूल्य निधि कहा जा सकता है। यदि ससार मे कोई सस्कृति अमर कही जा सकती है तो निस्सन्देह, भारतीय सस्कृति ही वह सस्कृति है। आज हम जिसे *'भारतीय सस्कृति'* कह कर पुकारते हैं वह किसी एक जाति, सम्प्रदाय अथवा वर्ग की कृति नही है। प्राय कुछ विद्वान हिन्दू सस्कृति को ही भारतीय सस्कृति मान बैठने की भूल कर बैठते हैं। किन्तु हम यह ध्यान रखना चाहिए कि 'भारतीय सस्कृति' से हमारा अभिप्राय केवल मात्र 'हिन्दू सस्कृति' से कभी नही है। यह सही है कि भारतीय सस्कृति के विकास म प्रमुखतम योगदान हिन्दू जाति का ही रहा है, किन्तु इसके स्वरूप को निखारने तथा सजाने सँवारने मे जैन, बौद्ध, मुस्लिम तथा ईसाई सप्रदायो एव सस्कृतियो ने जो महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है उसे भी नजर अन्दाज नही किया जा सकता है। कहने का अभिप्राय यह है कि आज जिसे हम भारतीय सस्कृति के नाम से जानते हैं, वह किसी एक जाति अथवा सम्प्रदाय की देन नही बल्कि हिन्दू बौद्ध, जैन, मुस्लिम, ईसाई अनेक जातिया एव सस्कृतियो से ग्रहण किये गये तत्त्वों का समन्वित एव सम्मिश्रित रूप है। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टगोर के शब्दो मे—

"हिन्दू, बौद्ध, सिख, जैन, पारसी, मुसलमान, ख्रिस्तानी
पूरब, पश्चिम आसे, तब सिहासन आस, प्रेमहार हम गाथा"

भारतीय सस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ—एशिया के अन्तर्गत भारत एक विस्तीर्ण प्रायद्वीप है, जिसका आकार एक विषमबाहु चतुर्भुज के समान प्रतीत

3 समन्वय शक्ति एव ग्रहणशीलता—बाहरी तत्वा को पचाने की क्षमता तथा समयानुकूल परिवर्तन भारतीय सस्कृति की प्रमुख विशेपता एव गुण ह। इसकी सहिष्णुता और सहनशीलता का परिचय इस बात मे मिलता हैं कि यहाँ समय-समय पर विभिन्न धार्मिक एव दार्शनिक सिद्धान्तो एव सम्प्रदायो का उदय होता रहा। सहिष्णुता के अनुकूल इस सस्कृति मे सामजस्य की भी अपरिमित शक्ति विद्यमान रही हैं। इसी कारण भारतीय सस्कृति ने विभिन्न विचारधाराओ, धार्मिक विश्वासा, रहन-सहन और भापा-बोलियो के बीच समन्वय कायम करने मे सफलता प्राप्त कर ली। प्रो० डॉडवेल के अनुसार, "भारतीय सस्कृति एक विशाल महासागर के समान है जिसमें अनेक नदियाँ (विभिन्न जातियों की सभ्यताएँ) आ-आ कर समाहित होती रही ह।" प्रो० हुमायूँ कबीर के शब्दो मे, "भारतीय सस्कृति एकता और समन्वय, समाधान और विकास तथा पुरातन परम्पराओं एव नये मूल्यों के सम्पूर्ण समरसता तथा एकरूपता की कहानी है।"

4 धर्म प्रधानता एव आध्यात्मिकता—भारतीय सस्कृति की एक प्रमुख विशेपता उसकी धर्म प्रधानता है जिसका प्रभाव यहाँ जीवन के प्राय सभी महत्त्वपूर्ण पहलुओ पर देखा जा सकता है। धर्म के क्षेत्र मे विश्व के अन्य देशो की अपेक्षा भारत में अनेकानेक धार्मिक प्रयोग हुए हैं। सम्राट अशोक का कथन है—"लोगो को दूसरे के धर्म के बारे म सुनना चाहिए और उसका आदर करना चाहिए।" आर्य, जैन, बौद्ध, इस्लाम एव ईसाई धर्मों ने भारतीयो के जीवन का धर्म से ओत प्रोत कर दिया। भारतीय जीवन धर्ममय हो गया। भारतीय चिन्तन पर आध्यात्मिकता की स्पष्ट छाप दीख पडती है। "आत्मा को पहचानो" (आत्मान विजानीहि)—भारतीय सस्कृति की सार्वभौम घोषणा रही है। साथ ही, मनुष्य के लौकिक जीवन को सुखी एव समृद्ध बनाने पर भी बल दिया गया है।

भारतीय सस्कृति की उपर्युक्त वर्णित विशेपताओ पर विचार करने से अपने अतीत के ऊपर गौरव का अनुभव करना स्वाभाविक ह। इतिहास इस बात का साक्षी ह कि भारतीय सस्कृति के उच्च आदर्शों के फलस्वरूप ही हमे महान अशोक और सम्राट अकबर जसे प्रबुद्ध शासक प्राप्त हुए, जिन्होने भारतीय सस्कृति की धारा को सशक्त और प्रवाहमयी बनाया। उन्होंने हमे धार्मिक भेद भाव को भुलाकर एकता और भाईचारे से रहने की प्ररणा दी।

महत्त्व—साराश मे, भारतीय सस्कृति की ग्रहणशीलता तथा समन्वय की प्रवृत्ति वर्तमान भारत के लिए एक वरदान है। आधुनिक विश्व म अनेक प्रकार की विचारधाराओ, आदर्शों तथा सस्कृतिया का संघर्ष चल रहा ह। इनके सफल समन्वय द्वारा ही एक विश्व समाज का निर्माण किया जा सकता ह। विश्व के समक्ष उपस्थित इस कठिन कार्य मे समन्वयात्मक भारतीय सस्कृति निश्चय ही सही मार्ग दिखा सकती है।

III "भारत मे विविधता मे मौलिक एकता"

"भारत में वश, वण, भाषा, वश भूषा व रीति रिवाज सम्ब धी अनगिनत विभिन्नताओ म भी एक अखण्ड सारभूत एकता है।"

—डॉ० वी० ए० स्मिथ

अक्सर कहा जाता है कि भारतवर्ष की एकता उसकी विविधताओ मे छिपी है और यह बात जरा भी गलत नही है, क्योंकि अपने देश की एकता जितनी प्रकट है, उसकी विविधताएँ भी उतनी प्रत्यक्ष हैं। "भारत म विभिन्न प्रकार की जलवायु पाई जाती है। भारत म कही गगनचुम्बी पवत हैं, तो कही पर पृथ्वी समुद्रतल से भी अधिक नीची है। यदि भारतवर्ष को विभिन्न जातियो, रीति रिवाज, भाषाओ, धर्मों आदि का सग्रहालय (अजायबघर) कहा जाय तो अनुचित न होगा।" पाश्चात्य इतिहासकारो के उपयुक्त कथन से ऐसा ज्ञात होने लगता है कि भारत में विभिन्नताएं अत्यधिक मात्रा म वतमान हैं अतएव यह एक देश नही है और इस कारण इस देश म पूर्ण एकता भी सम्भव नही है। किन्तु सत्य तो यह है कि पाश्चात्य विद्वानो ने भारत की इन विभिन्नताओ पर गहन विचार नही किया अन्यथा उनको अपनी विचारधारा म अवश्य ही परिवर्तन करना पडता कि "विशाल होते हुए भी भारत की एकता भौगोलिक नक्शे पर और इतिहास पर साफ लिखी हुई है। अस्तु, यदि हम गम्भीरतापूवक दूर दृष्टि से विचार करें तो अनेक विविधताओ के होते हुए भी भारत की आधारभूत एकता को समझने म कठिनाई नही होगी। इस एकता के विभिन्न पक्ष निम्नानुसार हैं

1 भौगोलिक एकता—भारत भौगोलिक दृष्टि से विशिष्ट प्राकृतिक सीमाओ स सुरक्षित है। डा० राजबली पाण्डे के शब्दो म, "प्रकृति ने इस भौगोलिक इकाई को इतनी दृढता स बनाया है कि यह देश क आन्तरिक विभाजनो को अच्छी तरह ढक देती है।" भौगोलिक एकता तो भारत म इतनी है कि उसकी होड [illegible] का दावा कम ही अन्य राष्ट्रीय राज्य कर सकते हैं। प्राचीन शास्त्रों [illegible] योजन वाले देश का वर्णन इन शब्दो म किया गया है—"हिमालय स [illegible] विस्तृत था" और जो एक चक्रवर्ती सम्राट के साम्राज्य क [illegible]। मध्य युग के मुस्लिम शासनकाल म भी भारत एक भौगोलिक इकाई [illegible] और फलस्वरूप यहाँ सावभौमिक सत्ता स्थापित करने के प्रयत्न [illegible]। आधुनिक युग के शासनकाल में वतमान यातायात के साधनो की [illegible] तथा समान शासन से यह भौगोलिक एकता और भी अधिक [illegible]।

2 राजनतिक एकता—भारतवासी देश की [illegible] एकता से भली [illegible] अवगत थे। प्राचीन काल से राजाओ की मनोकामना दिग्विजय करके चक्रवर्ती होने की रहती थी। विष्णुगुप्त चाणक्य कौटिल्य के अनुसार, "चक्रवर्ती [illegible] साम्राज्य, हिमालय पवत म समुद्र तक विस्तृत होना चाहिए।" [illegible]

अशोक तथा समुद्रगुप्त के समय देश का शासन-संचालन केन्द्र से होता था और देश में राजनैतिक एकता विद्यमान थी। मध्य युग में अलाउद्दीन खिल्जी और बाद में पुनः औरंगजेब ने समूचे भारत को विजित कर राजनैतिक दृष्टि से एक किया। केन्द्रीयकरण और विकेन्द्रीयकरण की प्रवृत्तियों के बने रहने पर भी भारत की राजनैतिक एकता के आदर्श विद्यमान रहे हैं और उन्हें कार्यान्वित करने के प्रयत्न जारी रहे। ब्रिटिश शासनकाल में तो यह राजनैतिक एकता पूर्णतया स्थापित हो गयी।

3 **सांस्कृतिक एकता**—जब भारत के सांस्कृतिक इतिहास पर दृष्टि डालते हैं, तो हम देखते हैं कि बहुरंगी विविधताओं के बावजूद भारतीयों के सोचने समझने में, उनकी अनुभूतियों में, उनके रहन-सहन में एक मूलभूत एकता है। प्रो० हुमायूँ कबीर ने ठीक ही लिखा है कि, "भारतीय संस्कृति की कहानी, एकता और समाधानों का समन्वय है तथा प्राचीन परम्पराओं और नवीन मानों के पूर्ण संयोग की उन्नति की कहानी है। यह प्राचीन काल में रही है और जब तक यह विश्व रहेगा तब तक हमेशा रहेगी। विश्व की अन्य अनेक संस्कृतियाँ नष्ट हो गयी परन्तु भारतीय संस्कृति व उसकी एकता अमर है।" भारत और भारतीय संस्कृति में वही सम्बन्ध है जो शरीर और आत्मा का है।

देश के किसी भी भाग में, चाहे जहाँ भी चले जायें आपको स्थान-स्थान पर एक-सी संस्कृति के मन्दिर तथा मस्जिद दिखायी देंगे। एक ही तरह के लोगों से मुलाकात होगी जो मन्दिर में पूजा और मस्जिद में नमाज पढ़कर परमात्मा की आराधना करते हैं और विशिष्ट अवसरों पर व्रत या रोजे रखते हैं। हिन्दू और मुसलमान विभिन्न धर्मावलम्बी होते हुए भी, सकड़ों वर्षों की लम्बी संगति के फलस्वरूप उनके बीच संस्कृति की बहुत-सी समान बातें पैदा हो गयी हैं, जो उन्हें दिनों दिन आपस में नजदीक लाती जा रही हैं।

विविधता में एकता का जीता जागता स्वरूप—धर्म के केन्द्र से बाहर जो संस्कृति की विशाल परिधि है, उसके भीतर बसने वाले सभी भारतीयों के बीच एक तरह की सांस्कृतिक एकता भी है जो उन्हें दूसरे देशों से अलग करती है। संसार के प्रत्येक देश पर अगर हम अलग अलग विचार करें तो हमें पता चलेगा कि हर एक देश के प्रत्येक निवासी की एक निजी सांस्कृतिक विशेषता होती है, जो उस देश के प्रत्येक निवासी की चाल ढाल, बात चीत, रहन सहन, खान पान और तौर तरीके और आदतों से टपकती रहती है। भारत में भी योरोपीय पोशाक खूब चलती हुई है, लेकिन योरपीय लिबास में सजे हुए भारतीयों के बीच एक अंग्रेज को खड़ा कर दिया जाय, तो वह आसानी से पहचान लिया जायगा। इसी तरह एक भारतवासी, चाहे वह हिन्दू मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई कोई भी हो, भारत से बाहर जाने पर आसानी से पहचान लिया जाता है कि वह भारतीय

यानी हिंदुस्तानी है। यही वह सांस्कृतिक एकता या शक्ति है जो भारत को एक बनाये हुए है। यही वह विशेषता है जो उन लोगों में पैदा होती है—जो एक देश में रहते हैं, एक तरह की जिंदगी बसर करते हैं और एक तरह के दर्शन और एक तरह की आदतों का विकास करके एक राष्ट्र के सदस्य हो जाते हैं।

स्वाधीन लोकतान्त्रिक भारत की एक-सी शासन-व्यवस्था के अन्तर्गत सभी लोगों ने समान नागरिकता प्राप्त की है। इससे पारस्परिक जातीय भेद-भाव विलुप्त हो गया और देश में राष्ट्रीय एकता की नवीन प्रगतिशील विचारधाराओं के फलस्वरूप उदार मानवीय भावनाओं का उदय हुआ।

निष्कर्ष—डॉ० वी० ए० स्मिथ का कथन उचित है कि "भारत की अनेक बातें उसे संसार में अलग बतलाती हैं, परन्तु समस्त भारत की अनेक बातों में एकरूपता है।" भारत की मूलभूत एकता के समर्थन में सर हर्बर्ट रिजले ने ठीक ही कहा है कि "भारत में दर्शक को भौतिक क्षेत्र में और सामाजिक रूप में भाषा, आचार और धर्म में जो विविधता दृष्टिगोचर होती है, उसकी तह में हिमालय से कन्याकुमारी तक एक आन्तरिक एकता है।"

□□□

2

आधारभूत धार्मिक विचार

(Fundamental Religious Ideas)

उपनिषद, गीता और योग

(Upanishad, Geeta and Yoga)

I उपनिषद धार्मिक व आध्यात्मिक सिद्धान्त
II भगवद्गीता और उसकी शिक्षाएं
III योग दर्शन के अष्टांग सिद्धान्त

I उपनिषद धार्मिक व आध्यात्मिक सिद्धान्त

भारतीय धर्म और दर्शन का जितना सुन्दर निरूपण उपनिषदो में किया गया है उतना अन्यत्र कहीं देखने को नही मिलता है। भारतीय संस्कृति में पाये जाने वाले समस्त विचारों एवं दार्शनिक सिद्धान्तों का स्वरूप हमें इन उपनिषदों में दिखाई पडता है। हमारे यहाँ प्रचलित सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक आदि दार्शनिक मतो तथा चार्वाक, जैन, बौद्ध आदि नास्तिक दार्शनिक मतों के मुख्य सिद्धान्त उपनिषदों में मिल जाते हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में प्रचलित द्वैत अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि विभिन्न दार्शनिक विचारधाराएं भी उपनिषदों पर आधारित हैं।

उपनिषद क्या है ? विद्वानों द्वारा उपनिषदों को वैदिक साहित्य का ही एक विशिष्ट अंग माना जाता है। वेद कुल मिलाकर चार हैं—ऋग्वेद, सामवेद यजुर्वेद और अथर्ववेद। इन वेदों को मानव ज्ञान के प्राचीनतम अभिलेख कहना कोई अतिशयोक्ति न होगी। प्रत्येक वेद के चार भाग हैं—संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद।

(i) संहिता—वेदो के संहिता नामक भाग में धार्मिक कार्यों में प्रयुक्त होने वाले मंत्रों और प्रार्थनाओं का संग्रह मिलता है।

(ii) ब्राह्मण—ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना संहिताओं के बाद हुई। इनमें यज्ञों की विधियाँ तथा अन्य कर्मकाण्डों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है।

(iii) **आरण्यक**—आरण्यक ग्रन्थो मे अधिकाशत उन धार्मिक कर्मकाण्डो की व्याख्या मिलती है जिनका उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थो मे किया गया है। इनमे यज्ञो के रहस्य तथा अन्य अनेक दार्शनिक बातो का विवेचन मिलता है।

(iv) **उपनिषद**—वस्तुत आरण्यको को ही उपनिषदो का जनक कहा जा सकता है। इनमे हमे मानव जीवन, आत्मा, परमात्मा तथा सृष्टि विषयक अनेक गूढ विषयो पर गहन और सूक्ष्म चिन्तन देखने को मिलता है। वैदिक काल की सस्कृति के बारे मे हमारा ज्ञान तब तक पूर्ण नही माना जा सकता है जब तक हम उपनिषदो तथा उनमे निहित ज्ञान एव दार्शनिक विचारधाराओ को हृदयगम नही कर लेते। इसी कारण उपनिषदो को 'वेदान्त' भी कहा जाता है। एक अन्य विचारानुसार, चूँकि वेदो के अन्तिम भाग मे अथवा तुरन्त ही बाद उपनिषदो की रचना हुई, इसलिए भी उन्हे 'वेदान्त' कहा गया।

उपनिषदो का अर्थ परिचय—'उपनिषद' शब्द के अर्थ के बारे में अनेक मत प्रचलित हैं। शाब्दिक रूप से उपनिषद का अर्थ है—**'श्रद्धा सहित निकट बैठना'**। उप=निकट, नि=नियमपूर्वक, तथा **षद**=बैठना, अर्थात् गुरु के समीप बैठकर शिक्षा ग्रहण करना। **मैक्समूलर** का कथन है कि उपनिषद का प्रारम्भिक अर्थ होता है—**गोष्ठी**—एक ऐसी गोष्ठी जिसमे शिष्यगण गुरु के चारो ओर एकत्रित हो। बाद मे चलकर इन उपनिषदो (अर्थात गोष्ठियो) से जन्म लेने वाले दार्शनिक विचारो के सग्रहो को भी इसी नाम से पुकारा जाने लगा। **डॉ० राधाकृष्णन** के मतानुसार, उपनिषद शब्द का अर्थ है, "वह ज्ञान जो कि भ्रम का निवारण करके हम सत्य तक पहुँचने मे समर्थ बनाता है।" प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सभी विद्वान इस बात पर सहमत है कि अपने रहस्यमय अथवा गूढ विचारो के कारण ही उन्हे उपनिषद कहा जाता है। ऐसी स्थिति मे **डायसन** नामक विद्वान का यह कथन आसानी से स्वीकार किया जा सकता है कि उपनिषद का अर्थ है—**"रहस्यमय विचार।"**

प्रमुख उपनिषद—उपनिषदो की सख्या के बारे मे विद्वानो मे मतभेद है। **मुक्तिकोपनिषद** के अनुसार उनकी कुल सख्या 108 है। किन्तु विद्वान् लोग केवल उन्ही उपनिषदो को महत्त्व देते हैं जिनकी रचना बौद्ध काल से पूर्व हो चुकी थी। यह सर्वमान्य तथ्य है कि बुद्ध के बाद भी अनेक उपनिषद रचे गये। साधारणत विद्वानो का यह मत है कि जिन 11 उपनिषदो की टीका आदि—गुरु शकराचार्य ने लिखी है, वही प्रमुख उपनिषद हैं। इन प्रमुख ग्यारह उपनिषदो के नाम हैं—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर। ये सभी सम्भवत बुद्ध से पहले की रचनाएँ हैं। ये गद्य **और** पद्य दोनों शैलियो मे लिखे हुए हैं।

उपनिषदों का रचना-काल—उपनिषदों के रचनाकाल के बारे मे भी इतिहासकारो मे मतभेद है। कुछ विद्वानो का मत है कि उपनिषदो की रचना वेदो

के साथ साथ हुई। इसके विपरीत कुछ विद्वान यह मानते हैं कि इनका रचनाकाल वेदों के बाद का है। उपनिषदों की रचना पहिले मौखिक रूप से की गयी थी तथा उन्हें लिखित रूप बहुत बाद में जाकर प्राप्त हुआ। ऐसी स्थिति में उनकी रचना का सही समय बताना अत्यन्त कठिन है। इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि सभी उपनिषद एक ही काल में नहीं रचे गये। इनमें से कुछ अति प्राचीन हैं तथा कुछ काफी बाद के। यही कारण है कि कुछ प्राचीन उपनिषद वेदों में ही सम्मिलित मिलते हैं जबकि बाद के उपनिषद वेदों से पृथक पाये जाते हैं। जो उपनिषद वेदों के साथ सम्मिलित मिलते हैं उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—(i) ईशोपनिषद, जो यजुर्वेद का अंतिम अध्याय है। (ii) छान्दोग्य उपनिषद, यह सामवेद के एक ब्राह्मण के अन्तर्गत मिलता है। (iii) वृहदारण्यक उपनिषद, जो शतपथ ब्राह्मण का एक भाग है।

उपनिषदों का दर्शन आधारभूत विचार

उपनिषदों में भारतीय तत्व ज्ञान और धर्म सिद्धान्त भरा हुआ है। हमारे ज्ञान के अक्षय स्रोत यही हैं। यद्यपि उपनिषद वैदिक साहित्य के ही अंग हैं, फिर भी वेदों और उपनिषदों के विचारों में मौलिक अन्तर है। उपनिषदों में वैदिक यज्ञों की अर्थहीनता प्रदर्शित की गई है और ब्राह्मण वर्ग द्वारा संरक्षित कर्म-काण्डों का विरोध किया गया है।

उपनिषदों में ज्ञान मार्ग का आदर्श प्रस्तुत किया गया है जो प्रारम्भिक वैदिक धर्म के प्रवृत्ति परक अथवा उपासना और कर्मकाण्ड प्रधान विचारों से भिन्न हैं। जीवन मृत्यु, आत्मा, ब्रह्म, प्रकृति जैसे शाश्वत प्रश्नों पर वेदों से अधिक विस्तार से उपनिषदों में चर्चा की गई है। उपनिषदों में धर्म से हटकर आत्मा, ब्रह्म, प्रकृति, मोक्ष, ज्ञान कर्म और पुनर्जन्म पर विस्तार से चर्चा की गई है। उपनिषदों के रचयिता ऋषियों ने धार्मिक अनुष्ठानों और यज्ञ आदि के स्थान पर मानव के अच्छे-बुरे कर्मों से ही आत्मा के मोक्ष की चर्चा की। उन्होंने दार्शनिक आध्यात्मिक विचारों को धर्म निरपेक्ष रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। उन्होंने वेदों के धार्मिक आवरण और आडम्बर से परे शुद्ध ब्रह्म ज्ञान और आत्मपरक तत्वों की खोज निकालने का सफल प्रयत्न किया। इसी ने उन्हें कुछ विशेषताएँ प्रदान की। उपनिषदों द्वारा प्रतिपादित धार्मिक और दार्शनिक विचारधारा के मुख्य बिन्दु निम्नानुसार हैं —

1. **जगत एक ठोस सत्य है**—उपनिषदों का कहना है कि जगत एक ठोस सत्य है। इसे माया, भ्रम, कल्पना अथवा मिथ्या कहना उचित नहीं है। समस्त सृष्टि का निर्माण पाँच तत्वों से हुआ है—पृथ्वी, जल, अग्नि, प्रकाश और वायु। इन पाँच तत्वों का स्वामी महातत्व है। यही महातत्व प्रकृति का मूलतत्व है, यही ब्रह्म है।

2 जगत ब्रह्म की अभिव्यक्ति है—उपनिषदो के अनुसार, यह जगत ब्रह्म की अभिव्यक्ति ह। वह ब्रह्म से उत्पन्न होता ह। उसी से पलता है और उसी मे समा जाता ह। मुण्डकोपनिषद के अनुसार, जिस प्रकार अग्नि से चिनगारियाँ निकलती हैं अथवा जसे भूमि से पौधे उगते हैं उसी प्रकार यह जगत भी ब्रह्म से निकलता है।

3 ब्रह्म का स्वरूप—ब्रह्म क्या है? इसका स्वरूप कैसा ह? उपनिषदो ने इन विषयो पर भी विचार प्रकट किये है। इनके अनुसार ब्रह्म चराचर जगत मे व्याप्त सूक्ष्म तत्त्व हैं। यह सूक्ष्म तत्त्व (अर्थात ब्रह्म) अग्नि, जल, पेड पौधो, तथा समस्त जगत मे मौजूद ह। छा दोग्य उपनिषद मे कहा गया है कि जिस प्रकार नमकीन जल के प्रत्यक भाग मे नमक रहता है उसी प्रकार ब्रह्म, जिसे आत्म चेतना भी कहा गया है, सृष्टि के कण-कण मे मौजूद ह। यही ब्रह्म ससार का सचालक है। ब्रह्म को निराकार, निर्विकार और चेतन माना गया ह। उसका अपना कोई स्वरूप नही है। ब्रह्म अनन्त ह। जगत उसके एक अश मात्र से बना ह। ब्रह्म से ही जीव की उत्पत्ति हुई है। उसी से आत्मा निकली ह।

4 आत्मा का स्वरूप—उपनिषदो के अनुसार, आत्मा का कोई निश्चित स्वरूप नही ह। वह अजर अमर और अशरीरी ह। वह जन्म मरण से परे है और शरीर के नष्ट होने पर भी नष्ट नही होती। आत्मा वह तत्त्व है जो जीवन का सचालन करता ह—यही चेतन शक्ति है। आत्मा उसी परमात्मा अथवा महातत्त्व का अश है। 'मानव शरीर मे आत्मा की ज्योति ही मनुष्य का मार्ग दर्शन करती ह।'

5 आत्मा और ब्रह्म की अभिन्नता—प्राय सभी उपनिषद एक बात का समवेत स्वर से प्रतिपादन करते हैं कि "मूल सत्य ब्रह्म है यही आत्मा है।' छांदोग्य उपनिषद म कहा गया है कि, शरीर मे रहने वाली आत्मा वास्तव मे ब्रह्म ही है तथा जसे ही यह (शरीर रूपी) नश्वर-बन्धन उतर जायेगा वैसे ही वह ब्रह्म मे लीन हो जायेगी।"

6 कर्मवाद और आवागमन—उपनिषदो के अनुसार कर्मवाद का सिद्धात सही है। मनुष्य जसे कर्म करता है, उसे वैसा ही फल भोगना पडता है। बुरे कर्म करने पर मनुष्य की आत्मा दूषित हो जाती है जिसके कारण वह सासारिक बधन से मुक्त नही हो पाता तथा उसे बार बार इस पृथ्वी पर जन्म लेना पडता है। इस प्रकार आवागमन का चक्र चलता रहता है, जब तक कि ज्ञानोदय से आत्मा का ब्रह्म में विलीन नही हो जाता। ज्ञानोदय सत्कर्म से होता है। इस तरह, कर्मों के द्वारा ही मनुष्य अपने भविष्य का निर्माण करता है।

7 जीवन का लक्ष्य मोक्ष—उपनिषदो ने मोक्ष को मानव-जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य माना है। उपनिषदो के अनुशीलन स मानव सासारिक सुखों के प्रति

विरक्ति उत्पन्न हो जाती है। वह ब्रह्म ज्ञान अथवा आत्म ज्ञान प्राप्त करने को आतुर हो जाता है। वह ऐसी किसी भी वस्तु से सन्तुष्ट नहीं हो सकता जो उसे अमृतत्व न प्रदान कराए। अस्तु, उपनिषद ब्रह्म ज्ञान को ही वास्तविक ज्ञान मानते हैं। जो व्यक्ति ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति कर लेता है उसका समस्त अज्ञान दूर हो जाता है तथा उसके कर्मों के प्रभाव नष्ट हो जाते है। वह ब्रह्म मे लीन होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। मोक्ष परम शान्ति की अवस्था है।

उपनिषदों का एकतत्त्ववाद (Monism)—सम्पूर्ण सत्ता का केवल एक ही स्रोत मानने की प्रवृत्ति को एकतत्त्ववाद या एकवाद कहा जाता है। एकतत्त्ववादी विचारधारा के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति जिस तत्त्व से हुई वह एक है। उसके समान या उससे अलग अन्य कुछ नही है। एकतत्त्ववाद का सिद्धात उपनिषदो की मुख्य शिक्षा है जिसके अनुसार सम्पूर्ण जगत के पीछे जो मूल आध्यात्मिक सत्ता है, वह एक ही है। जगत मे नित्य-तत्त्व अथवा वास्तविक सत्ता "ब्रह्म" और व्यक्ति के स्व का मूलतत्त्व "आत्मा' —ये दोनो वास्तव मे एक ही हैं।

उपनिषद सभी अस्तित्वमान वस्तुओ की एकता पर बल देते हैं। उनकी दृढ मान्यता है कि एक सर्वव्यापी सत्ता है जिसमे सभी वस्तुएँ स्थित हैं और जिसमें सभी वस्तुएँ विलीन हो जाती हैं। सारे जगत का मूल तत्त्व और व्यक्ति का मूल तत्त्व भिन्न नही हो सकते। उपनिषदो के अनुसार, "इस सृष्टि के पीछे एक ही सत्ता है, एक ही सत्य है, उसे चाहे ब्रह्म कहे अथवा आत्मा।" जब तक अज्ञान वश हम इनमे भेद करते रहते हैं और इनकी एकता की अनुभूति नही कर पाते तभी तक आवागमन के चक्र मे पडे रहते हैं। जिस क्षण इस एकता का ज्ञान हमें हो जाता है, उसी क्षण इस ससार एव पुनर्जन्म के चक्कर से मुक्ति मिल जाती है। *सारांश में उपनिषदो म ब्रह्म और जगत का एकत्व भलीभाँति प्रतिपादित किया* गया है। उपनिषद ऐसे रोचक सवादो से परिपूर्ण हैं जिनम एकतत्त्ववाद का अनूठा रूप देखने को मिलता है।

वेदों तथा उपनिषदो मे विचारो का अन्तर— उपनिषद वेदों की विचारधारा के विरोध मे एक नवीन विचारधारा का प्रतिपादन है। उपनिषदो मे स्थान-स्थान पर ब्राह्मणो के कर्म-काण्ड की कटु आलोचना मिलती है। मुण्डकोपनिषद मे पुरोहितो के व्यक्तित्व और अस्तित्व को भी चुनौती दी गई है। उसने यज्ञो के कर्म काण्ड को सारहीन, निरर्थक और हास्यास्पद निरूपित किया है—"यज्ञ एक टूटी नाव के समान है, इनके द्वारा जो भवसागर पार करना चाहते हैं, वे मूढ़ हैं।" वेद यज्ञ के माध्यम से मनुष्यों को शाश्वत सुख प्रदान करना चाहते हैं जब कि उपनिषदों के अनुसार यज्ञों से नश्वर सुख ही मिल सकता है। उपनिषदो ने सांसारिक सुख, भोगवाद और वैदिक धार्मिक यज्ञों व अनुष्ठानों के स्थान पर आत्म ज्ञान, सत्य के उद्घाटन और आध्यात्मिक चिंतन पर बल दिया। उपनिषदो से पहले आर्यों का

झुकाव सांसारिक भोगों की ओर अधिक था। उपनिषदकारों ने इसे अस्वीकार कर दिया। इसके विपरीत उन्होंने सांसारिक बन्धनों से छुटकारा प्राप्त कर आत्मा के मोक्ष को ही जीवन का मुख्य ध्येय माना।

वेदों में हमें बहुदेववाद के दर्शन होते हैं। वेदों में, प्रकृति की शक्तियों के देवीकरण के कारण, बहुदेववाद की प्रतिष्ठा है। इसके विपरीत, उपनिषदों में शुद्ध एकेश्वरवाद है। वे बहुदेववाद अथवा बाह्य प्रकृति की आराधना में विश्वास नहीं करते, वे परमतत्त्व की खोज में व्यस्त हैं। बृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया है कि "सब देवता केवल ब्रह्म की अभिव्यक्ति मात्र हैं और उसी पर आश्रित हैं।"

वेदों को सही अर्थों में दार्शनिक ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनमें तथ्यों पर पहुँचने के लिए किसी तर्क या युक्तिपूर्ण शैली को नहीं अपनाया गया है। इसके विपरीत उपनिषदों की दार्शनिक प्रवृत्ति स्पष्ट है। उनकी प्रवृत्ति उपासना से ध्यान की ओर, यज्ञ से चिन्तन की ओर तथा बाह्य प्रकृति की आराधना से आध्यात्मिक खोज की ओर उन्मुख है। सारांश में, उपनिषदकारों का दृष्टिकोण तर्क प्रधान था। वे पूर्वाग्रहों से ग्रसित न थे।

वेदों में सृष्टि का रचयिता ईश्वर और देवताओं को माना है। इसके विपरीत, उपनिषदों के अनुसार, पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु इन पाँच तत्त्वों से सृष्टि की रचना हुई है।

उपनिषदों में सदाचार की शिक्षा—उपनिषदों में कहा गया है कि "वेद पढ़ने से या विद्या से, अथवा ज्ञान से सिद्धि नहीं हो सकती सदाचार भी होना चाहिए।" ज्ञान और आचार एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। जब तक आचार ठीक नहीं है, हृदय में शांति नहीं हो सकती। अतः केवल यज्ञ, दान इत्यादि से मुक्ति नहीं हो सकती। अहंकार जीव को हर तरह से नीचे गिराता है। अतः अहंकार को छोड़कर ब्रह्म की ओर बढ़ना चाहिए। सच्चाई के महत्त्व की सार्वभौम घोषणा हमें मुण्डक उपनिषद के इस कथन में मिलती है—"सत्यमेवजयते नानृतम्" अर्थात् "सत्य की ही जीत होती है, असत्य की नहीं।" सत्य ही ब्रह्मज्ञान की ओर अग्रसर कर सकता है। बृहदारण्यक उपनिषद ने पवित्र आचरण पर जोर देते हुए कहा है, "मुझे असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।" उपनिषद में त्याग के साथ सांसारिक सुख भोगने की शिक्षा है, "यह सारा विश्व और उसमें जो कुछ है, ईश्वर में व्याप्त है। अतएव, त्याग के साथ भोग करो, किसी दूसरे के धन पर मत ललचाओ।"

उपनिषदों का महत्व—उपनिषद भारत के ही नहीं समस्त विश्व के श्रेष्ठ ग्रन्थ हैं। भारतीय दर्शन का जितना सुन्दर निरूपण उपनिषदों में किया गया है, उतना अन्यत्र देखने को नहीं मिलता है। डॉ० के० एम० पणिक्कर के शब्दों में, "कर्म, माया, मुक्ति, पुनर्जन्म आदि के सिद्धांत जिनका आज भी हिन्दू जीवन

को ढालने म पूरा पूरा हाथ ह उपनिषदा म विस्तृत रूप से समझाये गये हैं।" डॉ० एनीबीसेंट ने ठीक ही, "उपनिषदा को मानव चेतना का सर्वोच्च फल" कहा ह। उपनिषदा में जो शिक्षायें हैं उनम देवी कल्पना के ऊपर बल नहीं दिया गया ह। वह पूर्ण रूप से मानवीय हैं। उनम मानव-जाति क कल्याण का आदश ह।

उपनिषदों मे निहित ज्ञान के महत्त्व को न केवल भारतीय वरन् पश्चिमी विचारको ने भी सराहा ह तथा उससे लाभ उठान की चेष्टा की ह। जमनी के विख्यात दाशनिक एव विद्वान् शोपेनहार ने लिखा है कि, "सम्पूर्ण विश्व मे उपनिषदो के समान जीवन को ऊँचा उठाने वाला कोई ग्रन्थ नही ह। इनसे मुझे जीवन में शाति मिली ह। इन्ही से मृत्यु के समय शांति मिलेगी।" मैक्समूलर ने भी कहा है कि, उपनिषद वेदात दशन के प्रमुख स्रोत हैं। इनम मानव-तत्त्व चिन्तन अपनी पराकाष्ठा पर देखा जा सकता ह। "वे किसी भी काल और किसी भी दश के *मानव मस्तिष्क की अद्भुत सृष्टि समझे जायेंगे।*' गैडन के मतानुसार, "भारत में धार्मिक सुधार के सभी प्रयास उपनिषदो के अध्ययन से उत्पन्न हुए हैं।" साराश मे दाशनिक साहित्य के इन प्राचीनतम ग्रन्थो का विश्व के साहित्य में सबदा अपना स्थान रहेगा।

II भगवद्‌गीता और उसकी शिक्षाए (The Bhagwad Geeta)

महान ग्रन्थ—श्रीमदभगवदगीता की गणना विश्व साहित्य के जाज्वल्यमान ग्रन्थ रत्नो म की जाती है। बाइबिल के बाद गीता ही सभवत ऐसी पुस्तक है जिसका विश्व की अनेकानेक भाषाओ में अनुवाद किया गया है। डा० राधाकृष्णन ने इस ग्रन्थ के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि 'किसी ग्रन्थ का मनुष्य के मन पर कितना अधिकार ह उसे उस ग्रन्थ की कसौटी समझा जाए तो कहना होगा कि गीता भारतीय विचारधारा मे सबसे अधिक प्रभावशाली ग्रन्थ ह। गीता की प्रशसा मे डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने कहा ह " विश्व के साहित्य म कर्मशास्त्र का और मोक्षशास्त्र का ऐसा रहस्यपूर्ण ग्रन्थ कोई दूसरा उपलब्ध नही है, जिससे गीता की तुलना की जा सके।" विलियम वॉन हबोल्ट के मत मे, 'यह सबसे सुन्दर, शायद अकेला, सच्चा दाशनिक काव्य है जो किसी भी जानी हुई भाषा मे मिलता है।" महात्मा गांधी के शब्दा म, "गीता मेरी शक्ति का आधार है। निराशा और नितात एकाकी क्षणों मे वह मेरे लिए *प्रकाश की किरण ह।*'

गीता महाभारत का अग है--गीता भारतवष क सुप्रसिद्ध महाकाव्य 'महाभारत' के भीष्म पव का एक भाग है। इसम भीष्मपव के 23वें से लेकर 40वें तक कुल 18 अध्याय सम्मिलित हैं। प्रारम्भ के कुछ सवाद कौरवराज धतराष्ट्र-संजय के बीच म हैं। परन्तु, शेष सभी सवाद कृष्ण अजु न के मध्य हैं। इस तरह, यह महाभारत का ही अश है, एक बहुत बड़े नाटक की घटना है। परन्तु वह

अपने में सम्पूर्ण है तथा उसका अपना अलग स्थान व महत्त्व है। डॉ० राजबली पाण्डेय के अनुसार, "धर्म, दर्शन और नीति की दृष्टि से महाभारत का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग श्रीमद्भगवद्गीता है। यह प्रवृत्तिमार्गी भक्तिमूलक ज्ञानाश्रयी वैष्णव धर्म का प्रतिपादन करती है। इसमें कृष्ण को पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त भगवान स्वीकार किया गया है। उन्हीं के द्वारा अर्जुन को यह उपदिष्ट है। इसीलिए इसको श्रीमद्भगवद्गीता कहते हैं। इसमें कृष्ण केवल ईश्वर ही नहीं, परब्रह्म भी हैं। इसलिए गीता केवल ईश्वरवाद का ही प्रतिपादन नहीं करती, अपितु ब्रह्मवाद पर आधारित धर्म का भी।"

श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को उपदेश—महाभारत युद्ध के अवसर पर जब कौरवों और पाण्डवों दोनों पक्षों की सेनाएँ कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध के लिए सन्नद्ध खड़ी थीं तभी पाण्डव पक्ष के प्रमुख योद्धा अर्जुन का मन यह देखकर विचलित हो उठा कि जिन लोगों से उसे युद्ध करना है, वे सब उसके बन्धु-बान्धव, सखा, मित्र, गुरु आदि ही हैं। उसके मन में मोह जाग उठा तथा उसने अपने अस्त्र शस्त्र उतारकर रख दिये। यह देखकर श्रीकृष्ण ने, जो कि उसके रथ के सारथी बने हुए थे, उससे इसका कारण जानना चाहा। अर्जुन ने श्रीकृष्ण को उत्तर दिया कि मैं थोड़ी सी भूमि व सम्पत्ति के लिए, अपने भाइयों, सम्बन्धियों और गुरुजनों का खून नहीं बहाना चाहता। इस पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को प्रभावपूर्ण उपदेश देकर उसके मोह का अन्त किया। श्रीकृष्ण के दार्शनिक एवं पाण्डित्यपूर्ण उपदेश ने अर्जुन के ज्ञान चक्षु खोल दिये, उसकी मोह निद्रा भंग हुई तथा अपने कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए वह धर्म युद्ध के मैदान में कूद पड़ा। श्रीकृष्ण ने जो उपदेश अर्जुन को दिया, वही दिव्य सन्देश भगवद्गीता में संकलित है। परम्परा के अनुसार, गीता का उपदेश अर्जुन को मार्ग दर्शन के लिए दिया गया, परन्तु वास्तव में गीता एक विश्व दर्शन है। अर्जुन की तरह किंकर्त्तव्य विमूढ़ हुए हर एक मनुष्य के लिए गीता का उपदेश कल्याण पथ का निर्देश है। अर्जुन उन सामान्य मानवीय त्रुटियों और कमजोरियों का प्रतिनिधित्व करता है जिसे माया मोह के प्रभाव में सांसारिक जीवन के संघर्षों और कष्टों के रूप में मनुष्य निरन्तर अनुभव करता है। गीता के प्रथम अध्याय में आत्मा को उसी संशय, भ्रम, अन्धकार एवं अविवेक की स्थिति में चित्रित किया गया है।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—"हे अर्जुन! धर्मयुद्ध से पलायन नहीं करना चाहिए। धर्मयुद्ध क्षत्रिय का कर्त्तव्य है जो उसे इस लोक में कीर्ति और मरने के बाद स्वर्ग प्रदान करता है। आत्मा नित्य है, इस कारण शोक करना अनुचित है। शरीर के नाश के साथ आत्मा का विनाश नहीं होता। मनुष्य का यह कर्तव्य है कि अपने मन को वासनाओं और कामनाओं से हटाकर कर्त्तव्य-पथ पर अग्रसर होवे। सुख-दुःख, लाभ हानि और जय पराजय का विचार न करके मनुष्य को अपने कर्म में लगा रहना चाहिए।" यही कर्म योग है।

श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दी गई शिक्षाओं के सम्बन्ध में, संक्षेप में, कहा जा सकता है कि—(1) श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निष्काम-कर्म करने की शिक्षा दी—"हे अर्जुन ! तुम्हें कर्म करने का अधिकार है, फल की इच्छा का नहीं। (2) श्रीकृष्ण ने आत्मा की अमरता का सन्देश देते हुए अर्जुन को स्पष्ट रूप से कहा है कि अपने भाई-बन्धुओं की मृत्यु का शोक नहीं करना चाहिए—"यह आत्मा, शरीर नष्ट होने पर उसी प्रकार दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो जाती है, जिस प्रकार कि मानव जीर्ण शीर्ण वस्त्र उतारकर नवीन वस्त्र धारण कर लेता है। (3) श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यह भी शिक्षा दी कि अहंकार रहित होकर मनुष्य को भगवान् में श्रद्धा रखते हुए कार्य करना चाहिए। अस्तु, श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिये गये उपदेश सर्वमानवता के लिए हितकर व अनुकरणीय हैं।

भगवद्गीता के मुख्य सिद्धान्त एवं शिक्षाएँ

गीता भारतीय धार्मिक और दार्शनिक साहित्य की अनमोल कृति है। वेदों और उपनिषदों की विचारधारा स्फटिक की तरह उज्ज्वल होकर गीता में प्रकट हुई है। गीता अध्यात्म विद्या अर्थात् ब्रह्म ज्ञान का अपूर्व ग्रन्थ है। उपनिषदों के संदेश को गीता ने जन साधारण के लिए अनुभव एवं बोधगम्य बनाकर घर घर पहुँचा दिया है। गीता से हम जिन बातों का उपदेश मिलता है, वे शिक्षायें निम्नानुसार हैं।

1 कर्मयोग (निष्काम कर्म)—भगवद्गीता की पृष्ठभूमि से यह स्पष्ट है कि उसकी प्रमुख शिक्षा कर्मयोग की है। कर्म योग में कर्म का शाब्दिक अर्थ है 'कर्त्तव्य' अथवा 'जो कर्म किया जाय'। परन्तु, गीता में यहां कर्म का अर्थ उन कर्त्तव्यों में लेना चाहिए जो सामाजिक परम्पराओं के अनुसार विभिन्न वर्णों के उत्तरदायित्व के रूप में निर्धारित किये गये थे। योग का तात्पर्य है अपने को उसमें लगाना' या 'जोड़ना'। इस तरह, कर्म-योग का तात्पर्य यह हुआ—'अपने सामाजिक—उत्तरदायित्व का पूरी तरह निर्वाह करना'। गीता के कर्म-योग सिद्धान्त के अनुसार कर्म को साधन नहीं वरन कर्म का ही साध्य समझना चाहिए। दूसरे शब्दों में, कर्म आरम्भ करने से पूर्व अथवा कर्म करते समय किसी प्रकार उसके फल का भाव मन में न आना चाहिए।

श्रीकृष्ण गीता के चौथे अध्याय में कहते हैं कि, 'मनुष्य को बुद्धि पूर्वक विचार करने का निरन्तर अभ्यास करने से वह दृष्टि मिल जाती है जिससे वह निश्चय कर सके कि उसे क्या करना है और क्या नहीं। लेकिन जब कभी कोई कार्य करे तो उसे अपना कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व समझकर करे।" गीता के दूसरे अध्याय में भी श्रीकृष्ण ने कहा है, "तुम्हारा सम्बन्ध केवल कर्म करने से है, उसके फल से नहीं।" दूसरे शब्दों में, हमें फल की चिन्ता किये बिना कर्म करना चाहिए।

अस्तु, कर्त्तव्य-कर्म का पालन करते रहना और अच्छे या बुरे किसी भी प्रकार के फल की इच्छा न रखना ही कर्म-योग है। कृतत्व (मैं कर्त्ता हूँ) के अहंकार और कर्म फल की कामना का त्याग इस कर्म-योग का अनिवार्य अंग है।

कामना रहित कर्म होने के कारण कर्म योग को 'निष्काम कर्म' भी कहते है । गीता के अनुसार यदि फल के प्रति आसक्ति न रखी जाय तो कर्म बंधन का कारण नहीं होता, वरन् वह मोक्ष का साधन बन जाता है। गीता का कहना है कि व्यक्तिगत लाभ या कल्याण का विचार त्यागकर कर्म करने से मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है यथा—"हे अर्जुन ! तू अनासक्त होकर निरंतर कर्त्तव्ययुक्त कर्मों को करता जा । अनासक्त होकर काम करने वाला मनुष्य परमात्मा को प्राप्त होता है।" सारांश मे, कर्म के इस सिद्धान्त का मुख्य परिणाम यह होता है कि कार्य करने वाला अनुचित कर्म नही करता है । जब मनुष्य स्वार्थ रहित होकर कार्य करता है तो ईश्वर प्राप्ति मे तो सहायक होता ही है, वह दूसरो के लिए भी कल्याणकारी होता है।

2 ज्ञान योग—गीता के ज्ञान योग के सिद्धात का तात्पर्य है आत्मा शुद्धि एव आत्म ज्ञान । आत्म-ज्ञान की अवस्था म मनुष्य अपने को सम्पूर्ण मानव मात्र म देखता है । उस अवस्था मे मनुष्य का सम्पूर्ण माया मोह समाप्त हो जाता है। आत्म ज्ञान के प्रकाश मे कर्मो का अन्धकार समाप्त हो जाता है और फिर व्यक्ति को कर्म फल भोगने की आवश्यकता नही रहती। ज्ञान योग से परम-सत्य की अनुभूति होती है।

गीता ने यह प्रतिपादिन किया है कि "यह शरीर नाशवान है, परन्तु इसमें निवास करने वाली आत्मा अमर है।" जिस तरह हम फटे पुराने, जर्जर और मलिन कपडो को त्याग कर नये कपडे पहन लेते हैं, उसी प्रकार आत्मा समय आने पर इस जर्जर और अकर्मण्य शरीर का त्याग कर नया शरीर ग्रहण कर लेती है। गीता के अनुसार, आत्मा देश और काल के वशीभूत नही होता, इसकी सत्ता सर्वत्र है। यह अव्यक्त और विकार रहित है। आत्मा का यह सच्चा स्वरूप समझ पाते ही मनुष्य के सब दुःख दूर हो जाते है।

3 भक्ति योग—एकाग्र चित्त होकर भगवान् का आत्म-समर्पण किये बिना कोई साधना सफल नही हो सकती, यह गीता की शिक्षा है । निराकार के प्रति भक्ति होना कठिन है। अत गीता मे सगुण (अर्थात् शरीरधारी) ईश्वर की कल्पना की गई है। इस ईश्वर को कृपालु एव भक्तो का रक्षक माना गया है। गीता का कहना है कि जो अपना सब कुछ अर्पित करके ईश्वर के चरणो मे अपने को झुका देता है उसके लिए प्रभु का द्वार खुला हुआ मिलता है । श्रीकृष्ण कहते है कि 'यदि पापी मनुष्य भी अनन्य भाव और पूर्ण प्रेम के साथ मेरी (ईश्वर की) भक्ति करता है तो वह भी धर्मात्मा ही है, क्योंकि वह एक निष्ठावान इच्छा को लेकर मेरी (ईश्वर की) शरण मे आया है और इसीलिये वह एक धार्मिक आत्मा-सम्पन्न व्यक्ति है। भगवान् स्वय किसी के पुण्य या पाप को ग्रहण नही करता।" गीता का कहना है कि व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी देवता की भक्ति कर सकता है।

4 ज्ञान, भक्ति और कर्म का समन्वय— गीता की रचना से पूर्व ईश्वर तथा मोक्ष प्राप्ति के लिये तीन अलग अलग मार्ग माने जाते थे—ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग और भक्ति-मार्ग। गीता ने इन तीनों विचारों को समन्वित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उसने यह मत प्रतिपादित किया कि ये तीनों परस्पर विरोधी न होकर एक दूसरे के पूरक हैं। गीता में कहा गया है कि ईश्वर के प्रति भक्ति तथा कर्मों में सुधार तभी सम्भव है, जबकि हम ईश्वर के गुणों एवं शक्तियों का सही ज्ञान होगा। इसी प्रकार, यदि हममें ईश्वर के प्रति पूर्ण भक्ति और आस्था न होगी तब तक न तो हम उसे जानने की चेष्टा करेंगे और न ही उसे प्राप्त करने के लिये अपने कर्मों को सुधारने की चेष्टा करेंगे। इसी तरह, भक्ति तभी सम्भव है जब कि हम ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान के आधार पर अपने कर्मों को सुधारेंगे। कहने का तात्पर्य यही है कि गीता भक्ति, ज्ञान और कर्म में घनिष्ठ सम्बन्ध मानती है और एक के बिना दूसरे की स्थिति को स्वीकार नहीं करती है। ज्ञान और भक्ति के बिना अच्छे कर्म नहीं हो सकते, कर्म तथा ज्ञान के बिना भक्ति सम्भव नहीं है और कर्म तथा भक्ति के बिना ज्ञान का कोई लाभ नहीं है, ऐसा गीता का विश्वास है।

स्थितप्रज्ञ पूर्ण मानव का आदर्श— गीता में श्रीकृष्ण ने मानव का आदर्श रखा है जिसके अनुसार 'स्थितप्रज्ञ मानव' एक पूर्ण एवं आदर्श मानव है। स्थितप्रज्ञ का पारिभाषिक अर्थ है 'स्थिर बुद्धि वाला'। दूसरे शब्दों में, 'स्थितप्रज्ञ वह मानव है जिसकी बुद्धि स्थिर होती है।' वह सुख दुःख, मान अपमान, सफलता–असफलता, राग द्वेष आदि में समत्व भाव को अपनाता है। वह क्षमाशील, सदाशयी, सदाचारी और प्रत्येक प्राणी के प्रति मैत्री भावना रखता है। गीता में ऐसे गुणों की विशद विवेचना की गई है जो मनुष्य को एक सहनशील, कार्यरत एवं निर्भीक व्यक्ति बनाकर मोक्ष प्राप्ति एवं सांसारिक कर्त्तव्यों को दृढ़ता से करने के लिए प्रेरित करते हैं।

गीता में कहा गया है—"जो व्यक्ति मन में स्थित सारी कामनाओं को त्याग देता है और आत्मा से आत्मा में सन्तुष्ट रहता है, जो दुःख से उद्विग्न नहीं होता और जो सुख की इच्छा नहीं करता, जो राग, भय और क्रोध से सर्वथा मुक्त है, जो शुभ तथा अशुभ वस्तुओं को प्राप्त होने पर न तो प्रसन्न होता है, न द्वेष करता है जो पूरी तरह अपनी इन्द्रियों को विषयों से हटाकर अपने वश में किये हुए है वह स्थितप्रज्ञ है अर्थात् उसकी बुद्धि स्थिर होती है।" साराश यह है कि स्थितप्रज्ञ व्यक्ति में अहं, बल, काम, क्रोध तथा लोभ का भाव नहीं होना चाहिये। उसे एकाग्र चित होकर ईश्वर में लीन होना चाहिये। जो व्यक्ति स्थितप्रज्ञ हो जाता है वह न किसी वस्तु की इच्छा रखता है और न किसी के बारे में शोक करता है, केवल ईश्वर भक्ति की ओर ही ध्यान देता है। उसके कर्म पवित्र

ग्रौर शुभ होते हैं। ऐसा चरित्रवान व्यक्ति, वास्तव मे, समाज के लिए एक बडी निधि सिद्ध होता है।

गीता का मूल्याकन—गीता की शिक्षाग्रो का जब हम मूल्याकन करते हैं तो ऐसा लगता है कि इसका मुख्य उद्देश्य है जीवन की समस्याग्रो को सुलझाना ग्रौर सत्कम को प्रोत्साहित करना। मानव जीवन मे भावनाग्रो ग्रौर कत्तव्यों के बीच परस्पर सघष ग्रादिकाल से होता ग्राया ह। गीता ने इस द्वन्द्व को समाप्त करने के लिए समुचित माग दशन किया है। एम० हिरियन्ना नामक विद्वान ने लिखा है कि "गीता ग्राद्योपान्त सहिष्णुता की भावना से ग्रनुप्राणित है जो हिन्दु विचारधारा का एक प्रमुख लक्षण है।" गीता का धम एक ऐसा धम है जिसे हर कोई ग्रपना सकता है। इस धम मे जाति, वण, सम्प्रदाय ग्रादि का कोई भेद भाव नही रखा गया है। वतमान युग म, जबकि विश्व युद्ध के बादल चारो ग्रोर मडरा रहे हैं, गीता का विश्व बन्धुत्व का सन्देश हमारा माग-दशन कर सकता ह। गीता का निष्काम कम योग भी ग्राज के मानव का माग दशन करके पारस्परिक वैमनस्य को मिटाने मे सहायक हो सकता है। सक्षेप में, गीता "ग्रभी तक भारतीय धम ग्रौर दशन का जितना विकास हुग्रा था, उसके उत्तमांश का सार प्रस्तुत करती ह।"

III योग दर्शन के ग्रष्टाग सिद्धान्त
(Yoga Eight Fold Means)

'योग' भारतीय धम से सम्बन्धित एक दाशनिक विचारधारा है, जिसके प्रवत्तक ग्राचाय पातजलि मान जाते हैं। प्राचीन ऋषियो तथा तत्त्व ज्ञानियों ने योग की उपयोगिता एक स्वर से स्वीकार की है। कैवल्य ग्रथवा मोक्ष प्राप्त करने के लिए जिस माग का ग्रनुसरण ग्रौर जिन साधनाग्रो को करना ग्रावश्यक है, उनका विस्तृत विवरण योग-दशन मे ही मिलता है। योग-दशन का 'सांख्य' के साथ बडा घनिष्ठ सम्बन्ध है। सांख्य म यदि सैद्धान्तिक पक्ष है तो उसका व्यावहारिक पक्ष योग म मिलता है। एक तरह से इन दोनो को एक दूसरे का पूरक कहा जा सकता है।

उपनिषद म सबसे पहली बार योग का उल्लेख ग्राया है। योग की क्रियाग्रो से चित्त की वृत्तियो का निरोध होता है मन स्थिर होता है, हृदय पवित्र होता है, ग्रात्मा भौतिक जीवन से ऊची उठ जाती है ग्रौर ब्रह्म को समझने म सुगमता होती है। कौषीतकि उपनिषद कहता है कि "राग-द्वेष-भावना, वत्ति का पूरी तरह दमन करना चाहिए। प्राण वायु को रोकने से भी चित्त को एकाग्र करने मे सहायता मिलती है। सब कुछ छोडकर एक-एक पदाथ पर मन को एकाग्र करने से चित्त म स्थिरता ग्राती है।" ग्राचाय पतजलि द्वारा रचित 'योग सूत्र योग दशन

का प्रमाणित ग्रन्थ माना जाता है। योग दर्शन का उद्देश्य जीवात्मा को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान कराना है ताकि वह स्वय को मानसिक विकारो से परे समझे। योग-शास्त्र मे हमे उन व्यावहारिक साधना का उल्लेख मिलता है, जिनके द्वारा हम अपने को एकाग्र कर सकते हैं।

'योग' का अर्थ व परिभाषा—आचार्य पतञ्जलि ने 'योग' की परिभाषा इन शब्दो मे की है—"योगश्चित्त वृत्ति निरोध" अर्थात "चित्त की समस्त वृत्तियों पर नियन्त्रण करना ही योग है।" मानव-मन चचल होता है, इस चचल मन या चित्त को एकाग्र करने की साधना ही योग है। योग के सम्बन्ध मे श्रीकृष्ण ने गीता मे कहा है कि, "योग न तो किसी प्रकार का चमत्कार है और न शरीर को किसी प्रकार का कष्ट देना ही योग है। जो व्यक्ति आहार तथा विहार में सन्तुलन बरतता है, जो कर्मतत्व चेष्टाओं मे अति का पालन नही करता तथा जो सोने और जागने म निश्चित नियम का पालन करता है, उसी व्यक्ति का योग साधन ठीक है।"

जीवात्मा को यहाँ तरह तरह के दुख भोगने पडते हैं। इन दुखो का कारण यह है कि मनुष्य की आत्मा भ्रमवश अपने को 'चित्त' समझ लेती है, जबकि वास्तविकता मे वह उससे भिन्न है। फलस्वरूप वह इस ससार के दुख-सुख, राग-द्वेष में पड जाती है। यही 'आत्मा का बन्धन' है जो उसे मोक्ष प्राप्त नही करने देता। इस बन्धन से मुक्ति प्राप्त करने का एकमात्र उपाय–योग है जिससे चित्त (मन) की वृत्तिया शात हो जाती हैं तथा अपने को चित्त से विकारो से अलग समझने लगती है। इसी अनुभव को 'योग का आत्म ज्ञान' कहा जाता है। आत्म ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति समस्त दुखो से छुटकारा पा जाता है, यही मुक्ति है। साराश मे, 'योग चचल चित्त को एकाग्र करने की साधना है।' अत इसका निरन्तर अभ्यास करना चाहिए। योग चित्त की चचलता को जीतने का मार्ग दर्शाता है तथा चित्त को नियन्त्रित कर उसे परमात्मा की भक्ति की ओर ले जाने मे सहायक होता है।

अष्टाग-साधना योग के आठ साधन

योग दर्शन के सिद्धान्तो के अनुसार सासारिकता का उदभव इच्छाओ के कारण होता है। इसलिए चित्त की वृत्तियो को रोकने एव अच्छे बुरे विचारो एव इच्छाओ के नाश के लिए योग का अभ्यास आवश्यक है। परन्तु चित्त की प्रवृत्तियों को एक दिन मे नियन्त्रित नही किया जा सकता। इसके लिए सतत प्रयत्नशील रहना पडता है। चित्त की शुद्धि और पवित्रता के लिए योग आठ प्रकार के साधन बतलाता है। इसी कारण इसे अष्टाग-योग (आठ अगो वाला योग) भी कहा जाता है। ये आठ साधन इस प्रकार हैं, (1) यम, (2) नियम,

(3) आसन, (4) प्राणायाम, (5) प्रत्याहार, (6) धारणा, (7) ध्यान और (8) समाधि। ये आठो योग के अंग कहलाते हैं।

1 यम (Restraint)—शारीरिक, मानसिक तथा वाणी सम्बन्धी संयम को 'यम' कहते हैं। 'यम' का अर्थ संसार के प्राणिमात्र के साथ सौहार्द स्थापित करना है। 'यम' के अनुसार किसी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट या आघात नहीं पहुँचना चाहिए। योग के अनुसार चित्त पर नियन्त्रण करने के लिए इस प्रकार का संयम बहुत जरूरी है। यम पांच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), अपरिग्रह (संग्रह वृत्ति का निरोध) और ब्रह्मचर्य-पालन। इन पांचों यमों का पालन प्रत्येक योगी के लिए अनिवार्य है।

2 नियम (Culture)—योग का दूसरा अंग 'नियम' या सदाचार का पालन है। नियम भी पांच हैं—शौच (पवित्रता), सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्राणिधान। शौच अथवा शुद्धता तन और मन दोनों के लिये आवश्यक है। सन्तोष से अभिप्राय यह है कि मनुष्य को जो मिले उसी में सन्तोष प्राप्त करना चाहिए। तप का आशय यह है कि सर्दी गर्मी सहने की क्षमता पैदा की जाए। स्वाध्याय से आशय है अच्छे धर्म ग्रन्थों के अध्ययन में संलग्न रहना चाहिए। ईश्वर-प्राणिधान से अभिप्राय यह है कि ईश्वर चिन्तन और उसकी भक्ति प्रतिदिन करनी चाहिए।

3 आसन (Posture)—योग दर्शन शरीर और मन को पुष्ट और निरोग रखने के लिए कुछ आसन बताता है जिन्हें योगासन कहते हैं। बैठने के जिस ढंग से चित्त स्थिर रह सके तथा शरीर को सुख मिले, उसे ही 'आसन' कहते हैं। यम और नियम जहां चित्त वृत्ति के निरोध के लिए वातावरण का निर्माण करते हैं, वहां आसन मन और तन दोनों को अनुशासित और नियन्त्रित करने की शिक्षा देते हैं। योग आसन का नियमित अभ्यास करने से शारीरिक विकार और इन्द्रिय दमन में सहायता मिलती है। इन आसनों के द्वारा शरीर के सभी अंग, विशेषकर स्नायुमण्डल, इस प्रकार वश में किये जा सकते हैं कि वे मन में कोई विकार उत्पन्न नहीं कर सकें। पद्मासन, मयूरासन, भद्रासन, वीरासन आदि विभिन्न आसनों का योग दर्शन में उल्लेख है।

4 प्राणायाम (Breath Control)—प्राणायाम के द्वारा श्वास गति को नियन्त्रित किया जाता है। प्राणायाम की तीन अवस्थाएँ—पूरक, कुम्भक, और रेचक—होती हैं। पूरक से अभिप्राय है—पूरा श्वास अन्दर खींचना, कुम्भक में, श्वास को भरसक अन्दर रोकना, और रेचक के अन्तर्गत नियमित विधि से श्वास को धीरे धीरे बाहर छोड़ना। इस प्रक्रिया से हृदय पुष्ट होता है। और उसमें बल आता है। इसके अतिरिक्त शरीर और मन में भी दृढ़ता आती है श्वास क्रिया

नियन्त्रण करने से मन शान्त अवस्था म आ जाता है। ध्यान अवस्था अथवा समाधि के लिए प्राणायाम आवश्यक है। इस तरह, प्राणायाम चित्त की वृत्तियो को नियन्त्रित करने मे काफी सहायक है।

5 प्रत्याहार (Withdrawl of Senses)—इन्द्रियो पर नियन्त्रण करना प्रत्याहार कहलाता है। इस योग के द्वारा इन्द्रियो को उनके विषय से हटाया जाता है। इसका लक्ष्य चित्त का भौतिक वस्तुओ के पीछे दौडने से रोकना है। प्रत्याहार के माध्यम से इन्द्रियो (नाक, कान, आखें आदि) को मन के वश म किया जाता है। जब इन्द्रिया पूर्णतया मन के वश में आ जाती हैं तो सासारिक विषयो का मन पर प्रभाव पडना बन्द हो जाता है। रूप, रस, गन्ध, शब्द अथवा स्पर्श आदि का योगी के मन पर कोई प्रभाव नही पडता है। दूसरे शब्दो म, चित्त की वृत्तियाँ शान्त हो जाती है।

6 धारणा (Attention)—'योग-सूत्र' में कहा गया है कि चित्त को किसी एक देश (स्थान) मे स्थिर कर देने का ही नाम धारणा है। किसी भी एक वस्तु मे—चाहे वह स्थूल हो या सूक्ष्म, भीतर हो या बाहर—चित्त को एकाग्र कर देने को धारणा कहते है। धारणा म कुशलता प्राप्त करने के बाद ही समाधि की अवस्था तक पहुँचा जा सकता है।

7 ध्यान (Meditation)—किसी एक वस्तु पर निर्बाध ध्यान स्थिर रखना ही 'ध्यान-अवस्था' है। लगातार ध्यान के द्वारा योगी किसी भी वस्तु का असली स्वरूप जान लेता है।

8 समाधि (Concentration)—यौगिक साधना का अन्तिम चरण और ध्यान की सर्वोच्च अवस्था समाधि है जिसमे ध्येय के अतिरिक्त और किसी का अस्तित्व नहीं रह जाता। समाधि की अवस्था मे ध्यान करने वाला मन, ध्यान तथा ध्येय तीनो के बीच कोई अन्तर नही रह जाता और वे एकाकार हो जाते हैं।

[1] आठ सिद्धियाँ—'योग दर्शन' के अनुसार योग का अभ्यास करने से साधक को कुछ विशेष सिद्धिया प्राप्त होती हैं। ये सिद्धिया आठ प्रकार की हैं। अत इन्हे 'अष्टसिद्धि' भी कहते हैं। ये हैं

(1) अणिमा—योगी चाहे तो अणु के समान छोटा या अदृश्य बन सकता है। (2) लघिमा—योगी चाहे तो रुई से भी हल्का हो उड सकता है। (3) महिमा—योगी चाहे तो पहाड के समान बडा बन सकता है। (4) प्राप्ति—योगी चाहे तो कहीं से भी कोई वस्तु मगा सकता है। (5) प्राकाम्य—योगी की इच्छा-शक्ति बाधा रहित हो जाती है। (6) वशित्व योगी सब जीवो को वशीभूत कर

सकता है। (7) ईशित्व—योगी सब वस्तुओं पर नियन्त्रण कर सकता है। (8) यत्रकामावसायित्व —योगी की सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

योग दर्शन का महत्त्व—भारत की धार्मिक एवं आध्यात्मिक परम्परा में योग का बहुत महत्त्व है। धर्म एवं दर्शन के गूढ़ तथ्यों का ज्ञान तभी सम्भव हो सकता है जब मनुष्य का चित्त एवं हृदय शुद्ध एवं शान्त हो। आत्म शुद्धि एवं आत्म ज्ञान के लिए योग ही सर्वोत्तम साधन है। योग-दर्शन में प्रयुक्त साधना की विधियों को सभी भारतीय धर्मों व दर्शनों ने मान्यता दी है। इन्हें जीवन में उतारने से शरीर, मन और इन्द्रियाँ संयम सीखती हैं। शारीरिक और आत्मिक तेज और बल में इससे वृद्धि होती है। योगी अपनी साधना के बल पर त्रिकालदर्शी हो सकता है। वैसे योग-साधन का वास्तविक लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है।

सारांश में, मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए योग की उपयोगिता दिन पर दिन पहिचानी जा रही है। योग की साधना मानव व्यक्तित्व के विकास और मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन है। वास्तव में, वर्तमान में भी योगाभ्यास की वही उपयोगिता और उपादेयता है, जो प्राचीनकाल में थी।

□□□

3

आधारभूत धार्मिक विचार

(Fundamental Religious Ideas)

जैन एव बौद्ध धर्म

(Jainism And Buddhism)

● जैन धर्म

I महावीर का जीवन परिचय

II जैन धर्म के सिद्धात और शिक्षाएं

III भारतीय सस्कृति को जैन धर्म को देन

● बौद्ध धर्म

I महात्मा बुद्ध का जीवन चरित्र

II महात्मा बुद्ध के सिद्धात एव उपदेश

III बौद्ध धर्म के सम्प्रदाय हीनयान व महायान

IV भारतीय सस्कृति को बौद्ध धर्म की देन

जैन धर्म (The Jainism)

'जन धम' को सगठित रूप वधमान महावीर न ही दिया, किन्तु जन साहित्य और जनाचार्यों व अनुसार महावीर अन्तिम और 24 वें तीथ कर थ। जनियो का विश्वास है कि जन धम चौबीस तीथकरा के उपदेशो का परिणाम है। प्रथम बाईस तीथ करो के जीवन काल्पनिक कथाओ तथा नितान्त अस्पष्ट और प्रतक्य जन विश्वासो स इतने आच्छादित हैं कि उनके विषय मे निश्चयात्मक रूप से कुछ कहना दुष्कर है। तईसवे तीथ कर जिनका नाम पाश्वनाथ था जो वधमान महावीर से लगभग 250 पूव हो चुके थे, वस्तुत एतिहासिक व्यक्ति प्रतीत होत हैं। व बनारस के राजा अश्वसेन के पुत्र थे और उन्होने आध्यात्मिक जीवन के निमित्त राजकीय विलास का जीवन त्याग दिया। उनक प्रमुख उपदेश चार थे—अहिंसा, सत्य भाषण, अस्तेय और सम्पत्ति का त्याग। ऐसा प्रतीत होता है कि पाश्वनाथ ने अपने नवीन धम के लिए सघ बनाया था। वधमान महावीर के माता पिता और उनके परिवार के लोग पाश्वनाथ क सम्प्रदाय के अनुयायी थे। अतएव यह स्वाभाविक था कि वधमान अपनी युवावस्था म जन सिद्धाता द्वारा अधिक प्रभावित हुए।

I वर्धमान महावीर का जीवन-परिचय (599-527 ई. पू)

पाश्वनाथ के बाद, वधमान महावीर जनियो के 24 वें और अन्तिम तीथ-कर हुए। इन्ही के समय में, पाश्वनाथ का "निग्र थ" सम्प्रदाय का नाम 'जन'

मैत पदा। ई० पू० 599 म, व वशाली गणराज्य के कुण्डग्राम मे एक प्रसिद्ध क्षत्रिय कुल म पदा हुए, उनका नाम वधमान रखा गया उनके पिता का नाम सिद्धाथ और माता का नाम त्रिशला था। त्रिशला दवी वैशाली राज्य के राजा चेटक की बहिन थी। मगध के राजा बिम्बसार ने चेटक की पुत्री चेलना से विवाह किया था। अतएव वधमान मगध के प्रमुख व प्रतिष्ठित राजवश से सम्बंधित थे। इस प्रकार वधमान का कुल अभिजात वर्गीय था और इसमे उनके धमप्रसार मे बडी सहायता मिली होगी।

परम्परा क अनुसार ज्ञान तथा कला के सभी क्षेत्रों म वधमान का उच्च शिक्षा दी गयी और यशोदा नामक एक राजकुमारी स इनका विवाह हो गया। इनके एक कन्या उत्पन्न हुई थी जिसका पति महावीर का प्रथम शिष्य हुआ और तत्पश्चात् जन धम की प्रथम शाखा का नता बन गया। अपने माता पिता की मृत्यु के पश्चात् 30 वष की अवस्था म वधमान ने अपन बडे भाई की अनुमति लेकर, घर बार त्याग दिया और सत्य की खोज म सन्यासी परिव्राजक हो गय। बारह वष के कठोर तप के बाद तरहव वष मे वैशाख माह की दशमी के दिवस जृम्भिक ग्राम के बाहर, पाश्वनाथ शैलशिखर के पास ऋजुपालिका नदी के उत्तर तट पर उन्हें 'कैवल्य' ज्ञान प्राप्त हुआ। इस सव श्रेष्ठ ज्ञान की उपलब्धि तथा सासारिक सुख दुःख मे अन्तिम मुक्ति प्राप्त होने से वधमान 'अहत', (पूज्य), 'जिन' (विजेता), 'निग्र थ' (बन्धन रहित) और 'महावीर' कहलाय।

पूर्ण ज्ञानी होने के पश्चात महावीर जीवन पयन्त अपने ज्ञान और अनुभव के प्रचार प्रसार हेतु उत्तर भारत की विभिन्न जनपदों म पदल यात्रा की। महावीर ने सभी वर्गों के लोगों मे अपने धम का प्रचार किया। इनके अनुयायियों और सहायकों म मगध के राजा बिम्बसार और अजात शत्रु जस शासक और लिच्छवी और मल्लों जसी गणजातियाँ थी। व 30 वष तक कौशल, मगध और इसके पूव के प्रदेशों मे निरन्तर भ्रमण कर अपने सिद्धान्तो और उपदेशों का प्रचार करते रहे। धीरे धीरे बहुत-स लोग—राजा, महाराजा, समृद्ध वैश्य और व्यापारी एव जन साधारण—उनके भक्त और अनुयायी हो गय। आखिर, ईसा पूव 527 म पटना जिले में पावापुरी म 72 वष की अवस्था म उनका देहान्त हुआ। य गौतम बुद्ध के समकालीन थे। महावीर स्वामी न जन धम के सिद्धान्तो को सुव्यवस्थित और विस्तृत किया और उसे अत्यन्त लोकप्रिय बनाया, इसी कारण लोग उन्ह ही जन मत सस्थापक मानते हैं।

II जैन धम के सिद्धान्त और शिक्षाए

जन धम के सिद्धान्त उनके समृद्ध धार्मिक साहित्य म सुरक्षित ह। यह साहित्य अधिकाशत प्राकृत भाषा मे है और इसमे सुरक्षित सिद्धान्तो के उपदेशक जन धम के 24 वे तीथकर महावीर स्वामी माने जाते हैं। परवर्तीकाल मे जन-

धर्म का साहित्य संस्कृत भाषा में भी लिखा गया। महावीर की मृत्यु के बाद ही पाटलिपुत्र में एक सभा हुई जिसमें सर्वप्रथम जैनमत के सिद्धान्तों का संकलित किया गया। परन्तु उनको अंतिम रूप 800 वर्ष पश्चात ईस्वी सन् में वल्लभी की सभा में दिया गया। इस सभा में उनके 41 'सूत्र', 12 'नियुक्ति' (अर्थात् भाष्य), एक 'महाभाष्य' और अनेक 'प्रकीर्णका' (या फुटकर ग्रन्था) के रूप में बांट दिया गया।

जैनमत की अपनी विशिष्ट मान्यताएँ हैं कि वह—

(1) जगत को अनादि, शाश्वत और स्वाधरित मानता है।

(2) किसी जगत नियंता परमात्मा के अस्तित्व में विश्वास नहीं करता।

(3) वेदों को अपौरुषय ग्रन्थ या आदि ज्ञान नहीं मानता।

(4) पुनर्जन्म और कर्म के सिद्धान्तों में विश्वास करता है।

(5) 'निर्वाण' या जन्म मरण से मुक्ति को तपश्चर्या के द्वारा ही प्राप्य समझता है। इसके लिए मनुष्य को अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और पूर्ण त्याग के नियमों का आचरण अनिवार्य मानता है।

(6) सब चराचर जगत में यहां तक कि मिट्टी के कण कण में भी आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करता है।

(7) "जिन" या "तीर्थंकरों" और उनके सिद्धान्तों में विश्वास और उपरोक्त नैतिक नियमों का पालन ही मुक्ति का एक मात्र साधन मानता है। यही जैन "त्रिरत्न" हैं। अहिंसा परमोधर्म "उसका सर्वोपरि सिद्धान्त है।"

(8) "तीर्थंकर" "परमात्मा" अर्थात् महान और मुक्त आत्माएँ हैं परन्तु वे जगत के कर्ता नहीं हैं। वे किसी का भला-बुरा नहीं कर सकते। व्यक्तिगत निर्वाण केवल व्यक्ति की साधना का ही फल है। इसलिए जैनमत में "भक्ति" की सी परिचर्या का कोई स्थान नहीं है। मन्दिर और मूर्तियां केवल पवित्र स्मारकों के रूप में मानी जाती हैं जिनसे साधक प्रेरणा प्राप्त कर सकता है न कि कोई वरदान। जैनमत के कुछ प्रमुख सिद्धान्तों का विवेचन निम्नलिखित पंक्तियों में प्रस्तुत है।

जीव और पुद्गल—जैन धर्म यह मानता है कि संसार में प्राणियों का जन्म 'जीव' (आत्मा) और 'पुद्गल' (शरीर) नामक दो तत्वों के परस्पर मिलने से होता है। इनमें से जीव प्राणवान् है और पुद्गल प्राणहीन। जीव और पुद्गल में घनिष्ट सम्बन्ध है तथा दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। जिस प्रकार एक मोटरकार और इसका इंजन गतिशील होने के लिए एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं, उसी प्रकार प्राणी की उत्पत्ति के लिए जीव और पुद्गल का एक दूसरे से मिलना बहुत जरूरी है।

कर्म और पुनर्जन्म—जैनमत ईश्वर को सृष्टिकर्ता नहीं मानता, क्योंकि ऐसा करने से उसे संसार के पापों और कुकर्मों का कर्ता भी मानना पड़ता है। जैन-

धम ने मनुष्य को ईश्वरीय हस्तक्षेप से मुक्त करके अपना स्वय भाग्य विधाता माना है। प्रपन सांसारिक एव आध्यात्मिक जीवन म मनुष्य अपने कम के लिए उत्तरदायी है। उसके सारे सुख-दु ख उसके कम क ही परिणाम हैं। इस जगत म जितने भी प्राणी हैं, व सब अपने अपने संचित कर्मों से ही ससार म भ्रमण करते हैं और उन्ही के अनुसार भिन्न भिन्न योनियाँ पाते हैं। किय हुए कर्मों का फल भोगे बिना जीव का छुटकारा नहीं होता। इस प्रकार कम ही पुनज म का कारण है।

बधन और उससे मुक्ति मोक्ष—जन दशन क अनुसार जीव (आत्मा) तथा कम अथवा पुद्गल का समाग ही 'बन्धन' कहलाता है। जीव के दो भेद हैं—मुक्त तथा बद्ध। मुक्त जीव वे हैं जो बधन मुक्त हो गए हैं अर्थात् जिन्होने मोक्ष प्राप्त कर ली है। बद्ध जीव वे हैं जो बधन म हैं। राग-द्वेष, रति, मोह आदि से प्रेरित मनुष्य की विभिन्न सासारिक क्रियाओं द्वारा कर्मों का प्रवाह जीव की ओर चलता रहता है। जीव इन कर्मों से आच्छादित होता रहता है। "जीव इस नश्वर ससार में आकर कर्मों म लिप्त हो जाता ह और उसका फल भोगने के लिए ही बार बार अनेक योनियो म ज म लेता है और इस तरह जन्म मरण के बधन में बँध जाता है। दूसरे शब्दों म, आत्मा अपने कर्मों से अपना शुद्ध स्वरूप भूलकर ससार-चक्र (जीवन मरण के चक्र) मे पड जाती है।"

कम बधनो से मुक्ति पाना जैन धम का चरम लक्ष्य ह। बधन (भले बुरे हर प्रकार के कर्म) से मुक्ति पाने को ही मोक्ष कहा गया ह जीव को चाहिए कि वह बधनों के कारणो को नष्ट कर दे। "जब आत्मा अपनी साधना और तपस्या से ज्ञान प्राप्त करता ह तो इस चक्कर से निकलकर मुक्त हो जाता है।" जब मोक्ष प्राप्त हो जाता है तो भौतिक तत्त्व का विनाश हो जाता है और आत्मिक तत्त्व ऊपर की ओर चढ जाता है। इस प्रकार मोक्ष चिर शाश्वत्, उर्ध्वगामिनी गति है।

त्रि रत्न कवल्य या मोक्ष प्राप्ति के तीन साधन—जैन धम के अनुसार मनुष्य में अज्ञानता ही काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि उत्पन्न करती है और आत्मा को बधन में जकड लेती है। पूवजन्म के कम-फल से बचने के लिए जैन धम त्रि रत्नो के पालन का आदेश देता है। महावीर ने साधना या विनय के माग मे कैवल्य या मोक्ष प्राप्ति के लिए तीन साधन—(1) सम्यक् ज्ञान, (2) सम्यक दशन और (3) सम्यक चरित्र—बतलाये हैं, इन्ही को त्रि रत्न (तीन रत्न) कहते हैं।

1 सम्यक ज्ञान—इसका अथ है जन धम तथा मुक्ति के विषय मे पूर्ण ज्ञान होना सच्चा और पूरा ज्ञान सवज्ञ तीथ करो के उपदेशो का ध्यान पूवक अध्ययन करने से प्राप्त होता है। अस्तु, सशय रहित तथा दोष रहित ज्ञान ही सम्यक ज्ञान है। जब सम्यक ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तो मनुष्य भौतिक अश से प्रभावित न रहकर आध्यात्मिक अश से प्रकाशित हो जाता है और सभी बाधक कम, जीव अथवा आत्मा से अलग हो जाते हैं।

क्योंकि सग्रह के ही कारण सासारिक वस्तुओं मे आशक्ति बढती है और जीव बन्धन और पुनर्जन्म के चक्कर मे पडता है।

5 ब्रह्मचर्य—इसका अर्थ है कामवासना का दमन करना तथा सयम के साथ जीवन व्यतीत करना। इसके अनुसार न केवल कर्मों द्वारा इन्द्रिय सुखो का उपभोग बन्द कर देना चाहिए, बल्कि मन और वचन से भी उसके उपभोग की चेष्टा को समाप्त कर देना चाहिये। जन धर्म की मान्यता के अनुसार उपयुक्त पच महाव्रतो का पालन करने से मोक्ष मार्ग प्रशस्त होता है।

अनेकान्तवाद एव स्यादवाद का सिद्धान्त—जन दर्शन का यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। जैन धर्म के अनुसार वस्तु के अनन्त स्वरूप हैं। केवल ज्ञानी अथवा बन्धन मुक्त या अर्हत् ही उन स्वरूपो की अनन्तता को जानते हैं। शेष लोग तो उसके कुछ स्वरूपो को ही जानते हैं। एक वस्तु को अनेक दृष्टिकोण से देखा जा सकता है और प्रत्येक दृष्टिकोण से एक भिन्न निष्कर्ष निकाला जा सकता है। परन्तु इनमे से किसी एक निष्कर्ष द्वारा उस वस्तु के स्वरूप का पूरी तरह बोध नही होता। अस्तु, जन धर्म का कहना है कि किसी भी वस्तु को केवल एक ही दृष्टि से देखकर मत छोडो।

जिस प्रकार सात अन्धे व्यक्तियो से हाथी के सम्बन्ध मे पूछा गया तो किसी ने उसकी तुलना खम्भे से (पैर छूकर) किसी ने पखे से (कान छूकर) किसी ने शिला से (शरीर छूकर) तो किसी ने रस्सी से (पूछ छूकर) की। किन्तु कोई भी उचित उत्तर न दे सका फिर भी जो कुछ कहा उसमें कुछ न कुछ सत्य अवश्य था, इस प्रकार यह सृष्टि है। सक्षेप मे, एक ही दृष्टिकोण को पूर्णरूप से सत्य न मान कर, विभिन्न दृष्टिकोणो मे कुछ न कुछ सत्य या उचित मानना ही स्यादवाद है। डा० रामधारी सिंह 'दिनकर' के शब्दो मे "जन दर्शन के अनेकान्तवाद मे समन्वय, सह अस्तित्व और सहनशीलता का उत्कृष्ट रूप प्रकट होता है।"

III भारतीय सस्कृति को जैन धर्म की देन

जैन धर्म ने भारतीय सभ्यता व सस्कृति पर अमिट छाप छोडी है। वर्तमान भारतीय सस्कृति मे अनेक ऐसी विशेषताएँ दिखाई पडती हैं जो कि मूल रूप मे जनधर्म की देन मानी जा सकती हैं। जैन धर्म की भारतीय सस्कृति को अनुपम देन है उसे निम्नलिखित रूप मे प्रकट कर सकते हैं।

1 दार्शनिक क्षेत्र मे—जन विचारधारा ने ज्ञान सिद्धान्त, स्यादवाद एवं अनेकान्तवाद, अहिंसा आदि के दार्शनिक विचारो को पनपाकर भारतीय दार्शनिक चिन्तन को गौरवपूर्ण बनाने मे योगदान दिया। जैनधर्म के सिद्धान्तो ने हमारे सामाजिक जीवन मे एक नवजीवन का सचार किया और भारतीय चरित्र को दृढ बनाया। अहिंसा पर आधारित गुट-निरपेक्ष की हमारी विदेश नीति वर्तमान में भी महत्त्वपूर्ण है। जन धर्म के अनेकान्तवादी दृष्टिकोण ने हमारे

2 सम्यक दर्शन—इसका अर्थ है जैन तीर्थंकरों में पूरा विश्वास रखना। यथार्थ ज्ञान के प्रति श्रद्धा का होना ही सम्यक दर्शन है। श्रद्धा अन्धविश्वास जनित न होकर, पूर्णतः युक्ति संगत हो और वह सम्यक ज्ञान प्राप्त कर लेने के उपरान्त ही उत्पन्न होती है।

3 सम्यक चरित्र—इसका अर्थ है सदाचार पूर्ण नैतिक जीवन यापन करना और तीर्थंकरों द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलना। सम्यक चरित्र की प्राप्ति के लिए मनुष्य को अपनी इन्द्रियां वाणी और कर्मों पर पूर्ण नियन्त्रण रखना चाहिए। ऐसा करने से ही उनकी आत्मा सांसारिक प्रवाह में नहीं बहेगी और उसकी मुक्ति भी प्राप्त हो जायेगी। जैनधर्म का यह सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है क्योंकि इसके द्वारा ही जीव कर्मों के भार से मुक्त होकर अपने जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य 'निर्वाण' अर्थात 'मोक्ष' को प्राप्त कर सकता है।

पंच महाव्रत—ज्ञान और श्रद्धा का कोई महत्त्व नहीं, जब तक उनका उपयोग जीवन में न हो। अस्तु, नैतिक जीवन बिताने के लिए जैन धर्म में सबसे अधिक जोर पांच व्रतों पर दिया गया है। महावीर स्वामी ने (1) अहिंसा, (2) सत्य, (3) अस्तेय, (4) अपरिग्रह, और (5) ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया था। आत्मा को पाप से बचाने के लिए इन पांच महाव्रतों का अनुपालन जरूरी है।

1 अहिंसा—यह जैन धर्म का सर्वोपरि सिद्धान्त है। अहिंसा का अर्थ है—प्राणी मात्र के प्रति मन, वचन और कर्म से ऐसा कोई कार्य न करना जिससे उन्हें चोट पहुंचे। मनुष्य जाने या अनजाने में भी किसी प्रकार की हिंसा न करे। जैन धर्म मन, वचन और कर्म से अहिंसा का पालन चाहता है।

2 सत्य—इसका अर्थ है कभी 'झूठ नहीं बोलना चाहिए'। जैन तीर्थंकरों का उपदेश है कि असत्य का त्याग कर हमेशा मधुर और सत्य भाषण करना चाहिए। मनुष्य को अप्रिय, निन्द्य, कठोर एवं पापमयी बात का त्याग करना चाहिए तथा बिना सोचे समझे भी कुछ न बोला जाए। सत्य व्रत की पूर्ति के लिए जरूरी है कि मानव क्रोध लोभ, मोह, भय आदि पर विजय प्राप्त करने को कोशिशों में लगा रहे।

3 अस्तेय—इसका अर्थ है 'बिना अनुमति के दूसरे की चीज ग्रहण न करना चाहिए।' चोरी करना महापाप माना गया है, जैनियों की मान्यता है कि प्राण जीव का आन्तरिक जीवन है, तो धन सम्पत्ति का अपहरण उसका बाह्य जीवन। इसलिए किसी भी धन सम्पत्ति का उसके प्राणों के अपहरण के समान ही है।

4 अपरिग्रह—इसका अर्थ है 'माया से मुक्ति पाने हेतु' अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना। जीवन के लिए आवश्यक धन तक ही मनुष्य को सीमित रहना चाहिए। अनावश्यक धन सम्पत्ति आदि किसी भी वस्तु का संग्रह नहीं करना चाहिए

क्योंकि सग्रह के ही कारण सासारिक वस्तुओ मे आशक्ति बढ़ती है और जीव बधन और पुनर्जन्म के चक्कर म पडता है।

5 ब्रह्मचर्य—इसका अर्थ है कामवासना का दमन करना तथा सयम के साथ जीवन व्यतीत करना। इसके अनुसार न केवल कर्मों द्वारा इन्द्रिय सुखो का उपभोग बन्द कर देना चाहिए, बल्कि मन और वचन से भी उसके उपभोग की चेष्टा को समाप्त कर देना चाहिये। जन धर्म की मान्यता के अनुसार उपयुक्त पच महाव्रतो का पालन करने से मोक्ष मार्ग प्रशस्त होता है।

अनेकान्तवाद एव स्यादवाद का सिद्धान्त—जैन दर्शन का यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। जैन धर्म के अनुसार वस्तु के अनन्त स्वरूप हैं। केवल ज्ञानी अथवा बन्धन मुक्त या अर्हत् ही उन स्वरूपो की अनन्तता को जानते हैं। शेष लोग तो उसके कुछ स्वरूपो को ही जानते हैं। एक वस्तु को अनेक दृष्टिकोण से देखा जा सकता है और प्रत्येक दृष्टिकोण से एक भिन्न निष्कर्ष निकाला जा सकता है। परन्तु इनमे से किसी एक निष्कर्ष द्वारा उस वस्तु के स्वरूप का पूरी तरह बोध नही होता। अस्तु, जैन धर्म का कहना है कि किसी भी वस्तु को केवल एक ही दृष्टि से देखकर मत छोडो।

जिस प्रकार सात अन्धे व्यक्तियो से हाथी के सम्बन्ध में पूछा गया तो किसी ने उसकी तुलना खम्भे से (पैर छूकर) किसी ने पखे से (कान छूकर) किसी ने शिला से (शरीर छूकर) तो किसी ने रस्सी से (पूछ छूकर) की। किन्तु कोई भी उचित उत्तर न दे सका, फिर भी जो कुछ कहा उसमें कुछ न कुछ सत्य अवश्य था, इस प्रकार यह सृष्टि है। सक्षेप म, एक ही दृष्टिकोण को पूर्णरूप से सत्य न मानकर, विभिन्न दृष्टिकोणो मे कुछ न कुछ सत्य या उचित मानना ही स्यादवाद है। डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर' के शब्दो मे "जैन दर्शन के अनेकान्तवाद मे समन्वय, सह-अस्तित्व और सहनशीलता का उत्कृष्ट रूप प्रकट होता है।"

III भारतीय सस्कृति को जैन धर्म की देन

जैन धर्म ने भारतीय सभ्यता व सस्कृति पर अमिट छाप छोडी है। वर्तमान भारतीय सस्कृति म अनेक ऐसी विशेषताएँ दिखाई पडती हैं जो कि मूल रूप मे जैनधर्म की देन मानी जा सकती हैं। जैन धर्म की भारतीय सस्कृति को अनुपम देन है उसे निम्नलिखित रूप मे प्रकट कर सकते हैं।

1 **दार्शनिक क्षेत्र मे**—जैन विचारधारा ने ज्ञान सिद्धान्त, स्यादवाद एव अनेकान्तवाद अहिंसा आदि के दार्शनिक विचारो को पनपाकर भारतीय दार्शनिक चिन्तन को गौरवपूर्ण बनाने म योगदान दिया। जैनधर्म के सिद्धान्तो ने हमारे सामाजिक जीवन मे एक नवजीवन का सचार किया और भारतीय चरित्र को दृढ बनाया। अहिंसा पर आधारित गुट निरपेक्ष की हमारी विदेश नीति वर्तमान में भी महत्त्वपूर्ण है। जैन धर्म के अनेकान्तवादी दृष्टिकोण ने हमारे

देश मे धार्मिक उदारता और सहिष्णुता का वातावरण बनाने म काफी सहायता की है ।

2 साहित्य के क्षेत्र मे—भाषा और साहित्य के क्षेत्र में भी जैन धम ने सांस्कृतिक समन्वय को प्रोत्साहन दिया । जैन साहित्य का काफी मात्रा म सजन हुआ है । जैनाचार्यों ने सस्कृत को ही नही, बल्कि अन्य सभी प्रचलित लोक भाषाओं को अपनाकर उन्हे समुचित सम्मान दिया । श्वेताम्बरो के धार्मिक ग्रन्थ अध मागधी मे हैं और 'अग' कहलाते हैं वे सख्या म ग्यारह हैं । इनम भद्रबाहु का 'कल्पसूत्र' प्रमुख है । दिगम्बर सम्प्रदाय के धम ग्रन्थ सस्कृत भाषा मे है । वे चार भागो म 'वेद' के नाम से सकलित किए गए । इनके अतिरिक्त समय-समय पर जैन विद्वान काव्य, दशन, व्याकरण, छन्द शास्त्र, कोष, गणित आदि विविध विषयो पर साहित्य की रचना करके हमारे देश के साहित्य को समृद्ध बनाते रहे हैं । जनग्रन्थो की एक उपयोगिता इस बात में भी निहित है कि वे प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी के महत्त्वपूर्ण साधन स्वीकार किये गये हैं।

3 कला के क्षेत्र मे—भारतीय कला के स्वरूप को निखारने और उन्नत बनाने म भी जैन धम का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । जन धर्मावलम्बियो द्वारा अपने तीर्थंकरो की स्मृति में अनेक मन्दिरो, मूर्तियो और स्तूपो का निर्माण कराया गया जो आज भी सुरक्षित हैं । इन धार्मिक भवनो को अधिकाधिक सुन्दर, भव्य तथा अलकृत बनाने का विशेष प्रयास किया जाता था । उनकी अनेक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तको के हाशिया पर रग बिरगे चित्र और वल्लरियाँ बनी पायी जाती हैं । 11 वी तथा 12 वी शताब्दियो मे जन कला उन्नति के शिखर पर पहुँच चुकी थी । आबू पवत के निकट 'देलवाडा का मन्दिर' अपने शिल्प सौन्दय के लिए विश्व प्रसिद्ध है । मैसूर म श्रवण बेलगोला तथा कक्ल मे बाहुबली की विशालकाय प्रतिमा जो 'गोमतेश्वर' के नाम से प्रसिद्ध है विश्व की आश्चयजनक वस्तुओ मे से एक है । मथुरा में उपलब्ध अलकृत द्वार, पाषाण-क्षेत्र तथा प्रतिमायें जन कला की प्रतीक हैं । कतिपय विद्वानो का मत है कि जनियो की कला सादगी से पूर्ण है । इसमें हिन्दू कला की चमक-दमक का अभाव है ।

4 सामाजिक क्षेत्र में—जन मतावलम्बियो का सामाजिक योगदान भी बडे महत्त्व का है । अहिंसा, जीव रक्षा और जीव-सेवा के जो आदश और कृत्य भारतीय समाज में इतने आदर के साथ रखते हैं, उनमे जैनियो का सदैव ही बड़ा हाथ रहा है । जन धम मूलत जाति प्रथा मे विश्वास नही करता । वह जाति को कम प्रधान मानता है, जन्म प्रधान नही । इसीलिए महावीर ने जन धम और मोक्ष के द्वार सभी जातियो, वर्गों और वर्णों के लिए खोल दिये । उन्होने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सभी को जन धर्म म दीक्षित किया । परन्तु आगे चलकर यह धम वश्यो तक ही सीमित रहा ।

अन्य क्षेत्रों मे योगदान —जन धम का आधुनिक भारत म भी महत्त्व है। अहिंसात्मक सत्याग्रह भूमिदान, सम्पत्तिदान भूमि सीमाब धी, धम निरपक्षता जसे आधुनिक सिद्धान्ता और कायक्रमा म जैन दर्शन की भावना का यूनाधिक रूप मे प्रेरक कारण माना जाता है। साराश मे जन साधुओ का जीवन आदश, त्याग, तपस्या पूण और इतना नतिक बना रहा कि उन्होने समाज का समयोचित माग दशन सदव किया।

बौद्ध धर्म (The Buddhism)

वह आन्दोलन जिसने ब्राह्मण धम को सबसे भारी आघात पहुँचाया, वह बौद्ध धम था जो गौतम बुद्ध द्वारा प्रारम्भ किया गया था। यूरोप के लूथर के समान गौतम बुद्ध ने उस भ्रष्टता का विरोध किया जो हिन्दू धम मे घुस गयी थी। छटी शताब्दी ई० पू० को धार्मिक क्रान्ति का युग मानने म हमे जो प्रेरणा बौद्ध धम के अभ्युदय से होती है उतनी अन्य किसी धम से नही। इसका कारण यह है कि इस धम ने विश्व के अधिकाश भागो को प्रभावित किया था और इसके अमर सदेश से सम्पूण विश्व को शान्ति स्थापना की प्रेरणा मिली थी। वास्तव म, भारतीय धर्मों के इतिहास मे बौद्ध मत का स्थान अद्वितीय है। इसने अपने द्वार समाज के सभी वर्गों के लिए खोल दिये थे।

I गौतम बुद्ध का जीवन-चरित्र (Life of Buddha)

बौद्ध धम के सस्थापक गौतम बुद्ध थे। उनका जन्म 566 ई० पू० मे नेपाल की तराई में स्थित शाक्य गणराज्य के कपिलवस्तु के समीप लुम्बिनी ग्राम में हुआ था। कालान्तर मे यही पर सम्राट अशोक ने एक स्तम्भ (रुम्मिन्देह) स्थापित करवाया था जिस पर आज भी "यहा शाक्य मुनि बुद्ध उत्पन्न हुए थे—यहाँ भगवान उत्पन्न हुए थे" पढा जा सकता है। उनके जन्म का नाम सिद्धाथ था और गौतम उनका गोत्र था। इनके पिता का नाम राजा शुद्धोधन तथा माता का नाम महामाया था। बालक के जन्म के सात दिन पश्चात् माता महामाया का देहान्त हो गया। अस्तु, सिद्धाथ का पालन उसकी मौसी और विमाता प्रजापति गौतमी ने किया। इसीलिए इन्हे गौतम भी कहते हैं। गौतम के जन्म पर काल देवल नामक एक तपस्वी ने भविष्यवाणी की थी कि यह बालक आगे चलकर 'बुद्ध' होगा। 'बुद्ध' उस व्यक्ति को कहते हैं जिसे बुद्धि अथवा ज्ञान प्राप्त हो गया है।

बाल्यकाल से ही सिद्धाथ म मस्तिष्क की चिन्तन प्रवत्ति एव सहृदयता तथा दयालुता के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। शशव काल में भी राजकीय वभव राजकुमार के हृदय को मोहित करने म सवथा असमथ रहा। अपने पुत्र म सासारिक जीवन के प्रति गहरी उदासीनता देखकर राजा शुद्धोधन ने उनका विवाह यशोधरा नाम की सुन्दर राजकुमारी से कर दिया। इस नव दम्पत्ति के प्रासाद को शुद्धोधन ने भोग विलास एव आनन्द की सर्वोत्कृष्ट सामग्री और साधना से परिपूर्ण

कर दिया। पर तु दु खी तथा विषादग्रस्त विश्व के बीच भोग के इन उपकरणों गौतम के आकुल व चिंतित हृदय को शांति न मिली।

महाभिनिष्क्रमण—इन्ही दिनो गौतम ने चार ऐसे दृश्य देखे जिनसे उन जीवन पूर्ण रूप से पलट गया। कहते हैं कि नगर दर्शन के हेतु भिन्न भिन्न अवर पर बाहर जाते हुए गौतम को मार्ग म पहले जर्जर शरीर वृद्ध, फिर व्यथा रोगी, फिर मृतक और सबसे बाद को वीत राग प्रसन्न चित्त संन्यासी के दर्शन हु इससे उनके दिल और दिमाग पर हर एक की गम्भीर प्रतिक्रिया हुई। उन्ह जवानी, स्वास्थ्य और शरीर को अस्थायी, संसार को अनित्य एव दु खमय समझ उन्होंने संन्यासी होने का दृढ निश्चय कर लिया। जीवन की अनन्त समस्या उसके कष्टो तथा मृत्यु की भावना से वह आक्रान्त हो गये, उनकी शांति भग गयी और वह वासना से रहित एकान्तवास की गम्भीर शान्ति की ओर अधि आकर्षित हुए। अन्त म, गौतम ने सांसारिक दु खो से निवृत्ति का मार्ग खोजने उद्देश्य से एक रात्रि को 29 वर्ष की अवस्था में गृह त्याग कर दिया। बौद्ध साहि मे यह गृह त्याग महाभिनिष्क्रमण के नाम से प्रसिद्ध है।

ज्ञान की खोज मे महान बुद्धत्व की प्राप्ति—निरन्तर छ वर्षो तक गौ संन्यासी का जीवन व्यतीत करते रहे। इस काल म उन्होने दो ब्राह्मण आचा के आश्रमो मे अध्ययन किया एव पटना जिले के राजगृह तथा गया के सम उरुवला आदि अनेक स्थानो का भ्रमण किया। इतने पर भी उनकी जिज्ञासा न मिटी और न ही सन्तोष हुआ। उन्हे वह प्रकाश कही भी नही मिला जिसकी उ तलाश थी। तब उन्होने उरुवला के सघन वन म कठोर तप किया और अपने श को अनेक कडी यातनाएँ दी एव सत्य की प्राप्ति के लिए निष्फल प्रयास कि अन्त मे उन्होंने तपस्वी जीवन को त्याग दिया शरीर यातना छोड दी तथा निरं नदी मे स्नान कर वर्तमान बोध गया मे पीपल वृक्ष के नीचे तृण के आसन पर गये। वहा उन्होने एन्द्रियक सुखो तथा दूषित विचारो से परे रहकर ज्ञान प्रा का यत्न किया। यहा उन्हें सहसा सत्य के दर्शन हुए और सच्चा ज्ञान प्राप्त हुआ उन्हें यह प्रकाश मिला कि महान शान्ति उनके हृदय मे ही है, उन्हे वहीं उस खोज करनी चाहिए। यही 'महान बुद्धत्व' कहा गया। तब से वे 'बौद्ध' 'तथागत' कहलाये। इस तरह अपनी आयु के पैंतीसवें वर्ष म गौतम ने 'बुद्ध प्राप्त किया।

धर्म प्रचार—ज्ञान प्राप्ति के पश्चात बुद्ध ने अपना शेष जीवन को ज साधारण के हित मे लगाने का निश्चय किया। वे उस प्रकाश से जिससे उन्ह जीवन के सत्य का स्वयं ज्ञान प्राप्त किया था, संसार के प्राणी प्राणी को बता चाहते थे जिससे विश्व का कल्याण हो सके। अस्तु, वे बनारस के समीप हिर कुंज मे गये और वहाँ उन्होने अपना धार्मिक उपदेश दिया। जिसके परिणामस्व

पाच शिष्य उनके साथ हो गये। उनके भावी जीवन के शेष पैंतालीस वर्ष अनवरत परिश्रम तथा सक्रियता के थे। वे इस काल में एक स्थान से दूसरे स्थान तक भ्रमण करते रहे और अवध, बिहार तथा उनके पार्श्ववर्ती प्रदेशों में अपना सन्देश राजा और रंक सबको सुनाते रहे। कोशल नरेश प्रसेनजित एवं मगध नृपति बिम्बसार तथा अजातशत्रु ने उनके सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया और उनके शिष्य हो गये। उन्होंने अपने अनुयायी साधुओं का एक 'संघ' स्थापित किया। वे अपनी जन्म भूमि में भी गये, उनका पुत्र 'राहुल' भी भिक्षु बन गया।

बुद्ध बुराई का बदला अच्छाई में और घृणा का बदला प्रेम में देने में विश्वास करते थे। उन्होंने जाति पाँति और ऊँच नीच की भावना से दूर रहते हुए सभी को उपदेश दिया। इस तरह, "जैसे कोई औंधे को सीधा करदे, ढँके को खोल दे, भूले का मार्ग दिखादे, अँधकार में तेल का दीपक रख दे जिससे कि आँख वाले रूप को देखें, वैसे भगवान बुद्ध ने अनेक पर्याय से धर्म को प्रकाशित किया।" वर्षाकाल को छोड़कर वर्ष के शेषकाल में महात्मा बुद्ध तथा बौद्ध भिक्षु लगातार पर्यटन किया करते थे। इसके फलस्वरूप हजारों स्त्री पुरुष उनके शिष्य बने। उनके अनुयायियों की प्रमुखतः दो श्रेणियाँ थीं। गृहत्याग कर बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण करने वाले स्त्री-पुरुष भिक्षुणि और भिक्षु कहलाते थे। शेष अनुयायी वर्ग गृहस्थों का था जो उपासक या उपासिकाएँ कहलाते थे।

महानिर्वाण—दीर्घकाल तक मुक्ति के हेतु उपदेश देते, अनवरत प्रचार एवं वार्तालाप करते हुए धर्म के ये महारथी अन्त में अस्सी वर्ष की अवस्था में 486 ईसा पूर्व में उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में कुशी नगर (वर्तमान कसिया) में निर्वाण को प्राप्त हुए। इसे 'महानिर्वाण' कहते हैं। वैशाख पूर्णिमा के दिन गौतम बुद्ध का जन्म हुआ, इसी पूर्णिमा के दिन उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ और इनका निर्वाण भी वैशाख पूर्णिमा को ही हुआ। विश्व इतिहास में ऐसा उदाहरण किसी अन्य जीवन में नहीं मिलता। बुद्ध ने निर्वाण से पूर्व अन्तिम बार अपने शिष्य आनन्द तथा अन्य भिक्षुओं को उपदेश दिया—"आनन्द! शायद तुम ऐसा सोचो कि हमारा शास्ता (मार्ग दर्शक) चले गए, अब हमारा शास्ता नहीं है! आनन्द! ऐसा मत समझना। मैंने जो धर्म और विनय उपदेश किए हैं, प्रज्ञप्त किए हैं, मेरे बाद वे ही तुम्हारे शास्ता होंगे।" 'इसलिए, आनन्द! आत्मदीप, आत्मशरण, अनन्यशरण, धर्मदीप धर्मशरण, होकर विचारो।"

II महात्मा बुद्ध के सिद्धान्त एवं उपदेश

बौद्ध धर्म मुख्य रूप से आचार धर्म है। भगवान बुद्ध ने दर्शन पक्ष पर नहीं, व्यवहार पक्ष पर अधिक जोर दिया। बुद्ध ने ऐसे प्रश्नों पर कोई ध्यान नहीं दिया जो साधारण बुद्धि की पहुँच से परे हों। उन्होंने विशुद्ध धार्मिक क्रियाओं

की अपेक्षा शुद्ध आचरण अर्थात शुद्ध विचार शुद्ध कर्म और शुद्ध भावना पर अधिक बल दिया।

बुद्ध का कथन है कि शुद्ध आचरण द्वारा कोई भी व्यक्ति 'निर्वाण' प्राप्त कर सकता है। अनेकानेक अन्य धर्मों के प्रतिकूल बौद्ध धर्म इसी जीवन मे निर्वाण दिलाता है। वह मानव के चरमोत्कर्ष का साधन था। वह इहलोक और परलोक की समग्र मान्यताओ का माप दण्ड था। वह जीवन का विषय है, मृत्यु का नही।

भगवान बुद्ध का धर्म किसी यान्त्रिक कर्मकाण्ड, सूक्ष्म दार्शनिकता अथवा पौराणिक अन्ध मान्यता के ऊपर आधारित न था। उनका आधार तो विराग, असग्रह, सन्तोष और अध्यवसाय जसे उदात्त सिद्धान्त ही थे जो जन साधारण के लिए भी सुबोध थे। तथागत का धर्म जनवादी था। वह किसी वर्ग विशेष की सम्पत्ति न था। इसके द्वार सबके लिए खुले थे। जड मतवादो से परे वह विश्व धर्म था। वह बहुजन हितार्थ, बहुजन सुखाय, लोक अनुकम्पा के लिए सुख के लिए था। डॉ सुनीति कुमार चटर्जी के शब्दो म बौद्ध धर्म 'आदर्श का महासागर' है 'जिसम पूर्वीय विचारधारो की भिन्न भिन्न नदिया मिली हैं।' अस्तु, कहा जा सकता है कि महात्मा बुद्ध का धर्म अपने मौलिक रूप म मानवता की उच्चतम प्रतिष्ठा का सस्थापक था।

बुद्ध के प्रमुख सिद्धान्त—गौतम बुद्ध के सिद्धान्तो को समझने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि गौतम बुद्ध (1) ईश्वर म विश्वास नही रखते थे, (2) आत्मा को नित्य नही मानते थे, (3) किसी ग्रन्थ को स्वत प्रमाण नही मानते तथा थे(4) जीवन प्रवाह को इसी शरीर तक परिमित नही मानते थे। गौतम बुद्ध ने वेदो की प्रामाणिकता और अपौरुषेयता को अस्वीकृत किया। पशु—यज्ञो की आपत्ति जनक बताते हुए उनकी निन्दा की। जटिल, अर्थहीन विस्तृत वदिक विधियो एव अनुष्ठानो का भी उन्होने विरोध किया तथा जाति प्रथा व ब्राह्मणो के प्रभुत्व को चुनौती दी। बुद्ध के उपदेशो अथवा बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को निम्नलिखित शीर्षको में समझा जा सकता है—

1, चार आर्य सत्य, 2 अष्टांगिक मार्ग, 3 दस शील (आचरण के नियम), 4 मुख्य दार्शनिक सिद्धान्त, एव 5 अन्य उपदेश।

चार आर्य सत्य (चत्वारि आर्य सत्यानि)

महात्मा बुद्ध की शिक्षा के मूलभूत सिद्धांत चार आर्य सत्यो म व्यक्त किये गये हैं। बुद्ध ने अपने प्रथम पाँच शिष्यो को चार आर्य सत्यो का उपदेश दिया था। उन्होने बताया कि "चार आर्य सत्य हैं" जिन्हें अंगीकार करके ही मनुष्य निर्वाण का पथ पा सकता है। ये सत्य निम्नलिखित थे—दुःख, दुःख का कारण (दुःख समुदाय), दुःख का दमन (दुःख निरोध)और दुःख के शमन का मार्ग (दुःख

निरोध गामिनी प्रतिवाद)। दूसरे शब्दों में, उन्होंने बताया कि जीवन में कष्ट है, इस कष्ट का मूल कारण है और इस कारण को नष्ट करके इसके कष्ट का निवारण किया जा सकता है।

1 सवम दुखम—प्रथम आर्य सत्य यह है कि संसार दुखमय है। इस जगत में सारा और दुख ही दुख है। बुद्ध के शब्दों में, "जन्म ही दुख है, जरा भी दुख है, व्याधि भी दुख है, मरण भी दुख है, अप्रिय मिलन भी दुख है, प्रिय वियोग भी दुख है, इच्छित वस्तु की अप्राप्ति भी दुख है।"

2 दुख समुदाय—दूसरा आर्य सत्य यह है कि संसार का दुख अकारण नहीं है। मनुष्य किसी न किसी कारण से दुखी होता है। बुद्ध के अनुसार दुख का मूल कारण तृष्णा है। काम की तृष्णा, भव (उत्पन्न होने) की तृष्णा, विभव की तृष्णा आदि दुख के मूल कारण हैं। अस्तु, कष्ट का कारण भौतिक वस्तुओं का सुख भोगने की वासना या इच्छा या तृष्णा है। यह तृष्णा ही मानव के जन्म और मृत्यु का कारण है। सतृष्ण मनुष्य कभी भी दुख से उद्धार नहीं पा सकता। अविद्या और तृष्णा केवल दुख ही दुख उत्पन्न करती है।

3 दुख निरोध—तीसरा आर्य सत्य है कि दुख का निरोध सम्भव है। दुख के मूल तृष्णा के अन्त करने को दुख निरोध कहते हैं। दुख का नाश तृष्णा के नाश से ही सम्भव है। बुद्ध के शब्दों में, यदि दुख का अन्त करना है तो तृष्णा का परित्याग करना चाहिए। तृष्णा के समाप्त होने पर ही दुख की समाप्ति होती है।

4 दुख निरोधगामी मार्ग—चौथा आर्य सत्य यह है कि दुखों से छूटने का मार्ग अर्थात् उपाय भी है। दुख के मूल कारण तृष्णा का किस प्रकार विनाश किया जाय यही मनुष्य के सम्मुख वास्तविक समस्या है। बुद्ध के मतानुसार यौगिक क्रियाएँ या तपस्या अथवा शारीरिक यातनाएँ न तो तृष्णा का अन्त ही कर सकती हैं और न पूर्वज में तथा उसके कष्टों से मुक्ति ही दिला सकती हैं। मस्तिष्क की वासनाओं एवं तृष्णा से विरक्त करने के लिए बारम्बार प्रार्थना, या यज्ञ या वेद मन्त्रों का उच्चारण निष्फल है। बुद्ध ने बताया कि इस तृष्णा का विनाश 'अष्टांगिक मार्ग' के अनुकरण से ही हो सकता है। अष्टांगिक मार्ग अथवा आठ आचरणों के अनुपालन से अन्तःकरण की शुद्धि होकर ज्ञान का उदय होता है जिससे तृष्णा और अविद्या का नाश होता है।

अष्टांगिक मार्ग

यह साधना-मार्ग भोग और तप के बीच का मार्ग है। निर्वाण की अवस्था प्राप्त करने हेतु इसका पालन अति आवश्यक है। महात्मा बुद्ध ने स्वयं कहा है कि "आनन्द! इस समय मन भी यह कल्याणवर्त्म स्थापित किया है जो एकान्त निर्वेद के लिए, विराग के लिए, निरोध के लिए, उपशम के लिए, अभिज्ञा के लिए, सम्बोधि के लिए—वह यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है।" इस अष्टांगिक मार्ग में ये बातें हैं -

1 सम्यक् दृष्टि—जिन चार सत्यो का बुद्ध ने प्रथम प्रथम धर्मोपदेश म वर्णन किया है उसका ज्ञान और उनम विश्वास और श्रद्धा इसका ग्रहण कर मनुष्य पाप पुण्य, सदाचार-बुराई म भेद कर सकता ह ।

2 सम्यक् सकल्प —इसके अनुसार राग, द्वेष, हिंसा, सासारिक विषयो के परित्याग के लिए दृढ सकल्प जरूरी है । हमे किसी से न तो ईर्ष्या या द्वेष रखना चाहिए और न दूसरो को कष्ट पहुँचाना चाहिए ।

3 सम्यक वाणी —जो वाणी सत्य, विनम्रता और मृदुता से समन्वित होती ह उस सम्यक वाणी कहते हैं । इसका महत्त्व यह ह कि हम अपने आपको असत्य भाषण, निन्दा, गाली गलोज, कठोर शब्द और अर्थहीन वार्तालाप से दूर रखें ।

4 सम्यक कर्म—सत्कर्म करना ही सत्य कर्म है । इसका अर्थ यह है कि जो वस्तु हमारी नही है, उसे प्राप्त करने का प्रयत्न न करें एव अत्यधिक शारीरिक तथा सासारिक विषय वासना मे लिप्त न रहें ।

5 सम्यक आजीविका—इसके अनुसार जीवन यापन हेतु जो जीवन मार्ग निषिद्ध हैं । उनका अनुकरण न किया जाय । व्यक्ति को ऐसी जीविका के अर्जन के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए जो नतिक नियमो के विरुद्ध न हो ।

6 सम्यक व्यायाम—शुद्ध ज्ञानयुक्त प्रयत्न जिससे धर्म दृष्टि उत्पन्न हो सम्यक् व्यायाम है । इसके अनुसार, अवगुणो के नाश का प्रयास करना, नए अवगुणो से बचना, गुणो को प्राप्त करना एव आचार विचार द्वारा गुणो म वद्धि करना चाहिए ।

7 सम्यक् स्मृति—समस्त कार्यों को विवेकपूर्वक करना सम्यक स्मृति ह । आत्मा और शरीर को ऐसी दृष्टि से देखना कि स्वय पर नियत्रण रहे, सतर्कता हो एव तीव्र लालसा, उग्र-वासना व विषाद पर विजय प्राप्त हो सके ।

8 सम्यक् समाधि—चित्त को एकाग्र करना ही समाधि है । चार आर्य सत्यो को निरन्तर ध्यान म रखना चाहिए । अष्टागिक मार्ग का यह अन्तिम और श्रेष्ठ भाग है ।

मध्यम प्रतिपदा या मध्यम मार्ग—"यह अष्टागिक मार्ग एक ओर अत्यन्त भोग विलास तथा दूसरी ओर कठोर तप एव बडी शारीरिक यातनाओ के बीच का मार्ग है । इसलिए मध्यम मार्ग (मज्झिम मग्ग) कहा गया है । इसमें मनुष्य को उपदेश दिया गया है कि वह अपना धार्मिक और नतिक जीवन किस प्रकार व्यतीत करे । यह मार्ग सरल, शिक्षा व नीति मूलक, व्यवहार प्रधान और तर्क सगत है । चतुर वैद्य के समान महात्मा बुद्ध ने दुखी मानव को दुख से निवृत्ति पाने का अचूक मार्ग बताया तथा एकाग्रता व कुशलता से उस पर चलना सिखाया । बुद्ध के अनुसार इसी मार्ग का अनुकरण करने से निर्वाण की प्राप्ति होगी ।

दस शील आचरण के दस नियम

महात्मा बुद्ध ने लोगों के नैतिक आचरण को उन्नत करने के अभिप्राय से 'दस शील' पर अधिक जोर दिया। उसके अनुसार जीवन व्यतीत करने से मानव का आचरण उन्नत होगा और वह निर्वाण प्राप्ति की ओर अग्रसर होता जायेगा। उन्होंने अपने अनुयायियों को मन, वचन और कर्म से पवित्र रहने को कहा। दस शील (सदाचार के दस नियम) इस प्रकार हैं —(1) अहिंसा-व्रत का पालन करना। (2) सदा सत्य बोलना। (3) चोरी न करना। (4) ब्रह्मचर्य अथवा अति भोगविलास से दूर रहना। (5) अपरिग्रह अर्थात वस्तुओं का संग्रह न करना। बुद्ध के अनुसार इन पाँच नियमों का पालन करना गृहस्थ अनुयायियों तथा साधु उपासकों दोनों के लिए आवश्यक है। इनका पालन करते हुए संसार त्याग नहीं करने पर भी मनुष्य सन्मार्ग की ओर बढ़ सकता है। परन्तु जो व्यक्ति संसार की मोह माया छोड़कर भिक्षु जीवन बिताता है उसके लिए अगले पाँच नियमों का भी पालन करना आवश्यक है (6) नृत्य गान आदि आमोद प्रमोद का त्याग (7) सुगंधित वस्तुओं का त्याग (8) असामयिक भोजन का त्याग। (9) कोमल शय्या का परित्याग, तथा (10) कामिनी और कंचन का त्याग।

महात्मा बुद्ध ने सदाचार की जो शिक्षा दी वह अत्यंत सरल है। उनकी मान्यता थी कि मनुष्य स्वयं अपने प्रयत्नों से सांसारिक दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इस मुक्ति के लिए उसे किसी ईश्वर की आवश्यकता है न देवता की। बुद्ध के शब्दों में, "मुक्ति के लिए दूसरा आश्रय मत ढूँढो। बिना प्रमाद किए अपनी मुक्ति के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहो। ईश्वर अथवा किसी देवता की कृपा पर निर्भर रहने की अपेक्षा अपने कर्मों द्वारा उद्धार करो।"

बौद्ध धर्म के प्रमुख दार्शनिक सिद्धान्त

कर्मवाद—बौद्ध धर्म कर्मवाद में विश्वास रखता है। महात्मा बुद्ध का कहना था कि मनुष्य जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। अच्छे कर्मों का अच्छा फल मिलता है और बुरे कर्मों का बुरा फल। मनुष्य का यह लोक और परलोक उसके कर्म पर निर्भर है। यदि व्यक्ति अपने दुःखों से मुक्त होना चाहता है तो उसे अपने कर्मों को सुधारने चाहिये। अच्छे कर्म करने पर ही निर्वाण प्राप्त हो सकता है।

ईश्वर में अविश्वास—बुद्ध ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते थे। यद्यपि कभी भी उन्होंने स्पष्ट शब्दों में ईश्वर के अस्तित्व का खण्डन नहीं किया। किन्तु जब कभी उनसे ईश्वर के बारे में प्रश्न पूछा जाता तो वे मौन धारण कर लेते थे या प्रश्न को टाल जाते थे।

निर्वाण—बुद्ध धर्म का अन्तिम लक्ष्य निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त करना है 'निर्वाण' का अर्थ है 'बुझना'। बुद्ध का कथन है कि मन में पैदा होने वाली तृ

या वासना की अग्नि को बुझा देने पर निर्वाण प्राप्त हो सकता है। यह निर्वाण इसी जन्म मे, इसी लोक मे प्राप्त किया जा सकता है। दु ख निरोध की अवस्था या पूर्ण ज्ञान ही निर्वाण अवस्था की प्राप्ति है।

प्रतीत्य समुत्पाद का सिद्धान्त महत्त्व—बौद्ध धर्म नितान्त कारणवादी है। 'प्रतीत्य' का अर्थ है 'इसके होने से' और 'समुत्पाद' का अर्थ है—'यह उत्पन्न होता है।' अर्थात किसी कारण से कोई बात उत्पन्न होती है। बिना कारण कुछ घटित नहीं होता। महात्मा बुद्ध ने अनेक बार अपने प्रवचनो मे इस कारण कार्य के दार्शनिक सिद्धान्त की विवेचना की है। प्रत्येक कार्य का फल होता है। एक बात से दूसरी बात उत्पन्न होती है। यदि 'यह' नहीं, तो 'वह' भी नहीं होगा। "इस धर्म (प्रतीत्य समुत्पाद) को न जानने से, न प्रतिवेध करने से ही ये प्रजा मे उलझे सूत-सी गांठ रस्सी सी, मूंज बल्बज सी दु ख, दुर्गति, पतन, विनिपात को प्राप्त हो संसार से पार नहीं हो सकती।" रोग के कारण को जाने बिना निदान नहीं हो सकता। कर्मवाद, क्षणिकवाद, आत्मा की अनित्यता आदि सिद्धान्तो पर प्रतीत्य समुत्पाद के नियम का ही महत्त्वपूर्ण प्रभाव दिखाई देता है। अत इस नियम को बौद्ध दर्शन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विचार माना जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। स्वय बुद्ध ने इसे इतना महत्त्वपूर्ण माना कि उन्होने इसे 'धर्म' की संज्ञा दी।

महात्मा बुद्ध का मूल्यांकन

बौद्ध धर्म आध्यात्मिक सत्य और प्रेम के स देश को दरिद्रो की झोपडियो से लेकर नरेशो के राजमहलो तक ले गया और भारतीय इतिहास पर अपने प्रभाव की अमिट छाप छोड गया। भारतीय संस्कृति और धर्म के दीप को भारत की सीमा के परे बौद्ध धर्म सफलतापूर्वक ले गया।

बौद्ध धर्म के संस्थापक महात्मा बुद्ध के सम्बन्ध मे प्रसिद्ध विद्वान विलड्यूरण्ट ने लिखा है कि बुद्ध "दृढ सकल्प शक्ति वाला, स्वाभिमानी किन्तु व्यवहार और भाषण मे सुशील, नम्र, सौम्य और अत्यन्त दानशील था। वाद विवाद मे वह सदा शान्त रहने वाला और दूसरो की भावनाओ को ठेस न पहुंचाने वाला व्यक्ति था। उसने ज्ञान प्राप्ति का दावा किया था, स्फुरण का नहीं। उसने कभी यह नहीं कहा कि कोई देवता उसके अन्दर से बोल रहा है।'

बुद्ध भविष्य-कथन से घृणा करते थे। इस सम्बन्ध मे उन्होने स्वय कहा था—"रहस्यवादी चमत्कारो से मुझे घृणा है। क्योकि ये हानि पहुंचाने वाले हैं।" वे सत्य के पक्ष मे थे। उनमे तर्क वितर्क की अपार शक्ति विद्यमान था। उन्ही के शब्दो मे "तर्क वितर्क मे मुझे न तो कोई भ्रान्त कर सकता है और न ही परास्त। यही कारण है कि मैं तर्क युद्ध के समय अत्यन्त शान्त और स्थिर बना रहता हू।" बुद्ध देखने मे सुन्दर, विश्वसनीय, प्रभावशाली, व्यक्तित्ववाला, गौरवपूर्ण और राजसी दीख पडते थे।

बुद्ध के शिष्यो ने उन्हे य श्रद्धाजलिया अर्पित की हैं—"उसने डण्डे और तलवार को एक ओर रख दिया था। रूखापन तो कभी उसके पास फटक तक न पाया था। लाछन और कलक तथा दूसरो पर कीचड उछालने की जगह उसने जीव मात्र को अपनी दया का पात्र बनाया। यह बिछ ुडे हुओ को मिलाने वाला और मिले हुओ को पुष्टि प्रदान करने वाला व्यक्ति था। इसके अतिरिक्त शान्ति स्थापक, शान्ति प्रिय और शान्ति प्रचारक आदि आदि कितने ही विश्लेषणा से उसे सम्बोधित किया जा सकता है।" वास्तव म, महात्मा बुद्ध अपने समय के अद्वितीय महापुरुष थे।

III बौद्ध धम के सम्प्रदाय हीनयान और महायान

बुद्ध के देहावसान के एक शताब्दी पश्चात् बौद्ध सघ दो प्रशाखाओ में विभाजित हो गया—'महासांघिक' एव 'स्थिर वादिन'। बौद्ध धम को जातक' तथा 'अवदान' द्वारा अधिक लोकप्रिय बनाने का यह परिणाम था। वह प्रगतिशील प्रशाखा जो अनुशासन के नियमो की कठोरता को कम करना चाहती थी 'महासाघिक' नाम से प्ररयात हुई। किन्तु वह रूढिवादी प्रशाखा जो कठोर सघ-जीवन के मूल के विचार तथा दृढ अनुशासन के नियमो का प्रतिपादन करती थी, 'थेरा' या 'स्थविर वादिन नाम स प्रसिद्ध हुई। मह साघिक ने, जो बौद्ध भिक्षुओ का प्रगतिशील भाग था, साधारण जनता म बौद्ध धम के प्रति अनुराग उत्पन्न करने हेतु 'परिमित' (दान, सहिष्णुता, उदारता के गुण) के सिद्धान्तो का उपदेश देना प्रारम्भ किया। पालि पिटको (धम ग्रन्थो) मे प्रतिपादित कठोर भिक्षु जीवन के विरोध मे उन्होने एक नवीन आन्दोलन का श्रीगणेश किया। यह आन्दोलन बौद्ध धम को एकान्त विहारो मे से नगरो एव ग्रामो मे ले आया और इसे एकान्त-वासियो के धम से जनता के धम में परिवर्तित कर दिया। आगे चलकर इसी प्रशाखा से महायान सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। बौद्ध धम म लगभग 18 सम्प्रदाय बन गय थे, किन्तु इनमे महायान और हीनयान सम्प्रदाय ही प्रमुख है।

हीनयान सम्प्रदाय व उनके सिद्धान्त—हीनयान सम्प्रदाय बौद्ध धम के प्राचीन स्वरूप (मूल रूप) को महत्त्व देता है। हीनयान सम्प्रदाय महात्मा बुद्ध को आदि धम प्रवत्तक तथा निर्वाण प्राप्त एक महापुरुष मानता है। वह बुद्ध को ईश्वर का अवतार नहीं मानता है। वह कमवाद एव पुनजन्म मे विश्वास रखता है। परन्तु बुद्ध की भाति वह ईश्वर की सत्ता मे विश्वास नहीं रखकर स्वय पर विश्वास रखता है। हीनयान मत का मानना है कि बुद्ध के बताये माग का अनुसरण करन से निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है। इस सम्प्रदाय का कथन है कि अपने लिए स्वय प्रकाश बनो। हीनयान सम्प्रदाय को समयानुसार राजाओ का सरक्षण प्राप्त हुआ, जिससे वह विकसित होता गया और शिक्षित व्यक्तियों का धम बन गया।

महायान सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव—बौद्ध धर्म के जिन अनुयायियों ने इन कठिन मार्ग को सरल बनाने के लिए कुछ नवीन एवं सरल मान्यताओं का विकास कर उसके अनुसार चलना आरम्भ किया, वे महायानी कहलाये। ईसवी सन् की शुरूआत के साथ साथ बौद्ध धर्म में हीनयान और महायान का यह भेद स्पष्ट रूप से सामने आ गया। महायान सम्प्रदाय अपनी सरलता के कारण भारतवर्ष में ही नहीं बल्कि चीन, जापान और कोरिया तक में फैल गया। इस सम्प्रदाय ने स्वयं को समय और परिस्थिति के अनुसार ढाला जिससे इसकी सदस्य संख्या बढ़ती ही चली गई।

महायान सम्प्रदाय कुछ अंशों में तो अश्वघोष जैसे विद्वान ब्राह्मणों के जिन्होंने बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया था, हिन्दू धर्म तथा बौद्ध धर्म को परस्पर समन्वय करने के प्रयासों का फल था, और कुछ अंशों में उन अनेक नवीन प्रभावों—यूनानी, इसाई, पारसी, मध्य एशिया का फल था जो उत्तरी-पश्चिमी भारत के जीवन में घर कर रहे थे। जब विदेशी आक्रमणकारियों ने बौद्ध धर्म को अपना लिया तब उसकी मूल विशिष्टताएँ विलुप्त हो गयीं। बुद्ध अतीत के धर्मोपदेशक नहीं रहे, वे राम और कृष्ण के समान मानव जाति की मुक्ति के उद्धारक व ईश्वर हो गये। बौद्धों ने अवतार सिद्धान्त को अपना लिया और ऐतिहासिक गौतम बुद्ध आदि बुद्ध के विविध अवतारों के अंतिम अवतार माने जाने लगे और उनकी प्रतिमा की पूजा होने लगी। इसके साथ ही साथ अनेक लक्षणों तथा विशिष्टताओं वाले कई देवी देवताओं की भी उत्पत्ति हुई। यह बौद्ध धर्म का नवीन रूप, महायान था।

महायान सम्प्रदाय की विशेषताएँ—मौलिक बौद्धमत जिसे हीनयान कहते हैं, पूर्णतया बुद्धिवाद पर आधारित था। उसमें प्रतिपादित चार आर्य सत्य, अष्टांगिक मार्ग तथा निर्वाण के विचार केवल बौद्धिक वर्ग के समझ में आ सकते थे। मूल बौद्ध धर्म में गृहस्थों के लिए निर्वाण (मोक्ष) की व्यवस्था हीन थी। इसलिए, बौद्ध धर्म में ऐसे परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव हुई जो सर्वसाधारण को अपनी ओर आकर्षित कर सके और जिसमें गृहस्थों के लिए भी निर्वाण की व्यवस्था हो। महायान मत का उदय इन आवश्यकताओं को पूरा करने में सफल रहा। इस मत की अपनी अनेक विशेषताएँ थीं।

महायान सम्प्रदाय की मान्यता है कि बुद्ध के पूर्व भी बौद्ध धर्म के अनेक प्रवर्तक हो चुके थे, जिन्हें वे "बोधिसत्व" कहते हैं। महायान मत अपने स्वयं के लिए बुद्धत्व या निर्वाण को प्राप्त करना उचित नहीं समझता जबकि उसके अन्य साथी दुःख और कष्टों के बन्धन में जकड़े हुए हैं।[1] वह ऐसे लोगों की सेवा को निर्वाण से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण समझता है। उसके लिए मात्र की भलाई और सेवा ही जीवन का परम लक्ष्य है। इसके अति- सम्प्रदाय में

बुद्ध की मूर्ति पूजा चल पडी। महायान वालो ने बुद्ध को परमात्मा और अवतार मानना शुरू कर दिया। यही नही, महायान मत की यह मान्यता हो गई कि ईश्वर के अवतार बुद्ध तथा बोधिसत्वो की भक्ति के द्वारा निर्वाण या मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है।

हीनयान और महायान सम्प्रदायो मे मुख्य अन्तर—महायान मत प्राचीन वास्तविक धर्म जिसे हीनयान कहते है, अनेक बातो मे भिन्न था।

(1) बुद्ध तथा बोधिसत्व की मूर्ति पूजा का प्रारम्भ, जो महायान मत की विलक्षणता थी, हीनयान मत के सर्वथा प्रतिकूल थी।

(2) हीनयान मत की यह धारणा थी कि व्यक्तिगत रूप से सच्चरित्र जीवन व्यतीत करने से निर्वाण की प्राप्ति होती है, पर महायान मत का विश्वास था कि निर्वाण की अभिप्राप्ति के हेतु बुद्ध के प्रति भक्ति एव श्रद्धा तथा उनका पूजन अनिवार्य है।

(3) हीनयान मत के समस्त धार्मिक ग्रन्थ पालि भाषा मे लिखे गये, परन्तु महायान ने संस्कृत का आश्रय लिया।

(4) हीनयान सम्प्रदाय वाले गौतम बुद्ध को एक महान पुरुष के रूप मे अपना गुरु, आचार्य तथा पथ प्रदर्शक मानते है। इसके विपरीत महायान सम्प्रदाय वाले तथागत बुद्ध को ईश्वर का रूप देकर उनकी पूजा करने लगे। उसे अवतार मानने लगे थे।

(5) गौतम बुद्ध ने वैदिक धर्म के प्रचलित अन्ध विश्वासो के विरुद्ध आवाज उठायी थी, जिसका हीनयान मत वाले अनुसरण करते थे। परन्तु, महायान सम्प्रदाय वालो ने सस्ती लोकप्रियता के चक्कर मे तन्त्र मन्त्रो का सहारा लिया।

(6) हीनयान मे निर्वाण प्राप्त करने के लिए भिक्षु-जीवन ग्रहण करना आवश्यक है। परन्तु, महायान मत मे इसे आवश्यक नही समझा जाता।

(7) हीनयान की तुलना मे महायान का प्रचार विदेशो मे बहुत अधिक हुआ।

इस तरह, महात्मा बुद्ध की भविष्यवाणी सत्य हुई कि "उनका धर्म 500 वर्ष तक शुद्ध रहेगा।' महायान के उदय तक बौद्ध धर्म अपनी शक्ति के चरम उत्कर्ष पर पहुँच चुका था। उसके पश्चात् धीरे धीरे उसका ह्रास होता चला गया।

IV बौद्ध धर्म की भारतीय संस्कृति को देन

"बौद्ध मत के प्रसार के फल केवल एक महान कला और संस्कृति तक सीमित नही हैं। उसने अनेक महापुरुषो को भी जन्म दिया है।'

—क्रिस्टोफर हम्फरी

बौद्ध धम का व्यापक प्रचार और प्रसार भारतीय इतिहास की एक महान् घटना है। भारतीय सस्कृति की श्री सम्पन्नता म इस धम के फलस्वरूप अत्यधिक अभिवद्धि हुई। भारतीय जीवन के विविध अगो को ढालने म बौद्ध धम की प्रगति का बहुत बडा हाथ रहा। सास्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक सभी अगो पर बौद्ध धम का प्रभाव पडा। बौद्ध धम की प्रमुख देनो का विवेचन, अध्ययन की सुविधा के लिए, निम्नलिखित शीपको के अतगत प्रस्तुत है।

1 सरल सुबोध एव लोकप्रिय धम—बौद्ध धम का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और क्रातिकारी योगदान धार्मिक क्षेत्र म था। बौद्ध धम ने जटिल तथा दुर्बोध कमकाण्ड रहित लोकप्रिय धम दिया। इससे पूव वदिक धम, जिसम प्राकृतिक शक्तियो के प्रतीक देवताओ की उपासना प्रधान थी और जिसके उपनिषदो मे निगुण ब्रह्म के गीत गाये थे, जन साधारण के लिए दुरूह था। परन्तु बौद्ध धम अति सरल, सुबोध तथा नतिक आचरण पर बल देने वाला था एव उसका द्वार सबके लिए खुला था। इस धम की सादगी, भाव प्रधानता, सरल नतिक नियम, जनप्रिय भाषा का प्रयोग, उपमा और दृष्टान्तो स धर्मोपदेश का सब समान ढग तथा सामूहिक प्राथना और पूजन ने जनता के हृदयो पर गहरी छाप जमा दी। इसने सवप्रथम व्यक्तित्व को धम म प्रधानता दी और धम के मानव उद्धारक के रूप म व्यक्तिगत तत्त्व प्रस्तुत किया। डॉ० जदुनाथ सरकार के अनुसार, "बुद्ध ने हमें एक ऐसा लोकप्रिय धम दिया, जो जटिल और समझ रहित रीतियो से मुक्त था तथा जो किसी पुरोहित वर्ग की सहायता के बिना ही किया जा सकता था।"

2 उच्च नतिक आदश—बौद्ध धम ने सदाचार, जन सेवा और स्वाथ त्याग के उच्च आदर्शों पर अधिक जोर दिया। बौद्ध धम के महायान मतावलम्बियो ने बोधिसत्व के रूप म जन-सेवा का श्रेष्ठ आदश लोगो के सम्मुख रखा। इस आदश ने एक ओर बौद्ध धम के प्रचार मे महत्त्वपूण योग दिया तो दूसरी ओर हिन्दू धम को भी अत्यधिक प्रभावित किया। बौद्ध धम ने 'दस शील' जसे नतिक सिद्धान्तो को दृढता से अपनाकर भारतीय जनता को पुन पवित्रता और सदाचरण का माग दिखलाया। तथागत बुद्ध के उपदेशो के कारण ही देश म पुन नतिक मूल्यो की स्थापना हुई। प्रसिद्ध विद्वान मैक्समूलर के शब्दो मे "ससार के समस्त धर्मों मे बौद्ध धम ही ऐसा धम है जो अपनी पवित्रता और शुद्धता के फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति द्वारा प्रशसित किया जाता है।" वदिक धम (ब्राह्मण) के आडम्बर और रूढिवाद ने जिस नतिक आचार को पृष्ठभूमि म ढकेल दिया था, बौद्ध धम ने समाज म पुन उसकी प्रतिष्ठा की।

3 हिन्दू ब्राह्मण धर्म पर प्रभाव—बौद्ध धम ने हिन्दू धम पर अपनी अमिट छाप छोडी है। बाद के हिन्दू धम पर बौद्ध विचार और नतिकता के गहरे प्रभाव के सबल प्रमाण हैं। अहिंसा के जिस सिद्धान्त पर बौद्धो ने अधिक जोर दिया,

जिसका भक्तिपूर्वक प्रचार किया और जिसे दैनिक जीवन में क्रियात्मक कर दिया, उसे ब्राह्मणों ने अपने धर्मोपदेश में पूर्ण रूपेण समाविष्ट कर लिया। इससे प्राणी मात्र के प्रति श्रद्धा बढ़ी और रक्तिम यज्ञों की भावना का ह्रास हो गया। बौद्ध धर्म के अप्रत्यक्ष प्रभाव के कारण भागवत धर्म का जन्म हुआ जिसने 'अहिंसा परमो धर्म' के सिद्धान्त को पूर्णतया ग्रहण कर लिया। हिन्दू धर्म में यज्ञ आदि आडम्बरों की प्रधानता तथा छूआ-छूत के जोर में कमी आने लगी। धार्मिक दुरूहता भी कम हो गई। धार्मिक अन्ध विश्वास और समाज में पुरोहित वर्ग अर्थात् ब्राह्मणों का प्रमुत्व भी कम हो गया।

4 बौद्ध संघ व्यवस्था—धार्मिक अनुयायियों को अनुशासनशील समुदायों में संगठित कर प्रजातन्त्र प्रणाली पर संघ व्यवस्था निर्माण करने का श्रेय बौद्ध धर्म को ही है। हिन्दू धर्म के रामद्वारे, मठ और सन्यासी सम्प्रदायों के अखाड़े और महन्ता के समुदाय बौद्ध धर्म के सम्पर्क के ही परिणाम हैं। इसके अतिरिक्त भारत में साधारण जनता के लिए संगठित और व्यवस्थित रूप से आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षा प्रसार का प्रथम प्रयास बौद्ध संघों ने किया। इस प्रकार प्रथम व्यवस्थित शिक्षा केन्द्र नालन्दा का बौद्ध विहार था। बौद्ध संघ की कार्य प्रणाली अत्यन्त जनतन्त्रात्मक थी। संघ ने संगठित रूप से समाज के सामने जिस त्यागपरता, सदाचारिता, अध्ययन शीलता और अध्यवसायशीलता दृष्टांत उपस्थित किया उससे बौद्ध धर्म जनता की अपार श्रद्धा का केन्द्र बन गया।

5 बौद्धिक स्वतन्त्रता दर्शन की उन्नति—वैदिक धर्म में वेदों की प्रामाणिकता तथा पुरोहित वर्ग के एकाधिकार एवं कर्मकाण्ड की प्रधानता ने व्यक्तिगत बौद्धिक स्वतन्त्रता का नाश कर दिया था। इसके विपरीत बुद्ध ने स्वतन्त्र विचारों को प्रोत्साहित किया और धर्म में व्यक्तित्व को प्रधानता दी। बुद्ध ने अपने शिष्यों को उपदेश दिया कि वे उनके वचनों एवं आदेशों को गुरु-वचन मानकर स्वीकार न करें, बल्कि अपने बुद्धि विवेक की कसौटी पर वसे ही कस जैसे एक स्वर्णकार सोने को कसता है। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि वे 'आत्म दीप' हो और अपनी आत्मा को स्वयं अपना मार्ग दर्शक बनायें। अतएव बौद्ध दार्शनिकों ने निर्बाध होकर तत्त्व ज्ञान की समस्त समस्याओं पर निर्द्वन्द्व स्वतन्त्रता से मनन किया। फलतः दर्शन शास्त्र में उनकी विचारधाराएँ भारतीय तत्त्व ज्ञान के उच्चतम विकास की ओर संकेत करती हैं। नागार्जुन, असंग, वसुबन्धु, धर्मकीर्ति जैसे बौद्ध दार्शनिक विश्व के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिकों में से हैं जिनकी कृतियों का अध्ययन किये बिना कोई भी व्यक्ति भारतीय दर्शन का आचार्य नहीं कहा जा सकता।

6 समानता और सहनशीलता—बौद्ध धर्म ने समाज में जाति-गत ऊँच नीच के भावों के विरुद्ध समानता का सन्देश दिया और मनुष्यों को

कल्याण करने की शिक्षा दी। इससे समस्त जातियां व नर-नारी का भेद भाव विलीन हो गया। महात्मा बुद्ध ने जन्म पर आधारित वर्ण-व्यवस्था का खण्डन किया और वर्णों व जातियों के लिए बौद्ध धर्म के द्वार खोल दिये। इससे सामाजिक समानता को बढ़ावा मिला।

7 साहित्य सृजन लोक साहित्य का विकास—बौद्ध धर्म ने बोल चाल की भाषाओं को उच्च साहित्य का माध्यम बनाया। स्वयं बुद्ध ने अपने धर्मोपदेश के हेतु जनसाधारण की बोल चाल की (पालि) भाषा को अपनाया था। बौद्ध-संघों और विहारों में भी प्रवचन और शिक्षा प्रसार के लिए इन्हीं लोक भाषाओं का प्रयोग किया गया। इससे बोल चाल की भाषा (प्राकृत) में विस्तृत साहित्य की सृष्टि हुई। पालि भाषा का समूचा साहित्य बौद्ध धर्म के अभ्युदय का परिणाम था। साहित्यिक ग्रन्थों में 'बुद्ध चरित' नामक महाकाव्य तथा 'सारिपुत्र प्रकरण' नामक नाटक बौद्धों की ही देन है। संस्कृत के 'मंजुश्री मूलकल्प' तथा 'दिव्यादान' नामक बौद्ध ग्रन्थों से प्राचीन भारत के इतिहास के विषय में काफी महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है।

8 राजनीतिक और राष्ट्रीय एकता—बौद्ध धर्म ने समाज में जाति-पाति के, ऊँच नीच के भावों का विनाश कर सामाजिक और सांस्कृतिक एकता को दृढ़ करने का प्रयत्न किया। बोल चाल की भाषा का प्रयोग करने से यह एकता और भी दृढ़ हो गयी। इस धर्म की सादगी और सरलता से यह साधारण जनता का अधिक प्रिय धर्म हो गया और वह उसे देश का धर्म समझने लगे। इस प्रकार बौद्ध धर्म ने भारतीय राष्ट्र के विकास में योग दिया एवं भारत की राजनीतिक एकता का मार्ग सुलभ कर दिया। प्राचीन काल से भारत विभिन्न छोटे छोटे राज्यों में विभाजित था। बौद्ध सम्राटों अशोक, कनिष्क, हर्ष आदि के प्रयत्नों के फलस्वरूप विशाल साम्राज्यों का उदय हुआ। इतिहासकार ई० बी० हेवेल के शब्दों में "भारत को एक राष्ट्र के सूत्र में संगठित करने का श्रेय बौद्ध धर्म को इसी प्रकार है जिस प्रकार सक्सनी के छोटे छोटे राज्यों को संगठित करने का श्रेय ईसाई धर्म को है। बौद्ध धर्म ने मौर्य साम्राज्य की स्थापना में बड़ी सहायता की।"

9 भारतीय कला के क्षेत्र में महान देन—भारतीय जीवन में बौद्ध धर्म की सर्वोत्कृष्ट देन वास्तु कला और स्थापत्य कला के क्षेत्र में है। बौद्ध धर्म के अन्तर्गत मूर्ति चित्र, स्थापत्य आदि कलाओं का श्रेष्ठतम विकास हुआ। बौद्ध धर्म ने वास्तुकला को खूब प्रोत्साहन दिया। आज प्राय विश्व के प्रत्येक महान अजायब घर में बौद्ध कला के अवशेष हैं। बौद्ध कलाकारों ने जिन कलाकृतियों का निर्माण किया, उनका सौन्दर्य और सौष्ठव असाधारण है। बौद्ध विहारों, मन्दिरों एवं स्मारकों को कलापूर्ण ढंग से अलंकृत किया गया और इस प्रकार कालान्तर में

वास्तुकला और स्थापत्यकला की एक नवीन शैली का प्रादुर्भाव हुआ। साची, भरहुत और अमरावती के स्तूप तथा अशोक के शिला स्तम्भ एव कार्ली की बौद्ध गुफाओं की गणना भारतीय कला के सर्वोत्तम नमूनों में होती है। सॉंची का स्तूप, उसकी चहारदीवारी एव विशाल व सुन्दर भवन आज भी बौद्ध कालीन कला की श्रेष्ठता को प्रकट करते हैं। बौद्ध चित्रकारों द्वारा गुहाओं एव मंदिरों की भित्तियां सुन्दर चित्रकला से अलंकृत की गयी। अजन्ता, एलौरा, बाघ और कार्ली गुहाओं में बौद्ध कालीन स्थापत्यकला और चित्र कला के सर्वोत्कृष्ट नमूने हैं। प्रो० कोहन के अनुसार, 'सभी क्षेत्रों में—चित्रकला में, स्थापत्य में वास्तुकला में और कारीगरी में बौद्ध धर्म ने ऐसी कलाकृतियां उत्पन्न की हैं जो पाश्चात्य कला की उन्नतम कृतियों के समक्ष रखी जा सकती हैं।" क्रिस्टाफर हम्फरी ने भी लिखा है कि 'ईसा की छठी शताब्दी तक भारत में सबसे उत्तम कला बौद्ध कला है। चीन, जापान, वर्मा तथा श्याम में जब से बौद्ध धर्म का प्रवेश हुआ तब से लेकर इस देश के किसी भी युग की सर्वश्रेष्ठ कला—बौद्ध ही है।" साराश मे, सम्राट अशोक के समय से गुप्तकाल के अन्त तक भारत की सारी कला कृतियां बौद्ध धर्म की प्रेरणा से अनुप्राणित हैं।

11 भारतीय इतिहास पर प्रभाव—भारत के राजनीतिक इतिहास पर बौद्ध धर्म की अमिट छाप है। बौद्ध धर्म ने भारतीय राजा एव राजकुमारों के हृदयों में रक्तपात तथा युद्ध के प्रति घृणा उत्पन्न कर दी। बौद्ध नियमों ने ही अशोक को युद्ध त्याग करने के लिए तथा शान्ति की नीति का अनुकरण करने के हेतु बाध्य किया था। इस प्रकार बौद्ध धर्म ने देश में सैनिक भावनाओं को कम कर दिया। फलस्वरूप भारत निवासी सैनिक क्रिया कलापों और कार्यों से घृणा करने लगे और कालान्तर में उत्तर पश्चिम से आने वाले बलशाली आक्रमणकारियों के वे शिकार हो गये।

12 भारतीय संस्कृति का विदेशों में प्रसार—सर्वप्रथम बौद्धों ने ही भारतीय संस्कृति को देश की सीमाओं के बाहर सुदूर देशों में प्रसारित किया। सम्राट् अशोक कनिष्क आदि के शासन काल में बौद्ध भिक्षुओं के जत्थे आस पडौस के देशों में तथागत बुद्ध के उपदेशों का प्रचार करने गये थे। इनके धर्म प्रचार के फलस्वरूप तत्कालीन लंका, बर्मा, चीन, तिब्बत, जापान, कोरिया, जावा, सुमात्रा, मध्य एशिया आदि देशों में बौद्ध धर्म ने अपनी जड़ें बहुत गहरी जमा ली। इन देशों के लिए भारत एक पवित्र देश हो गया। उन्होंने तथागत की शिक्षाओं के साथ भारतीय संस्कृति के अनेक तत्त्वों को ग्रहण किया। इससे भारत तथा इन बाह्य देशों के बीच "मैत्री पूर्ण" घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित हो गया। डॉ० जदुनाथ सरकार के अनुसार, 'बौद्ध धर्म देश का विश्व व्यापी आन्दोलन था जिसमें जाति का कोई बन्धन नहीं था, अतः सभी प्राचीन पूर्वी देशों ने इसे स्वतन्त्रता पूर्वक स्वीकार

4

सामाजिक सस्थाएँ : परिवार और जाति

(Social Institutions Family & Caste)

- परिवार
  - I सयुक्त परिवार प्रथा विशेषताएं
  - II सयुक्त परिवार प्रथा के गुण व दोष
  - III तीन ऋण, पच महायज्ञ व चार पुरुषार्थ
  - IV सोलह सस्कार
  - V आश्रम व्यवस्था
- वर्ण एव जाति
  - VI वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति
  - VII भारत मे जाति-प्रथा विशेषताएँ
  - VIII जाति-प्रथा के गुण एव दोष
  - IX भारत मे नारी की स्थिति

I सयुक्त परिवार प्रथा विशेषताएँ

"भारतवर्ष में सयुक्त परिवार प्राचीनकाल से ही प्रचलित रहा है। भूतकाल म यह एक सहयोगी व्यवस्था थी जिसमे सम्पत्ति पर सबका अधिकार था ।"

—प्रो० बाटोमोर

सामाजिक सगठना म परिवार का एक विशिष्ट स्थान है। परिवार सामाजिक जीवन की पहली इकाई है जो व्यक्ति और समाज के बीच महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने मे सहायक होती है। समाज का प्रारम्भिक स्वरूप व्यक्ति को परिवार के रूप मे ही देखने को मिलता है। "परिवार समाज का वामन अवतार (सक्षिप्त रूप) है और समाज परिवार का विराट रूप है।" इसमे समाज की सारी प्रक्रियाएँ छोटे रूप मे अपना काम करती हुई पाई जाती हैं। विभिन्न सस्कृतियो मे अत्यन्त प्राचीनकाल से ही इस मौलिक सस्था का विकास हो गया था, चाहे उसका प्रारम्भिक रूप आज की अपेक्षा कितना ही भिन्न और व्यापक रहा हो।

भारत मे सयुक्त परिवार प्रथा का प्रचलन प्राचीनकाल से है। वदिक युग मे ही आर्यो ने स्वस्थ सामाजिक और राजनीतिक जीवन का विकास कर लिया था। व्यक्ति की अपेक्षा परिवार ही सामाजिक एव राजनीतिक इकाई समझा जाता था। परिवार के सदस्य एक ही गृह म रहते थे। परिवार का मुखिया पिता होता था और उसे 'गृहपति' कहते थे। परिवार के सदस्यो पर उसका पूर्ण अकुश होता था। पति और पत्नी के अतिरिक्त आर्यो के परिवार मे माता पिता, भ्राता भगिनी, पुत्र पुत्री आदि भी रहते थे। साधारणतया इनमे पारस्परिक स्नेह होता था एव इस पारिवारिक जीवन की सहृदयता कामना की वस्तु थी। वदिककालीन परिवारो म सामूहिक उत्तरदाइत्व वहन करना पडता था। वतमान मे भी यूनाधिक यह प्रथा भारत मे जारी है।

भारतीय समाज मे सयुक्त परिवार प्रणाली एक महत्वपूण विशेषता है। प्राचीनकाल मे नाना प्रकार की विपरीत परिस्थितिया के कारण कुछ लागो के सहयोग से ही भोजन, आवास आदि प्राप्त हो सकता था। इस कारण एक पूवज की जितनी सताने होती थी, वे प्राय एक साथ रहती थी। इस प्रकार सयुक्त परिवार की उत्पत्ति हुई थी। सयुक्त-परिवार प्रथा भारतीय समाज की प्रमुख आधारशिला है, अस्तु इस पर विस्तार पूवक विवेचन प्रस्तुत है।

अथ एव परिभाषा— एक भारतीय सयुक्त परिवार मे पति पत्नी, माता पिता, चाचा चाची, पुत्र पुत्रवधु, भतीजे, पौत्र, अविवाहित पुत्रिया और पौत्रिया तथा इसी प्रकार के सम्बधित लोग रहते हैं। यह भारतीय समाज की ऐतिहासिक, आर्थिक एव सामाजिक इकाई है। परिवार की सत्ता सबसे बडी आयु के व्यक्ति के हाथ मे होती है। वही परिवार का मुखिया होता है तथा परिवार की सारी व्यवस्था करता है और परिवार के सब सदस्यो पर नियत्रण रखता है। जो पुरुष कमाने योग्य होते हैं काम करते ह और सारी आमदनी परिवार के मुखिया को सौप देते हैं। खच परिवार का मुखिया करता है और जिसकी जितनी आवश्यकता होती ह उसको अपने अनुसार पूरी करता है। खच करने म इस बात का ध्यान नही रखा जाता कि अमुक सदस्य कितना कमाता है।

भारतीय सयुक्त परिवार की जो परिभाषाएँ विभिन्न विद्वानो ने दी हैं उनमे कुछ इस प्रकार हैं—

"हम उस गृह को सयुक्त परिवार कहते हैं जिसम एकाकी परिवार से अधिक पीढियो के सदस्य (अर्थात तीन या अधिक पीढियो से) रहते हैं, तथा एक दूसरे से सम्पत्ति, आय एव पारस्परिक अधिकारो तथा कत यो से सम्बधित हो।"

—डॉ० आई पी देसाई

"यदि कई मूल परिवार एक साथ रहते हो, उनमें निकट का नाता हो, वे एक ही चूल्हे पर भोजन बनाते हो, तथा एक आर्थिक इकाई के रूप म काय करते हों तो उन्हे उनके सम्मिलित रूप म सयुक्त परिवार कहा जाता है।"

—प्रो० एस एन दूबे

वास्तव में, संयुक्त परिवार के अर्थ को किसी भी एक निश्चित परिभाषा में बाँध देना बड़ा कठिन है। इसे तो हम इसके सामान्य लक्षण अथवा विशेषताओं से ही अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं। हिन्दू विधि' में संयुक्त परिवार के अन्तर्गत उन सब लोगों की गणना की जाती है जो सामान्य पूर्वज के वंशज हों, (जिनमें उनकी पत्नियाँ और अविवाहित लड़कियाँ भी शामिल हैं) सम्पत्ति संयुक्त हो तो ठीक है, लेकिन अगर न हो तो भी परिवार संयुक्त बना रह सकता है। इसी प्रकार अगर भोजन और पूजा की दृष्टि से परिवार के सदस्य अलग हों तो भी एक हिन्दू परिवार संयुक्त रह सकता है। परन्तु वह संयुक्त परिवार तभी तक माना जाता है जब तक यह प्रमाणित न हो जाए कि परिवार के सदस्यों के मध्य बटवारा हो चुका है।

विशेषताएँ—एक संयुक्त परिवार की मुख्य विशेषताएँ संक्षेप में निम्नानुसार हैं।

1 सभी सदस्य एक ही वंश और रक्त से सम्बन्धित होते हैं।
2 एक ही घर में सब निवास करते हैं।
3 सम्पत्ति और आय में सबका साझा होता है।
4 भोजन एक ही रसोई में तैयार किया जाता है।
5 सामान्य पूजा तथा धर्म होता है।
6 परिवार का आकार बड़ा और असीमित होता है।
7 अधिकांशतः वयोवृद्ध सदस्य परिवार का मुखिया होता है।
8 परस्पर सुमधुर भावनात्मक सम्बन्ध होते हैं।
9 सदस्यों के सांस्कृतिक, शारीरिक और भौतिक विकास हेतु सभी मिल जुलकर काम करते हैं।

II संयुक्त परिवार प्रणाली के गुण व दोष

संयुक्त परिवार प्रथा अपने गुणों पर आधारित है और यही कारण है कि वह इतनी प्राचीन होकर भी आज तक बनी हुई है। यद्यपि यह सत्य है कि पश्चिमी समाज व्यवस्था ने हमारी मूल भावनाओं को तथा समाज रचना के मूल आधारों को प्रभावित किया है फिर भी इसमें विशेष परिवर्तन नहीं ला सके हैं और ऐसी उपयोगी सामाजिक संस्था को किसी न किसी रूप में बनाये हुए हैं।

आर्थिक लाभ—(1) खर्च का बचाव—चूँकि संयुक्त परिवार में सम्मिलित आय व सम्मिलित खर्च होता है, इस कारण कम खर्चे में ज्यादा लोगों का भरण पोषण होता है। (2) पारिवारिक धन का समान वितरण—इस व्यवस्था में अर्जित आय व सम्पत्ति पर किसी विशेष व्यक्ति का विशेष अधिकार नहीं होता। परन्तु सभी सदस्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति समान रूप से कर सकते हैं। (3) सामाजिक बीमा—आकस्मिक या दैविक दुर्घटना या दुर्घटना होने पर संयुक्त

परिवार की प्रत्येक सदस्य की रक्षा करता है। बीमार पडने पर सेवा सुश्रूषा मिलती है। वृद्धावस्था अथवा असमर्थता या बेकारी अथवा दुघटना होने पर इस व्यवस्था में पूरा आश्रय मिलता है।

सामाजिक लाभ (1) बालकों का पालन पोषण का आदर्श स्थान— इसमे रहते हुए बच्चे उदारता, सहिष्णता, सेवा, सहयोग, प्रेम, सद्भाव और आज्ञाकारिता का पाठ पढते हैं। सब मिलकर सबके लिये रहने की भावना से उनम संकुचित स्वार्थ-भावना का विकास नहीं हो पाता। (2) समाज की सेवा का अवसर– चूंकि संयुक्त परिवार म स्त्री, बच्चो या बूढे माँ बाप के भरण पोषण का भार किसी एक के सिर पर नही होता इस कारण समाज सेवा की भावना रखने वाले सदस्य को परिवार की चिन्ता अधिक न रखकर देश व समाज की सेवा तथा त्याग करने का अवसर अधिक मिलता है। (3) धम व संस्कृति की रक्षा– संयुक्त परिवार में संस्कृति, धम, परम्पराओं की रक्षा अधिक सरल रहती है। वहा सामाजिक तथा धार्मिक काय होते ही रहते हैं अत प्रत्येक व्यक्ति को इसमें ऐसे रीति रिवाजो का समझने का अधिक अवसर प्राप्त होता है। (1)व्यक्तिवादी भावना पर नियत्रण– संयुक्त परिवार व्यवस्था व्यक्तिवाद जसी भावना पर रोक लगाकर समाज को विघटित होने से रोकती है। इसका ध्येय "वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को प्रोत्साहित करना है।

साराश मे, सयुक्त परिवार प्रथा सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र मे समाजवादी समाज की रचना का अच्छा आदश है। इससे जहाँ सुखी कुटुम्बो का निर्माण सम्भव है, वहा व्यक्ति के विकास की भी पूर्ण सभावना है।

सयुक्त परिवार प्रथा के दोष या हानिया– अनेक लाभ होने हुए भी सयुक्त परिवार प्रथा में कुछ अपनी खराबिया हैं जिनके कारण सयुक्त परिवार दिन-प्रति दिन निबल होता जा रहा है। कुछ मुख्य दोष निम्नानुसार हैं–

(1) यहा दूसरा पर निभर रहने और आलस्य की आदत को बल मिलता है जिससे निकम्मे व्यक्तियो की वृद्धि हुई है।

(2) प्राय बचपन से ही बालक यहा परतन्त्र-दूसरो पर निभर रहते हैं, जिससे उनके व्यक्तित्व के विकास में बाधा पहुचती है।

(3) यहाँ द्वेष व कलह का राज्य रहता है, क्योकि सदस्या के पारम्परिक हितो में सघष होता रहता है।

(4) यहा स्त्रियो की दशा बडी दयनीय होती है।

(5) इसमे कर्त्ता (मुखिया) की स्वेच्छाचारिता रहती है।

(6) सयुक्त परिवार सामाजिक समस्याओ —बालविवाह, दहेज, विधवा विवाह पर रोक, स्त्रिया के शोषण, छूआछूत आदि के केन्द्र बन गये हैं।

सयुक्त परिवारो के विघटन के कारण

सयुक्त परिवार प्रथा अपनी कमियो के कारण अनुपयोगी तो सिदध हुई ही ह, परन्तु वतमान समय मे कुछ ऐसी परिस्थितियाँ भी वन गयी हैं कि जिनके कारण इस प्रथा का अपने आप विघटन होता जा रहा है ।

(1) व्यक्तिवादी विचारधारा बलवती होती जा रही है। हर व्यक्ति की अपनी रुचियाँ इतनी विशिष्ट हो गयी हैं कि वह उनका पूरा कर पाना सयुक्त परिवार में सम्भव नही समझता। अत व्यक्तिगत कारणो से इस व्यवस्था का विघटन होता जा रहा है।

(2) वतमान औद्योगिक युग म व्यक्ति को उसके व्यक्तिगत श्रम का ही मुआवजा मिलता है। अत वह अन्य लागो का भरण-पोषण करन मे असमथ है। लोगो को जीविकोपाजन के लिए अन्य स्थानो को वाहर जाना पडता है। इससे भी सयुक्त प्रथा का विघटन होता जा रहा है ।

(3) नवीन अधिनियमो (कानूनो) ने भी सयुक्त परिवार की स्थिरता को आघात पहुचाया है। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, हिन्दू स्त्री का सम्पत्ति अधिकार कानून आदि के कारण भी विघटन को बल मिला है।

सयुक्त परिवार प्रथा का भविष्य

वतमान समाज म कुछ एसी शक्तिया काम कर रही हैं जिनके कारण सयुक्त परिवार का विघटन तेजी से हो रहा है और भविष्य म और तेजी से होगा। सयुक्त परिवार का विघटन विशेषकर नगरा म आर शिक्षित वर्गों मे स्पष्ट है। फिर भी *यह अवश्य है कि हिन्दू मनावृत्ति सयुक्त परिवार के पक्ष म है। भारतीय देहाता म* सयुक्त परिवार प्रणाली का प्रभाव एव अस्तित्व आज भी है, क्याकि अभी भारतीय ग्रामीण समुदाय मे नगरो की तरह क्रान्ति का बिगुल नही बज पाया है।

प्राय एसा भी देखा गया है कि सयुक्त परिवार स अलग हाने के बाद भी लोग आपस म सद्भाव बनाये रखने मे सफल होते हैं। ये लोग सयुक्त परिवार को तोडने के लिए पृथक नही हाते। इनका उद्देश्य सयुक्त जीवन के दोषा का विशेष कर रोज रोज स्त्रिया के बीच झगडो और अशाति से दूर रहना होता है। वसे, *वतमानकाल मे व्यक्तित्व अथवा पृथक परिवारा का प्रचलन बढता जा रहा है।* फिर भी जो ऐसे नये परिवार बने उनमे पुराने सयुक्त परिवार के गुणा को कायम रखना चाहिए ।

III हिन्दू सयुक्त कुटुम्ब के आदर्श

(तीन ऋण, पच महायज्ञ, चार पुरुषाथ)

सन्तानोत्पत्ति एव बच्चो का लालन पालन आदि काय तो विश्व के सभी परिवार करते हैं, जबकि भारतीय हिन्दू परिवार कुछ विशिष्ट धार्मिक कार्यों को भी सम्पादित करता है। प्रमुखत तीन ऋणो से उऋण होना, पच महायज्ञ करना

तथा सोलह सस्कारो को सम्पादित करना प्रत्येक भारतीय हिन्दू परिवार के मुख्य काय होते हैं ।

तीन ऋण, अथ एव उद्देश्य—भारतीय प्राचीन दाशनिको की मान्यता थी कि इस ससार मे प्रत्येक मनुष्य देवताओ, ऋषियो, माता पिता, अतिथियो और अन्य प्राणियो से कुछ न कुछ साधन, ज्ञान एव शक्ति प्राप्त करता आया है। उसी के आधार पर वह अपने जीवन को सुखी एव सम्पन्न बनाता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य का यह नैतिक कतव्य है कि इन ऋणो से उऋण होने का प्रयत्न करे। धम शास्त्रो के अनुसार प्रत्येक गहस्थ पर तीन ऋणो का भार होता है जिससे उऋण होना चाहिए।

1 देव ऋण—भारतीय दाशनिको की मान्यता थी कि मनुष्य को जीवन यापन के लिए जिन अति आवश्यक साधनो की आवश्यकता रहती है वे सभी दवी शक्तियो द्वारा ही हमे प्राप्त होते हैं जसे कि जल, भूमि, वायु इत्यादि। धमशास्त्रो के अनुसार, यह ऋण यज्ञ द्वारा पूरा करना चाहिए।

2 ऋषि ऋण—प्राचीन ऋषियो तथा विचारको ने अपनी अपनी साधना एव तपस्या के द्वारा जो ज्ञान अर्जित किया और जिसके सहारे हम जीवन का रहस्य समझ पाये हैं, उनके प्रति भी हम ऋणी हैं। धमशास्त्रो के अनुसार, इससे स्वाध्याय द्वारा उऋण समझा जाता है।

3 पितृ ऋण—माता पिता बच्चे का पालन पोषण करते हैं। उसके शिक्षा की व्यवस्था करते हैं। उसे जीविकाजन योग्य बनाते हैं इस दष्टि से हम उनके भी ऋणी हैं। धमशास्त्रो के अनुसार, इस ऋण से व्यक्ति सन्तानोत्पत्ति करके उऋण समझा जाता था।

धमशास्त्रो की व्यवस्था के अनुसार उपयुक्त तीन ऋणो को चुकाना प्रत्येक व्यक्ति का क्रमश सामाजिक, सास्कृतिक एव धार्मिक कतव्य माना जाता था। आज भी अनेक हिन्दू परिवारो म इनम से कुछ बातें नियमित रूप से होती हैं।

उपयुक्त तीन ऋणो के अतिरिक्त दो प्रकार के ऋण और भी माने गये हैं—अतिथि ऋण और भूत ऋण। हम अतिथियो और जीवधारियो के ऋणी है क्योकि हम उनसे समय समय पर ज्ञान तथा अन्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। धमशास्त्रो मे उपयुक्त वर्णित पाचो ऋणो से उऋण होने के लिए पच महायज्ञो की व्यवस्था की है।

पच महायज्ञ महत्व—प्राचीन आर्य यज्ञ, हवन को बड़ा महत्व देते थे। इनका विश्वास था कि अग्नि देवदूत का काय करती है तथा मनुष्यो द्वारा समर्पित वस्तुएँ देवताओ तक पहुँचाती है। देवता प्रसन्न होकर मानव कल्याण का काय करते हैं। अतएव, प्राचीन भारतीय परिवारो के दनिक कायक्रम म अग्रलिखित पाँच महायज्ञ करने का विधान था।

1 ब्रह्म यज्ञ—इसको ऋषि यज्ञ भी कहा जाता है। इसमें स्वाध्याय और सन्ध्योपासना ये दो कर्म सम्मिलित हैं। वेदों का अध्ययन करना तथा दूसरा को इनकी शिक्षा देना सर्वोत्तम ब्रह्म यज्ञ है। ब्रह्म यज्ञ व्यक्तित्व का निर्माण करता है और व्यक्तित्व के निर्माण से समाज और राष्ट्र का मार्ग प्रशस्त होता है।

2 देव यज्ञ—इसे अग्निहोत्र भी कहते हैं। इसका आशय यह है कि प्रातः और सायं अग्नि में विभिन्न देवताओं के प्रति "स्वाहा" के साथ कुछ आहुतियाँ देनी चाहिये। इसमें यज्ञ करने की जो विधि है उससे मन और शरीर स्वस्थ बनता है, साथ ही हृदय में कल्याणकारी विचारों का बल मिलता है।

3 पितृ यज्ञ—परिवार का मृतक सदस्य पितर कहलाता है। अपने मृत पितरों के लिए श्रद्धा एवं तर्पण आयोजित करना, इसे ही पितृयज्ञ कहते हैं। श्राद्ध पक्ष के अलावा दैनिक रूप से इस यज्ञ का महत्त्व माता पिता तथा गुरजनों की सेवा और आज्ञापालन करते हुए श्रेष्ठ कर्मों में लगे रहना है।

4 मनुष्य यज्ञ—इसे अतिथि यज्ञ भी कहते हैं। अतिथि सत्कार प्रत्येक परिवार का आवश्यक कर्तव्य माना गया है। इसमें अतिथि सत्कार, साधु सन्तों आदि का भोजन वस्त्र, दक्षिणा आदि से सन्तुष्ट करना, द्वार पर आये हुए को खाली न लौटाना आदि सम्मिलित है।

5 भूत यज्ञ—इस यज्ञ का विधान भोजन करने से पूर्व होता है। घर में पकाये भोजन में से कुछ आहुतियाँ अग्नि में डाली जाती हैं। साथ ही प्रत्येक परिवार से आशा की जाती है, कि वह भोजन करने से पहले गाय, कुत्ते, कौवे आदि के लिए अंश अलग करदे। इस यज्ञ से दान और त्याग की भावना तथा असमर्थ प्राणियों की मंगल कामना निहित है।

इस तरह भारतीय परिवार के दैनिक जीवन में, एक हिन्दू गृहस्थी के लिए यह आवश्यक माना गया है कि वह विश्व में जीवन व्यतीत करते हुए देवताओं, पितरों, अतिथियों, यहाँ तक कि पशु पक्षियों के प्रति भी अपने कर्तव्यों का पालन करेगा। अस्तु पंच महायज्ञ कोरे कर्म काण्ड नहीं हैं, बल्कि जीवन को उदात्त और आदर्श बनाने वाले कर्म हैं। इन पर गृहस्थाश्रम की सफलता निर्भर है।

चार पुरुषार्थ—पुरुषार्थ चतुष्टय को जीवन का लक्ष्य माना गया है। पुरुषार्थ का शाब्दिक अर्थ है उद्योग अथवा व्यक्ति के उत्साही कार्य। लेकिन वैदिक संस्कृति में उद्योग की दशा निर्देश—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की ओर सतत् उन्मुख रहने में है। मानव जीवन में उदात्त भावनाओं को अपना कर वासना तथा अविद्या रहित जो लोक कल्याणकारी कार्य हैं, जिनके आचरण से प्रत्यक्ष रूप में लोक को और परोक्ष रूप में आत्मा को लाभ पहुँचता है। वे सब पुरुषार्थ माने जाते हैं।

1 धर्म—मनुष्य अपने जीवन में अच्छे से अच्छा कार्य करके तथा दान, दक्षिणा इत्यादि के द्वारा धर्म एवं पुण्य की प्राप्ति करे।

2 अर्थ —इसका दूसरा अथ द्रव्य या धन है जिसके द्वारा ही मनुष्य अपने परिवार का पालएा पोपएा करता है। प्रत्येक व्यक्ति उचित नतिक माध्यमो से धन अर्जित कर।

3 काम—व्यक्ति अपने मन की इच्छा पूर्ति के लिए जो काय या विपयभाग करता है उसे ही काम कहते हैं। कामेच्छा पूएा करने पर ही मनुष्य सन्तानोत्पत्ति कर पाता है।

4. मोक्ष—इसका शाब्दिक अथ 'मुक्ति' से है। इस अतिम पुरुपाथ की साधना क पश्चात् मनुष्य सासारिक बन्धनो से मुक्ति पा लेता है।

निष्कष—डा प्रभु ने इ ह आश्रम व्यवस्था का "मानसिक नैतिक आधार" वताया है। धम, अथ एव काम इन तीना पुरुपार्थो का क्षेत्र गृहस्थाश्रम माना गया है। चौथा पुरुपाथ सन्यासाश्रम मे ही सम्भव है।

IV हिन्दू पारिवारिक सोलह सस्कार

प्राचीन काल मे भारतीय दाशनिको ने मनुष्य के व्यक्तित्व के पूएा विकास के लिए जो योजना निर्धारित की, उसका प्रथम सोपान सस्कार और द्वितीय सोपान आश्रम हैं। मनुष्य के गर्भाधान सस्कार से लेकर श्मशान मे अन्त्येष्टि क्रिया तक सोलह सस्कारो की व्यवस्था की गई थी। इन सस्कारो का धार्मिक व सामाजिक महत्व है। मनु महाराज ने इनका प्रयोजन और स्वरूप स्पष्ट करत हुए कहा है कि "ये शरीर के सस्कार हैं अर्थात् शरीर की शुद्धि करने वाले हैं।" इस तरह, सस्कार वह विलक्षएा योग्यता है जिसके द्वारा मनुष्य दोपमुक्त होकर विभिन्न क्रियाओ का करने योग्य बन जाता है।

सस्कारा की सख्या धमशास्त्रो मे भिन्न भिन्न बताई गई है। गौतम धम सूत्र म 48 सस्कारा का वएान है, परन्तु साधारएात 16 सस्कारो को ही प्रमुख माना जाता है। इनम भी कुछ सस्कार जैसे उपनयन, विवाह आदि विशेप महत्वपूएा हैं।

सस्कारों का उददेश्य—सस्कारा का मुख्य उद्देश्य मनुष्यो का सासारिक उन्नति तथा मोक्ष के लिये पूएा समथ बनाना है। भारतीय शास्त्रकारा की मान्यता है कि ये सस्कार ही मनुष्य के शरीर व मन को विशुद्ध करते हैं। और उस आत्मा के निवास के योग्य बनाते हैं। इनका हिन्दू समाज मे बडा महत्व है। प्राय कहा जाता है कि वह (हिन्दू) धम म ही जन्म लेता और धम म ही मरता है। साराश म, सामाजिक एव मानवीय गुएाो के विकास म सस्कार बहुत उपयोगी होते हैं।

सोलह सस्कार परिचय एव महत्त्व

1 गर्भाधान सस्कार—मानव जीवन का यह सबसे पहला सस्कार है। इसम नए प्राएाी के गभ रूप म आने के लिए उपयुक्त सस्कार शुभ दिन पर किया जाता है और पति पत्नी सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

2 पु सवन सस्कार—पत्नी के गभ धारण के बाद तीसरे महीने यह सस्कार किया जाता था । इसका उद्देश्य गभ म स्थित शिशु को रूप देना होता था । इस सस्कार मे देवताओ की स्तुति कर उनसे पुत्र प्राप्ति की याचना की जाती थी ।

3 सीमन्तोन्नयन सस्कार—गभवती स्त्री को अमगलकारी शक्तियो से बचाने के लिए आठवें मास मे, इस सस्कार का विधान किया गया है । इस सस्कार म पति द्वारा पत्नी के केशपाश को सजाकर उसकी माँग भरी जाती है ।

4 जातकम सस्कार—यह सस्कार बच्चे के जम होने पर किया जाता है । समारोह में उपस्थित सब लोग शिशु को आशीर्वाद देते हैं ।

5 नामकरण सस्कार—बालक के जम के दसवें या बारहवें दिन यह सस्कार किया जाता है । इसम पिता ही दो चार अक्षरो का सुदर नाम रखता है । गह शुद्धि के लिए हवन भी किया जाता है ।

6 निष्क्रमण सस्कार—ज म के चौथे मास में शिशु को पहली बार घर से बाहर निकालने की क्रिया को 'निष्क्रमण सस्कार' कहते हैं ।

7 अन्नप्राशन सस्कार—शिशु को छ मास का होने पर पहली बार आहार देने का काय 'अन्नप्राशन सस्कार' कहलाता है । शिशु गुरू मे भात, शहद, दही और घी का मिश्रित भोजन दिया जाता है ।

8 चूडाकम सस्कार—यह सस्कार जम के पहले से तीसरे वष के मध्य किया जाता है । इसमे बालक के सिर के सभी बालो को कटवाकर चोटी रखना महत्वपूर्ण माना गया है ।

9 कणवेध सस्कार—यह सस्कार शिशु जम के तीसरे से पाचवें वष के मध्य किया जाता है । इसम बालक के कानो को किसी अच्छे वैद्य द्वारा बीधा जाता था ।

10 विद्यारम्भ सस्कार—जब शिशु की अवस्था पढने योग्य हो जाती है, तो विद्यारम्भ सस्कार किया जाता है ।

11 उपनयन सस्कार—इसे 'यज्ञोपवीत सस्कार' भी कहते है । इस सस्कार का अथ बालक का शिक्षा प्राप्त योग्य माना जाना है । यज्ञोपवीत धारण करने योग्य होते ही शिशु को जनेऊ दी जाती है । उपनयन का अथ है 'गुरु के समीप ले जाना' । वैसे इसका वास्तविक अथ है आचाय द्वारा आगत शिष्य को दीक्षा दान । अस्तु विद्यार्थी के आचाय द्वारा 'ब्रह्मविद्या' के लिए स्वीकार किए जाने की विधि को ही उपनयन सस्कार कहते है । इस सस्कार के समय विद्यार्थी उत्तरीय और वस्त्र पहनकर, सिर का मुण्डन करवाकर, मेखला और दण्ड धारण करके उपनयन के लिए आचाय के सामने बठता है और आचाय होम करता है तथा बालक को गायत्री मत्र देता है —आचार्य ब्रह्मचारी (छात्र) को उपदेश देता है— "ब्रह्मचारी, हो, जल पीओ, काम करो, दिन म मत सोओ, आचाय के अधीन होकर वेद का अध्ययन करो ।" इसके पश्चात बालक ब्रह्मचारी बन वेद

पार्यो म धम का प्रधान स्थान ह । परन्तु अथ और काम की उपक्षा नही की गई है। भारतीय आचाय धम, अथ और काम का समान रूप से पालन करने का निर्देश करते हैं। महाभारत का कथन है—'जीवन म अथ और काम का इस प्रकार सेवन करो कि धम का उल्लघन न हो।' साराश म, इन चारो पुरुषार्थो की साधना हेतु हमारे ऋषियो ने मानव जीवन का चार आश्रमो मे विभाजित किया था।

आश्रम व्यवस्था—आश्रम शब्द सस्कृत के श्रम धातु मे निकला है जिसका अथ है 'परिश्रम या प्रयास करना। आश्रम व्यवस्था मुख्य रूप से एक मानसिक नतिक व्यवस्था है जिनमे आयु क विभिन्न स्तरो म पृथक पृथक कतव्यो का निवाह आवश्यक माना गया है। आयु के अन्तर के साथ व्यक्ति की रुचिया, मनोवत्तियो और काय क्षमताओ म भी परिवतन स्वाभाविक है। अत व्यक्तित्व का समुचित विकास तभी सम्भव ह जब इन परिवतनशील गुणो के बीच आदश स तुलन रखा जाए। आश्रम व्यवस्था मे इसी स तुलन के निर्वाह का दष्टिकोण निहित है।

आश्रम का शाब्दिक अथ विश्राम स्थल या एक पडाव है। जिस प्रकार भारतीय समाज का वर्गीकरण चार भागो अथवा चार वर्णो म किया गया था, उसी तरह मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन विस्तार को भी चार भागो मे विभाजित किया गया था—ब्रह्मचय, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास। मनुष्य की तत्कालान आयु 100 वष मानते हुए, प्रत्येक आश्रम के लिए 25 वष रखे गए थे।

1 ब्रह्मचर्याश्रम—यह मनुष्य जीवन का बहुत ही महत्वपूर्ण अग ह। इसका एक मात्र उद्देश्य पूण सयम और साधना के साथ अध्ययन द्वारा जीवन का निर्माण करना होता है। मनु स्मृति आदि धमशास्त्रो के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आयु के प्रथम 25 वर्षो मे ब्रह्मचय आश्रम के नियमो का पालन करत हुए गुरु के पास जाकर विद्याभ्यास करना चाहिए। इसे ब्रह्मचय कहने का कारण कदाचित् यह था कि इसम ब्रह्म अर्थात् वद क अध्ययन के लिए विद्यार्थी या ब्रह्मचारी गुरु क सरक्षण मे रहता हुआ अपना जीवन बडे सयम म बिताता था। यह आश्रम इस विश्वास पर आधारित था कि ब्रह्मचय ही एक ऐसी साधना है जो मनुष्य को दहिक दविक और भौतिक उन्नति के लिए आवश्यक शक्ति प्रदान करती ह। ब्रह्मचय आश्रम के सभी दायित्वो को पूरा कर लेने के बाद ब्रह्मचारी गुरु को दक्षिणा चुका कर उसकी आज्ञा से अपने घर लौट जाते थे। प्राचीनकाल मे 'ये आश्रम ज्ञान के केन्द्र (विश्वविद्यालय) हो गये और प्राचीन हिन्दू सस्कृति के स्रोत बन गये।"

2 गृहस्थाश्रम—यह जीवन का वह भाग है जिसका प्रारम्भ विवाह सस्कार से होकर वानप्रस्थ आश्रम के पूव तक बना रहता है। यह दूसरा आश्रम जिसमे 25 वष तक ब्रह्मचारी रहने के बाद मनुष्य प्रविष्ट होता है। गृहस्थाश्रम मे, जीवन क अगले 25 वष अर्थात 50 वष की अवस्था तक, मनुष्य विवाह करके विवाहितजीवन बिताये। धन उपाजन कर तथा सतान उत्पन्न कर उनका लालन पालन करे। जीवन

आदि का अध्ययन करता ह । इस सस्कार के बाद बालक गुरुकुल मे अथात् गुरु के घर म उसके परिवार का अग बन कर ब्रह्मचयपूवक विद्या-अध्ययन करता था ।

12 वेदारम्भ सस्कार—उपनयन सस्कार के एक वष बाद गायत्री मत्र की दीक्षा के साथ वदो का पठन पाठन शुरू करने को 'वेदारम्भ सस्कार' कहा ह ।

13 केशान्त अथवा गोदान सस्कार—यह सस्कार ब्रह्मचारी के 16 वष की अवस्था मे सम्पन्न किया जाता था। इसमे ब्रह्मचारी के केशो को सवप्रथम काटा जाता था । इस अवसर पर आचाय को गौ का दान किया जाता था ।

14 समावतन सस्कार—इस दीक्षान्त सस्कार भी कहा जाता है । ब्रह्मचय आश्रम की समाप्ति पर यह सस्कार होता था । विद्यार्थी आचाय को दक्षिणा दकर उनका आशीर्वाद ग्रहण कर, आज्ञा लेकर घर लौट जाता था ।

15 विवाह सस्कार—यह व्यक्ति के गृहस्थाश्रम में प्रवश करने का सूचक था । इस सस्कार के द्वारा वर-वधु दाना आजीवन परस्पर एक सूत्र म बधे रहन की प्रतिज्ञा करते हैं । इसम यज्ञ वेदी की अग्नि के सामने वर को पिता द्वारा कन्या(वधु) का दान किया जाता है ।

16 अन्त्येष्टि सस्कार—यह जीवन का अन्तिम सस्कार है जो मृत्यु उपरान्त सम्पन्न किया जाता है । इसम शव का वैदिक मन्त्रो के साथ अग्नि को साप दिया जाता ह । दाह सस्कार के दस दिन तक मृतक के लिए तपण एव पिण्ड दान किया जाता है ।

निष्कष—वतमान काल मे, अधिकाश लोग इन सस्कारो म अपनी आस्था खो बैठे हैं । अब केवल उपनयन विवाह तथा अन्त्येष्टि सस्कारो का प्रचलन रह गया ह । कुछ सस्कारो का रूप भी अब काफी बदल गया है ।

V आश्रम व्यवस्था

"आश्रम—प्रथा के द्वारा शान्तिमय उपवनो म हमारे दशन-शास्त्र की उन्नति हुई तथा आचारशास्त्र, नीतिशास्त्र एव साहित्य की शाखाओ को जीवन मिला । यही पर हमारी सच्ची प्राचीन सभ्यता विद्यमान थी और इन सब बातो का श्रेय हमारे प्राचीन आर्यों को है ।'

—डा जदुनाथ सरकार

आश्रम व्यवस्था को कब किसने जन्म दिया, कहना कठिन है । किन्तु इस बात पर सब एक मत हैं कि यह व्यवस्था निश्चित रूप से वदिककालीन सास्कृतिक धरोहर ह । इस व्यवस्था के अनुसार व्यक्ति के जीवन को चार आश्रमो—ब्रह्मचय, गहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास म विभाजित किया गया है ।

चार पुरुषार्थों की धारणा—भारतीय जीवन मे चार पुरुषाथ—धम, अथ, काम तथा मोक्ष की प्रतिष्ठा हुई थी और इन पुरुषार्थों की सफल साधना ही मानव जीवन का लक्ष्य माना गया था । इनम मोक्ष अन्तिम लक्ष्य है और अन्य तीन पुरु

पार्थों म धम का प्रधान स्थान ह । परन्तु, अथ और काम की उपेक्षा नही की गई है। भारतीय आचाय धम, अथ और काम का समान रूप से पालन करने का निर्देश करते हैं। महाभारत का कथन है—'जीवन मे अथ और काम का इस प्रकार सेवन करो कि धम का उल्लघन न हो।' साराश मे, इन चारो पुरुषार्थों की साधना हेतु हमारे ऋषियो ने मानव जीवन को चार आश्रमो म विभाजित किया था।

आश्रम व्यवस्था—आश्रम शब्द सस्कृत के श्रम धातु म निकला है जिसका अथ है 'परिश्रम या प्रयास करना। आश्रम व्यवस्था मुख्य रूप से एक मानसिक नतिक व्यवस्था है जिनमे आयु क विभिन्न स्तरो मे पृथक पृथक कत या का निवाह आवश्यक माना गया है। आयु के अन्तर के साथ व्यक्ति की रुचियां, मनोवत्तियो और काय क्षमताओ म भी परिवतन स्वाभाविक है। अत व्यक्तित्व का समुचित विकास तभी सम्भव ह जब इन परिवतनशील गुणो के बीच आदश स तुलन रखा जाए। आश्रम व्यवस्था म इसी स तुलन के निवाह का दष्टिकोण निहित है।

आश्रम का शाब्दिक अथ विश्रामस्थल या एक पडाव है। जिस प्रकार भारतीय समाज का वर्गीकरण चार भागो अथवा चार वर्णो म किया गया था, उसी तरह मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन विस्तार को भी चार भागो मे विभाजित किया गया था—ब्रह्मचय, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा स यास। मनुष्य की तत्कालीन आयु 100 वष मानते हुए, प्रत्येक आश्रम के लिए 25 वर्ष रखे गए थे।

1 ब्रह्मचर्याश्रम—यह मनुष्य जीवन का बहुत ही महत्वपूण अग ह। इसका एक मात्र उद्देश्य पूण सयम और साधना के साथ अध्ययन द्वारा जीवन का निमाण करना होता है। मनु स्मृति आदि धमशास्त्रो के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आयु के प्रथम 25 वर्षो म ब्रह्मचय आश्रम के नियमो का पालन करत हुए गुरु के पास जाकर विद्याभ्यास करना चाहिए। इसे ब्रह्मचय कहने का कारण कदाचित यह था कि इसम ब्रह्म अर्थात् वेद के अध्ययन के लिए विद्यार्थी या ब्रह्मचारी गुरु क सरक्षण मे रहता हुआ अपना जीवन बडे सयम म बिताता था। यह आश्रम इस विश्वास पर आधारित था कि ब्रह्मचय ही एक ऐसी साधना है जो मनुष्य को दहिक दविक और भौतिक उन्नति के लिए आवश्यक शक्ति प्रदान करती ह। ब्रह्मचय आश्रम के सभी दायित्वो को पूरा कर लेन के बाद ब्रह्मचारी गुरु को दक्षिणा चुका कर उसकी आज्ञा से अपने घर लौट जाते थे। प्राचीनकाल मे 'ये आश्रम ज्ञान के केन्द्र (विश्वविद्यालय) हो गये और प्राचीन हिन्दू सस्कृति के स्रोत बन गये।'

2 गृहस्थाश्रम—यह जीवन का वह भाग है जिसका प्रारम्भ विवाह सस्कार से होकर वानप्रस्थ आश्रम के पूव तक बना रहता है। यह दूसरा आश्रम जिसम 25 वष तक ब्रह्मचारी रहने के बाद मनुष्य प्रविष्ट होता ह। गृहस्थाश्रम मे, जीवन के अगले 25 वष अथात् 50 वष की अवस्था तक, मनुष्य विवाह करके विवाहितजीवन बिताये। धन उपाजन कर तथा सतान उत्पन्न कर उनका लालन पोषण करे। जीवन

को इस अवस्था मे व्यक्ति गृहस्थ रहते हुए भी सयम, नैतिकता, सामाजिक मर्यादा, व्यक्तिगत और सामाजिक उत्तरदायित्व आदि के पाठ पढता है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दो में "गृहस्थ सारे समाज की आधार शिला है।"

शास्त्रकारो के अनुसार, गहस्थाश्रम की सफलता ही वास्तव मे जीवन की सफलता है। इसी आश्रम मे जीवन का पूर्ण विकास होता है। वशिष्ठ सूत्र मे लिखा है कि जसे छोटी-बडी नदिया समुद्र मे जाकर स्थित होती हैं, वसे ही तीनो आश्रम गृहस्थ मे स्थिति प्राप्त करते हैं, उसी की सहायता से जीवित ह (6/90)। अन्य आश्रमो का भरण पोषण करने से यह ज्यष्ठ एव श्रेष्ठ आश्रम हैं। इसके अतिरिक्त, वानप्रस्थ और स यास आश्रमो में केवल धम और मोक्ष केवल इन दो पुरुषार्थो की साधना हो सकती है, जबकि गहस्थाश्रम मे धम, अथ और काम तीनो पुरुषार्थो की साधना सम्भव है।

3 वानप्रस्थ आश्रम—गहस्थाश्रम के दायित्वो को पूर्ण कर व्यक्ति वानप्रस्थाश्रम म प्रवेश करता है। शास्त्रकारा के अनुसार इस आश्रम म सपत्नीक अथवा बिना पत्नी के प्रवेश किया जा सकता है। वानप्रस्थाश्रम मे पत्नी के साथ सयमपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए व्यक्ति धीरे धीरे सम्पूर्ण परिवार और उसका मोह त्याग कर स यास आश्रम के लिए अपने आपको तैयार करता है। प्राचीनकाल मे जो व्यक्ति वानप्रस्थाश्रम मे प्रवश करते थे उनका जीवन त्याग और तपस्या का होता था। ग्राम अथवा नगर के बाहर कुटी बनाकर वह निवास करता एव कन्द मूल खाकर जीवन निर्वाह करता था। इसमे वेदा का अध्ययन तथा यज्ञ करने कराने का विधान था। शिष्य उनसे नि शुल्क शिक्षा ग्रहण करते थे। इस तरह, वानप्रस्थी के नि स्वाथ भाव से किए गए काय सामाजिक अभ्युदय के कारण बनते थे।

4 स यासाश्रम—यह जीवन का अतिम आश्रम ह। उपयु क्त तीनो आश्रमो म व्यक्ति तीना ऋणा—देव ऋण, पितृ ऋण और ऋषि ऋण का चुका देता था, अत इस चौथे आश्रम मे वह सब कर्मो का परित्याग कर मोक्ष प्राप्ति की ओर उन्मुख हाता था। विषय सुख से विमुख स यासी ब्रह्म म लीन होकर मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रयास करता था। गहन चिन्तन द्वारा वह आत्मा और परमात्मा क गूढ रहस्या को खोजने म लगा रहता था। इस अवस्था मे सभी सासारिक बधन टूट जाते थे और व्यक्ति भिक्षु या परिव्राजक के रूप म दण्ड-कमण्डल धारण करके विचरण करता था।

VI वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति

वर्ण व्यवस्था भारतीय सामाजिक जीवन की एक विशेषता है। प्राचीनकाल से ही भारतीय सामाजिक सगठन वर्ण–श्रम–व्यवस्था पर आधारित रहा है।

अथ एव उद्देश्य—'वर्ण' के शाब्दिक अथ तीन निकलते हैं—प्रकार, रग तथा वृत्ति के अनुरूप। परन्तु, वर्ण-व्यवस्था का शाब्दिक अथ के आधार पर नहीं

समझा जा सकता। इसे एक लाक्षणिक शब्द माना जा सकता है जो गुण और कर्म के माध्यम से सामाजिक स्तरीकरण को दृढ़ता प्रदान करता है। वर्ण व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक वर्ण के लिए उसका सामाजिक कर्त्तव्य या धर्म निर्धारित था, जिसका अच्छी तरह से पालन सामाजिक हित की दृष्टि से बहुत जरूरी था। प्राचीन भारतीय समाज चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में वर्गीकृत था और इस वर्गीकरण का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक संगठन, सुव्यवस्था तथा समृद्धि को स्थिर रखना था। इसका एक अन्य प्रमुख उद्देश्य समाज में अनावश्यक प्रतिस्पर्द्धा की परिस्थितियाँ उत्पन्न न होने देना भी था। धार्मिक कृत्य ब्राह्मणों को, राजनीतिक और सैनिक कार्य क्षत्रियों को, व्यापारिक एवं आर्थिक कार्य वैश्यों को सौंपकर समाज में सन्तुलन स्थापित किया गया था। शूद्रों का परम कर्तव्य था इन तीनों वर्णों की सेवा करना।

वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति—वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति के बारे में कई विचार धाराएँ हैं। एकमत तो यह है कि भारत में आने से पूर्व ही आर्यों में वर्ण व्यवस्था का जन्म हो चुका था। परन्तु, दूसरा मत यह है कि आर्यों के समाज में शुरू में वर्ण-व्यवस्था नहीं थी। उनके भारत में आने पर ही अनार्य जातियों के सम्पर्क में आने से उनमें वर्ण व्यवस्था का विकास हुआ। आर्यों में वर्ण व्यवस्था का जन्म ऋग्वेद काल में हुआ या उसके बाद में हुआ, इस बात पर भी विद्वानों में मतभेद हैं वैसे, अधिकांश विद्वानों के मतानुसार वर्ण व्यवस्था का विचार आर्यों के भारत में आगमन के उपरान्त ही उत्पन्न हुआ।

विराट पुरुष के अंगों से वर्णों की उत्पत्ति दवी सिद्धांत—ऋग्वेद के प्रारम्भिक भाग में वर्ण अथवा जातियों का कोई उल्लेख नहीं है। समाज व्यवस्था का जिस रूप में उल्लेख मिलता है, वह इतना ही है कि उनका एक समाज था जो भाईचारे के सिद्धांत पर आधारित था तथा जिसका नेतृत्व पुरोहित एवं राजा के हाथों में निहित था। फिर भी कई कारणों से जनता में भिन्न भिन्न वर्ग, भिन्न भिन्न श्रेणियाँ बन रही थी और भविष्य के सामाजिक संगठन का अंकुर जम रहा था।

परन्तु, ऋग्वेद के अन्तिम भाग के लिखे गये पुरुष सूक्त में चार वर्णों का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में आने वाले पुरुष सूक्त में कहा गया है—

"ब्राह्मणोऽस्य मुख मसीद बाहू राजन्य कृत
उसतदस्य च द्वश्य पदभ्याम् शूद्रोऽजायत।"

इस तरह, इन वर्णों की उत्पत्ति ब्रह्मा से बतलायी गई है जो इस संसार का रचयिता है। पुरुष सूक्त के अनुसार, "विराट पुरुष अथवा सृष्टा के मुख से ब्राह्मण, उसकी भुजाओं से राजन्य (क्षत्रिय), जंघाओं से वैश्य और पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई।" इस श्लोक से स्पष्ट हो जाता है कि चारों जातियों का सम्बन्ध सामाजिक व्यवस्था से उतना ही गहरा है जितना शरीर के चार मुख्य भागों का

शरीर के साथ। और इन चारो ही विभागो का इस समाज को जीवित रखने के लिए अपनी अपनी भूमिका निभाती है।

यहा एक बात अवश्य ध्यान देने की है कि ऋग्वेद म इस बात का उल्लेख कही नही है कि इन चार वर्णों म मुख्य कौन है और कौन नही। ऋग्वेद न तो चारो ही वर्णों को बराबर महत्त्व दिया है। शरीर के लिए जिस प्रकार चारो भाग अनिवार्य तथा अविच्छिन्न हैं, उसी प्रकार समाज के लिए चारो वर्ण। अत श्रेष्ठता एव निम्नता की बात स्वार्थ से वशीभूत होकर बाद मे जोडी गयी प्रतीत होती है। इसलिए, यह प्रश्न विचारणीय है कि वर्ण व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण को समाज मे इतना महत्व क्यों दिया गया और शूद्रा को इतना निम्न स्थान क्यो दिया गया ?

अधिकाश विद्वान यह मानते हैं कि समाज को ही एक विराट पुरुष के रूप म प्रस्तुत किया गया है। इस आधार पर वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति पूर्व-वैदिक काल म ही हो चुकी थी। परन्तु मैक्समूलर, कोलब्रुक, मगलदेव शास्त्री आदि विद्वान पुरुष सूक्त को वैदिक कालीन नही मानते। कदाचित उसे बाद मे जाकर ऋग्वेद म जोड दिया गया है। ऋग्वेद म और कही भी वर्ण व्यवस्था अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र शब्दो का उल्लेख नही मिलता इसलिए पुरुष सूक्त के आधार पर ही यह नही कहा जा सकता कि ऋग्वेद काल म ही आर्यों म वर्ण व्यवस्था का पूरी तरह विकास हो चुका था।

(2) वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति का कर्म विभाजन का सिद्धांत—कर्म के अनुसार जातियो की उत्पत्ति की बात महाभारत मे स्वीकार की गयी है। ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होने के कारण सारा ससार ही ब्राह्मण था, अस्तु बाद मे जाकर कर्मों के अनुसार वर्ण का विभाजन धर्म शास्त्रो द्वारा किया गया। 'मनुस्मृति' म मनु ने कहा है कि 'ब्राह्मण का कर्तव्य अध्ययन तथा अध्यापन यज्ञ करना और करवाना दान लेना तथा दान देना था। क्षत्रिय का कर्तव्य जन रक्षा, यज्ञ करना तथा अध्ययन करना था। वैश्य भी अध्ययन तथा यज्ञ करते थे परन्तु उनका मुख्य कर्तव्य पशुपालन कृषि एव व्यापार था। शूद्र का कर्तव्य केवल इन तीनो उच्चतर श्रेणियो की सेवा करना था।"

अत कर्म विभाजन के सिद्धात पर यह कहा जा सकता है कि परिस्थितिया के अनुकूल जसे जैसे आर्यों के समाज और सभ्य का विस्तार हुआ, उनके समाज में चातुर्वण्य विभाजन का विकास होता [illegible] गा के अ तर्निहित गुण अथवा स्वभाव एव उनके [illegible] निवाले वि [illegible] ों के आधार पर किया गया। इससे यह भी स्प [illegible] व्यव [illegible] ो प्रारम्भिक [illegible] मे जन्म पर आधा [illegible] बाद [illegible] या कम प [illegible] रित न होकर, ज [illegible] । प्रा [illegible] र वर्ण [illegible] होने से [illegible] य वि [illegible] व [illegible] इस

अपना वर्ण(कर्म मे परिवर्तन कर) बदल सकता था। परन्तु धीरे धीरे समय गुजरने के साथ एक जैसे काम करने वाले लोगो के खान पान, विवाह सम्बन्ध आपस मे होने लगे तथा उनके सामान्य सामाजिक सम्बन्ध भी अन्य कर्म करने वाले लोगो से टूटने लगे। और आगे चलकर धर्मशास्त्रो द्वारा एक दूसरे वर्ण के मध्य सम्बन्धो पर कठोर अंकुश लगा दिये गये। परिणामस्वरूप, वर्ण व्यवस्था अब कर्म पर न रहकर, जन्म पर आधारित हो गई।

वर्ण-व्यवस्था का मूल्यांकन

गुण अथवा लाभ—(1) वर्ण व्यवस्था श्रम विभाजन के महत्त्व को प्रस्थापित करती है। (2) यह सामाजिक संगठन और सुव्यवस्था की शिक्षा देती है। (3) यह अस्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा को रोकती है। (4) इसमें समाज कल्याण की भावना निहित है। प्रो० पी० वी० काणे के अनुसार, "वर्ण का विचार मुख्य रूप से मनुष्य की नैतिक और बौद्धिक योग्यताओं पर बल देता था। इसमे अपने कर्तव्यों के पालन और समाज की सेवा के लिए किये जाने वाले प्रयत्नो पर जन्म-मूलक अधिकारो की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया गया है।" अन्त में, प्रो० मनयट विल्सन के शब्दो में कहा जा सकता है कि वर्ण-व्यवस्था मनुष्य को स्वार्थ त्याग का पाठ पढाती है, दुराचार से रोकती है दरिद्रता को दूर करती है तथा उन्नति के पथ पर अग्रसर करती है।

दोष या हानियाँ—(1) वर्ण ने जब अपना लचीलापन खो दिया तो वर्ग वाद के कारण हिन्दू जाति अगणित जातियो मे विभाजित हो गई। (2) इसने सामाजिक एकता का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। (3) इससे समाज में संकुचित विचारधारा का प्रसार हुआ। (4) इससे उत्पन्न कुप्रथाएं भारतीय समाज के पुनरुत्थान मे बडी बाधाएँ है। अन्त मे, डॉ० वाडिया के शब्दो मे कहा जा सकता है कि, "वर्ण-व्यवस्था का सबसे बुरा परिणाम यह है कि भारत अस्पृश्यता और साम्प्रदायिकता का घर हो गया जिसके कारण हमारे इतिहास मे भाइयो ने भाइयो के खून से होली खेली।"

निष्कर्ष—वर्ण व्यवस्था अब एक रूढिवादी परम्परा बन कर रह गई है जिसका कोई भविष्य नही है। वर्तमान युग मे आज की समाज रचना तो वर्णहीन, जातिविहीन एवं वर्गहीन व्यवस्था की माग कर रहा है।

VII भारत मे जाति प्रथा अर्थ एवं विशेषताएँ

"भारत जाति व्यवस्था का आगार है, और भारत मे शायद ही कोई सामाजिक समूह ऐसा हो, जो इसके प्रभाव से अपने को मुक्त रख सका हो।"

—डॉ० आर० एन० मुकर्जी

जाति व्यवस्था भारतीय सामाजिक जीवन की एक महत्वपूर्ण आधारशिला है। हमारा खान पान, रहन सहन, आचार-व्यवहार, रीति रिवाज, त्योहार एवं पारस्परिक सम्बन्ध आदि सभी कुछ वर्ण एवं जाति-व्यवस्था पर अवलम्बित है।

परिभाषा—अंग्रेजी का Caste शब्द पुर्तगाली शब्द Casta से बना है जिसका अर्थ प्रजाति, जन्म या भेद होता है। इस अर्थ मे जाति प्रथा प्रजातीय या जन्मगत भेद के आधार पर एक व्यवस्था है। जाति को विविध प्रकार से परिभाषित किया गया है, किन्तु कोई भी एक या दो परिभाषाएँ भारत की जाति प्रथा को स्पष्ट नही कर सकती। वसे, आधार के लिए, कुछ परिभाषाओं से परिचित होना उपयुक्त होगा।

सर हर्बर्ट रिजले के अनुसार, "जाति, परिवारो या परिवारो के समूहो का एक सकलन है जिनका कि एक सामान्य नाम है, जो एक काल्पनिक पूर्वज, मानव या देवता से एक सामान्य वंश परम्परा का दावा करते हैं, एक ही परम्परात्मक व्यवसाय को करने पर बल देते हैं और सजातीय समुदाय के रूप में उनके द्वारा मान्य होते हैं जो अपना ऐसा मत व्यक्त करने के योग्य हैं।" डॉ आर० एन० मुकर्जी ने 'जाति' को परिभाषित करते हुए लिखा है, "जाति जन्म पर आधारित सामाजिक संस्कार और वर्ग विभाजन की वह गतिशील व्यवस्था है जो आवागमन, खान पान, विवाह, व्यवसाय और सामाजिक सहवास के सम्बन्ध में अनेक या कुछ प्रतिबन्धों को अपने सदस्यो पर लागू करती हैं।" साराश मे, जाति एक गतिशील व्यवस्था है जिसमें सभी सदस्य विवाह, भोजन तथा सामाजिक क्षेत्रो में एक से सम्बन्ध रखते हैं।

जाति प्रथा की विशेषताएँ—(1) जाति की सदस्यता जन्म पर आधारित होती है। अर्थात् जिस जाति के सदस्य के घर में जो जन्म लेगा, उसकी जाति भी वही होगी। (2) एक जाति के सदस्य अपनी ही जाति मे विवाह कर सकते हैं। गर जाति मे विवाह करने पर उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था। (3) प्राचीन एवं मध्य युग में, प्रत्येक जाति का प्राय पतृक व्यवसाय होता था। (4) जाति में खान-पान पर कठोर नियन्त्रण पाया जाता था, ऊँची जाति के व्यक्ति नीची जाति के व्यक्तियो का छुआ भोजन नही करते थे। (5) जाति-व्यवस्था में एक तरह का सामाजिक स्तर होता है, कुछ जातियां उच्च मानी जाती हैं, तो कुछ नीच। (6) प्रत्येक जाति मे अनेक उप-[illegible] होती हैं।

जातिप्रथा का ज[illegible] जाति [illegible] कब व किस तरह हुई ? इसका निश्चि[illegible] नह[illegible] समझा जाता है कि भारत मे आर्यों के [illegible] आधार [illegible] ब्राह्मण, [illegible] व [illegible] ने से लि[illegible] नियम [illegible] बन गया

हिन्दुओं की जाति प्रथा का वर्तमान रूप उत्तर वैदिक काल और महाकाव्यों के युग में विकसित हुआ है। अतएव यह 2000 वर्ष से भी अधिक प्राचीन तम है। कालान्तर में यह प्रथा अधिक जटिल हो गई और इसने हिन्दू समाज को तीन हजार से अधिक जातियों और उप-जातियों में विभक्त कर दिया। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डॉ० वी० ए० स्मिथ के मतानुसार, जाति उन परिवारों का एक समूह है जो धार्मिक क्रिया विधि की विशुद्धता को, विशेषकर खान पान और वैवाहिक सम्बन्ध की पवित्रता के विशिष्ट नियमों को पालने से परस्पर सगठित है। परन्तु, वर्तमानकाल में यह परिभाषा अनुपयुक्त है, क्योंकि अब खान पान सम्बन्धी कठोर और अपरिवर्तनशील नियम नहीं रहे। आज तो जाति प्रथा बहुत ढीली और नाम मात्र की है।

जाति प्रथा की उत्पत्ति—किस रूप में और कब इस जाति प्रथा का प्रारम्भ हुआ, निश्चित रूप से कहना दुष्कर है। निस्सन्देह, वर्ण व्यवस्था से जाति प्रथा को प्रोत्साहन मिला होगा। जाति प्रथा के उत्पत्ति के अनेक सिद्धान्त हैं जिनमे से निम्नलिखित अधिक महत्त्वपूर्ण हैं—(1) परम्परागत सिद्धान्त (2) धार्मिक सिद्धान्त (3) व्यावसायिक सिद्धान्त, (4) राजनीतिक सिद्धान्त, (5) आर्थिक सिद्धान्त, (6) भौगोलिक सिद्धान्त। इस तरह जाति प्रथा की उत्पत्ति के कई सिद्धान्त प्रतिपादित किये जाते रहे हैं। परन्तु किसी एक निश्चितकाल या समय में जाति प्रथा की उत्पत्ति हुई है, यह भी कल्पना करना उचित न होगा। विभिन्न मतों के आधार पर कहा जा सकता है कि जाति व्यवस्था का विकास क्रमश हुआ है।

जाति प्रथा का विकास—जाति-प्रथा एक सामाजिक संस्था है और यह सर्वमान्य तथ्य है कि संस्था की उत्पत्ति नहीं बल्कि विकास होता है। इसी कारण जाति प्रथा की भी उत्पत्ति नहीं विकास ही हुआ है और इस विकास में कारकों का योग रहा है जैसा कि प्रमाण मिलता है कि प्रारम्भ में हिन्दू समाज में वर्ण-व्यवस्था थी जिसमें काफी उदारता व खुलापन भी था। वर्ण व्यवस्था ने समाज को विभिन्न समूहों में कालान्तर में बाँट दिया था, और इन समूहों में ऊँच नीच का सस्तरण भी था। इस दृष्टिकोण से वर्ण व्यवस्था के साथ जब विभिन्न प्रजातियों और संस्कृतियों का एक ओर मिलन और दूसरी तरफ संघर्ष हुआ तथा रक्त की शुद्धता और धार्मिक पवित्रता के विचारों एवं सामाजिक विभाजन को दृढतापूर्वक लागू किया गया, तो उसी वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप दिन प्रति दिन बदलता रहा और काफी समय पश्चात् ही भारतीय जाति प्रथा के सभी लक्षण स्पष्ट हो सके। इस तरह जाति प्रथा का विकास हुआ है, जन्म या उत्पत्ति नहीं। अत जे० एन० हट्टन के शब्दों में कहा जा सकता है कि, "भारतीय जाति प्रथा अन्य कहीं भी इस प्रकार मिश्रित रूप में न पाये जाने वाले अनेक भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक कारकों की अन्त क्रियाओं का स्वाभाविक परिणाम है।"

परिभाषा—अंग्रेजी का Caste शब्द पुर्तगाली शब्द Casta से बना है जिसका अर्थ प्रजाति, जन्म या भेद होता है। इस अर्थ में जाति प्रथा प्रजातीय या जन्मगत भेद के आधार पर एक व्यवस्था है। जाति को विविध प्रकार से परिभाषित किया गया है किन्तु कोई भी एक या दो परिभाषाएं भारत की जाति प्रथा को स्पष्ट नहीं कर सकती। वसे, आधार के लिए, कुछ परिभाषाओं से परिचित होना उपयुक्त होगा।

सर हबर्ट रिजले के अनुसार, "जाति, परिवारों या परिवारों के समूहों का एक संकलन है जिनका कि एक सामान्य नाम है, जो एक काल्पनिक पूर्वज, मानव या देवता से एक सामान्य वंश परम्परा का दावा करते हैं, एक ही परम्परात्मक व्यवसाय को करने पर बल देते हैं और सजातीय समुदाय के रूप में उनके द्वारा मान्य होते हैं जो अपना ऐसा मत व्यक्त करने के योग्य हैं।" डा० आर० एन० मुकर्जी ने 'जाति' को परिभाषित करते हुए लिखा है, "जाति जन्म पर आधारित सामाजिक संस्कार और वर्ग विभाजन की वह गतिशील व्यवस्था है जो आवागमन, खान पान, विवाह, व्यवसाय और सामाजिक सहवास के सम्बन्ध में अनेक या कुछ प्रतिबन्धों को अपने सदस्यों पर लागू करती हैं।" सारांश में, जाति एक गतिशील व्यवस्था है जिसमें सभी सदस्य विवाह, भोजन तथा सामाजिक क्षेत्रों में एक से सम्बन्ध रखते हैं।

जाति प्रथा की विशेषताएं—(1) जाति की सदस्यता जन्म पर आधारित होती है। अर्थात् जिस जाति के सदस्य के घर में जो जन्म लेगा, उसकी जाति भी वही होगी। (2) एक जाति के सदस्य अपनी ही जाति में विवाह कर सकते हैं। गैर जाति में विवाह करने पर उसे जाति से बहिष्कृतकर दिया जाता था। (3) प्राचीन एवं मध्य युग में, प्रत्येक जाति का प्रायः पैतृक व्यवसाय होता था। (4) जाति में खान पान पर कठोर नियन्त्रण पाया जाता था, ऊंची जाति के व्यक्ति नीची जाति के व्यक्तियों का छूआ भोजन नहीं करते थे। (5) जाति-व्यवस्था में एक तरह का सामाजिक स्तर होता है, कुछ जातियां उच्च मानी जाती हैं, तो कुछ नीच। (6) प्रत्येक जाति में अनेक उप जातियां होती हैं।

जातिप्रथा का जन्म और विकास—जाति प्रथा की उत्पत्ति कब व किस तरह हुई? इसका निश्चित उत्तर देना सम्भव नहीं है। प्रायः यह समझा जाता है कि भारत में आर्यों के आने के बाद वर्ण व्यवस्था आरम्भ हुई कार्यों के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र नामक वर्ण बने। कालान्तर में वर्ण का स्थान जाति ने ले लिया और कार्यों के अनुसार अनेक उप जातियां बन गई जिनके अलग अलग नियम निर्धारित हुए। कालान्तर में जातियों का आधार जन्म एवं वंश परम्परा बन गया।

हिन्दुओं की जाति प्रथा का वर्तमान रूप उत्तर वैदिक काल और महाकाव्यों के युग में विकसित हुआ है। अतएव यह 2000 वर्ष से भी अधिक प्राचीन तम है। कालान्तर में यह प्रथा अधिक जटिल हो गई और इसने हिन्दू समाज को तीन हजार से अधिक जातियों और उप-जातियों में विभक्त कर दिया। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डॉ० वी० ए० स्मिथ के मतानुसार, जाति उन परिवारों का एक समूह है जो धार्मिक क्रिया विधि की विशुद्धता को, विशेषकर खान पान और वैवाहिक सम्बन्ध की पवित्रता के विशिष्ट नियमों को पालने से परस्पर सगठित है। परन्तु, वर्तमानकाल में यह परिभाषा अनुपयुक्त है, क्योंकि अब खान पान सम्बन्धी कठोर और अपरिवर्तनशील नियम नहीं रहे। आज तो जाति प्रथा बहुत ढीली और नाम मात्र की है।

जाति प्रथा की उत्पत्ति—किस रूप में और कब इस जाति प्रथा का प्रारम्भ हुआ, निश्चित रूप से कहना दुष्कर है। निस्सन्देह, वर्ण-व्यवस्था से जाति प्रथा को प्रोत्साहन मिला होगा। जाति प्रथा के उत्पत्ति के अनेक सिद्धान्त हैं जिनमे से निम्न लिखित अधिक महत्त्वपूर्ण हैं—(1) परम्परागत सिद्धान्त (2) धार्मिक सिद्धान्त (3) व्यावसायिक सिद्धान्त, (4) राजनीतिक सिद्धान्त, (5) आर्थिक सिद्धान्त, (6) भौगोलिक सिद्धान्त। इस तरह जाति प्रथा की उत्पत्ति के कई सिद्धान्त प्रतिपादित किये जाते रहे हैं। परन्तु किसी एक निश्चितकाल या समय में जाति प्रथा की उत्पत्ति हुई है, यह भी कल्पना करना उचित न होगा। विभिन्न मतों के आधार पर कहा जा सकता है कि जाति व्यवस्था का विकास क्रमश हुआ है।

जाति प्रथा का विकास—जाति प्रथा एक सामाजिक सस्था है और यह सर्वमान्य तथ्य है कि सस्था की उत्पत्ति नहीं बल्कि विकास होता है। इसी कारण जाति प्रथा की भी उत्पत्ति नहीं विकास ही हुआ है और इस विकास में कारकों का योग रहा है जैसा कि प्रमाण मिलता है कि प्रारम्भ में हिन्दू समाज मे वर्ण व्यवस्था थी जिसमें काफी उदारता व खुलापन भी था। वर्ण व्यवस्था ने समाज को विभिन्न समूहों में कालान्तर में बाँट दिया था, और इन समूहों मे ऊँच नीच का सस्तरण भी था। इस दृष्टिकोण से वर्ण व्यवस्था के साथ जब विभिन्न प्रजातियों और सस्कृतियों का एक ओर मिलन और दूसरी तरफ सघर्ष हुआ तथा रक्त की शुद्धता और धार्मिक पवित्रता के विचारों एव सामाजिक विभाजन को दृढतापूर्वक लागू किया गया, तो उसी वर्ण व्यवस्था का स्वरूप दिन प्रति दिन बदलता रहा और काफी समय पश्चात ही भारतीय जाति प्रथा के सभी लक्षण स्पष्ट हो सके। इस तरह जाति प्रथा का विकास हुआ है जन्म या उत्पत्ति नहीं। अत जे० एन० हट्टन के शब्दों में कहा जा सकता है कि, "भारतीय जाति प्रथा अन्य कहीं भी इस प्रकार मिश्रित रूप मे न पाये जाने वाले अनेक भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एव आर्थिक कारकों की अन्त क्रियाओं का स्वाभाविक परिणाम है।"

रक्त और वंश की भावना, कार्य की दार्शनिकता, राजनीतिक प्रभुता का आधारभूत विचार और श्रम विभाजन की प्रवृत्ति, सभी ने जाति-प्रथा के निर्माण में अपना-अपना योग दिया है, फिर भी चार वर्णों में मूलतः आरम्भ होने वाली जाति प्रथा अधिक जटिल हो गयी। कालान्तर में ये चार श्रेणियाँ छोटी छोटी जातियों और उपजातियों में विभाजित होती ही गयी। आज ये जातियाँ, धन्धा, धार्मिक विश्वासों या दार्शनिक सिद्धान्तों पर अवलम्बित नहीं हैं, परन्तु केवल जन्म से ही मनुष्य की जाति या उपजाति निर्दिष्ट हो जाती है। जातियों की संख्या की वृद्धि के साथ साथ इस प्रथा की कठोरता और अपरिवर्तनशीलता भी विकसित हो गयी।

जाति व्यवस्था क्यों कठोर हो गई ?—गुप्त युग तक जाति व्यवस्था में गतिशीलता और उदार दृष्टिकोण की प्रधानता रही। परन्तु, पूर्व मध्यकाल (700 ई० से 1000 ई०) में जाति-व्यवस्था वर्तमान जात-पात के रूप में बदल गई। पुरानी स्मृतियों पर भाष्य लिखे गये। जाति के बन्धन कड़े कर दिये गये और खान-पान, व्यवसाय तथा विवाह के मामलों में अनेक प्रकार के कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। अनुलोम विवाह का भी निषेध कर दिया गया। विभिन्न वर्णों के भीतर भी अनेक जातियाँ तथा उपजातियाँ बनती गई। जातियों ने रूढ़ता धारण करली। उनका लचीलापन समाप्त हो गया। जाति अब व्यवसाय के आधार पर न होकर, जन्म से होने लगी। व्यवसाय बदल सकता था, पर अपनी जाति नहीं। परन्तु, वर्तमान में, पाश्चात्य सभ्यता और शिक्षा ने जाति बन्धन ढीले कर दिये हैं।

VIII जाति-प्रथा के गुण एवं दोष

जाति-व्यवस्था में, संसार की अन्य वस्तुओं की भाँति, गुण और दोष दोनों देखने को मिलते हैं।

जाति प्रथा के गुण अथवा लाभ

1 समाज में दृढ़ता की भावना—जाति प्रथा से समाज के संगठन में मजबूती बनी रही। व्यक्ति अपने आपको जाति का सदस्य मानता रहा और जाति समाज की इकाई बनी रही।

2 व्यवस्थित समाज की रचना—जाति विभाजन से प्रत्येक व्यक्ति को अपने समुदाय और अपने कार्य का शुरू में ही ज्ञान हो गया और उसे यह भी मालूम हो गया कि उसे जीवन पर्यन्त इस निश्चित कार्य को करना है, अतः उसके जीवन में एक प्रकार की व्यवस्था आरम्भ से अन्त तक बनी रही और समाज को इस बात की निश्चिन्तता हुई कि जीवन का कोई भी कार्य ऐसा न बचा, जिसे कोई न करता हो।

3 भारतीय संस्कृति की रक्षा—हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति, हमारे धर्म प्राचीन युग की ही देन हैं, इसका कारण यही रहा कि जातियों ने संस्कृति

की रक्षा का भार अपने कन्धों पर उठाये रखा। प्रत्येक जाति के निश्चित रीति रिवाज, धार्मिक क्रियाएं, जीवन की विशेष पद्धतियां, भोजन तथा वेष भूषा निर्धारित सी हो गयी। इस प्रकार संस्कृति एवं समाज अबाध गति से आगे बढते रहे।

4 कार्यकुशलता, प्रशिक्षण एवं विकास—श्रम विभाजन के आधार पर निर्धारित होने के कारण इस प्रथा ने आर्थिक शक्ति और धन्धों तथा कार्यों की दक्षता को प्रोत्साहित किया। जब जन्म से जाति निर्धारित होने लगी, तब इस प्रथा ने एक पीढी से दूसरी पीढी को व्यावसायिक शिक्षा व कुशलता प्रदान करके श्रम का परिरक्षण किया। भारतीय उद्योगो ने प्राचीन काल में जितनी लोकप्रियता प्राप्त की वह सब इसी व्यवस्था का परिणाम है।

5 जातिगत एकता—जाति-व्यवस्था के कारण उस समुदाय विशेष में एकता बनी रही और वर्ग विशेष के व्यक्ति एक दूसरे के सुख-दुःख में साथ देते रहे। उनमें बन्धुत्व की भावना को प्रेरणा दी और एक जाति के सदस्यों में अधिक एकता, दृढता और संगठन उत्पन्न किया। संकट और बेकारी के समय एक ही जाति के सदस्य सदैव अपनी जाति के अन्य बन्धुओं की सहायता और सहयोग पर निर्भर रहते थे। इस प्रकार स्वार्थ त्याग, प्रेम और लोकसेवा के नागरिक गुणों को प्रोत्साहित करने में यह प्रथा अधिक उपयोगी सिद्ध हुई।

6 व्यक्तिगत जीवन पर नियन्त्रण—जाति की पंचायतों और उनके नियमों ने व्यक्ति को संगठित संस्था के अधिनस्थ कर दिया, दुर्गुणों का विरोध किया, जीवन को संयमित किया और दरिद्रता का निवारण किया।

7 रक्त की पवित्रता—जाति व्यवस्था रक्त की पवित्रता बनाये रखने में भी सहायक सिद्ध हुई। सजातीय विवाह होने से ऐसी पवित्रता एवं शुद्धता बना रहना सम्भव हो सका। इसका प्रभाव यह हुआ कि संस्कार हीन बालकों का जन्म नहीं हो सका जिससे समाज अनेक दोषों से बचा रहा। अतएव जाति प्रथा लाभप्रद सामाजिक संस्था प्रमाणित हुई है।

जाति-प्रथा के दोष अथवा हानियां

जाति प्रथा का दूसरा पक्ष भी है। उपयोगिता अनुपयोगिता के साथ जुडी हुई है और यही कारण है कि रूढिगतजाति व्यवस्था ने समाज को लाभ के स्थान पर हानि अधिक की है और अपने अनेक दोषों के कारण वर्तमान काल में अनुपयोगी एवं हानिकारक होती जा रही है।

1 ऊँच नीच की भावना एकता में बाधक—जाति व्यवस्था ने समाज में ऊँच-नीच की भावना को जन्म दिया है। इस कारण समाज का प्रत्येक वर्ग एक दूसरे को हीन दृष्टि से देखने लगा। शूद्रों की स्थिति इतनी दयनीय हो गई कि उससे मुक्ति पाने के लिए अनेकों ने धर्म परिवर्तन कर बौद्ध, इस्लाम या इसाई धर्म को अंगीकार करना श्रेष्ठ समझा।

2 राष्ट्रीय भावना का अभाव—जाति प्रथा ने हिन्दू समाज को सकडो वश परम्परागत जाति और उपजातियो म विभाजित कर दिया और इस प्रकार वग अभिमान और पृथकत्व की भावना प्रज्वलित की, दष्टिकोण सकीण किया और समाज के अनेक विभागो के मध्य परस्पर गहरी खाइया खोद दी। इस रूप से इसने राष्ट्रीय और सामूहिक चेतना का माग अवरुद्ध कर दिया। इस प्रकार यह प्रथा एकता के तत्व की अपेक्षा विभिन्नीकरण और विश्लेषण का तत्व प्रमाणित हुई।

3 स्पर्धा, ईर्ष्या और द्वेष की भावना का जन्म—विभिन्न जातियो के मध्य स्पर्धा आरम्भ हो गयी और उसके कारण वैमनस्य स्थापित हो गया। वे एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करने लगी, इससे ईर्ष्या और द्वेष और भडक उठा। अत जो शक्ति समाज के विकास मे लगनी चाहिए थी, वह उस काय मे न लगकर समाज विरोधी कार्यों मे लग गई। इससे समाज और राष्ट्र को बहुत हानि हुई।

4 कायक्षमता में गिरावट—बराबर एक ही जाति में निश्चित व्यवसाय तथा वैवाहिक सम्बन्धो के कारण उस जाति के लोगो की काय करने की क्षमता म कमी आती चली गई। उनमें विकास की क्षमता कम होती चली गई। यह मत जीव-शास्त्र के अनुसार सही माना गया है।

5 आर्थिक और बौद्धिक प्रगति रुक गई—सामाजिक सुधार के पथ मे जाति प्रथा सदैव रोडे अटकाती रही, क्योकि यह आर्थिक और बौद्धिक प्रगति के सुअवसर जनसाधारण के एक विशिष्ट वग तक ही सीमित रखती रही। सुयोग्य और अनुभवी व्यक्ति जाति प्रथा की कठोरता के कारण अपने लिए उचित स्थान प्राप्त नहीं कर सकते। इस प्रथा की व्यावसायिक अपरिवतनशीलता ईश्वर-प्रदत्त प्रतिभा का दमन करती है, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को कुचलती है और मनुष्य की प्रेरणा शक्ति पर मृत्यु का बोझ है। चू कि, मानव शक्ति और प्रतिभा के अधिकाश भाग का समाज द्वारा सदुपयोग नही हो सका, इससे भारतीय सभ्यता और सस्कृति को भारी आघात पहु चा।

6 शोषण की समाप्ति मे बाधक—जाति प्रथा आर्थिक दृष्टि से निधन व दुबल और सामाजिक दष्टि से हीन वर्गों के शोषण मे सहायक है और विशेषाधिकार प्राप्त वर्गो की रक्षक है। इस प्रकार यह आर्थिक असन्तोष और सामाजिक ईर्ष्या द्वेष को प्रोत्साहन देती है।

7 सामाजिक अपव्यय—जातियो की अनावश्यक वद्धि और इसके बाद की अपरिवतनशीलता तथा प्रत्येक जाति के कठोर सामाजिक नियम और प्रतिबन्धों के कारण समय, धन और शक्ति का अपरिमित व्यय हो रहा है। दिखावटी कार्यों मे भी अपव्यय होता है।

8 अन्ध विश्वास तथा रुढ़िवादिता मे वद्धि—जाति के अनेका नियमो उपनियमो, धार्मिक कमकाण्डो, रीति रिवाजो तथा अन्ध विश्वासो के बराबर बने

रहन से लोगो में प्रगति करने की चाह नही रहती । मनुष्य का जीवन कु ठित, सकुचित और पूव-निश्चित सीमाओ मे बध जाता है ।

सक्षेप म, "जाति प्रथा ने हिन्दू समाज की घनिष्टता को विनष्ट कर दिया, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को कुचल दिया अत्याचार का साधन प्रस्तुत किया एव राज नीतिक तथा सामाजिक क्षेत्र मे विभिन्नीकरण की शक्तियों को प्रोत्साहित किया । हिन्दुओं के गले मे यह लटकता हुआ मील का बडा भारी पत्थर है जो इन्हे राज नीतिक और सामाजिक अध पतन की ओर तीव्र गति से घसीटे जा रहा है ।"

वर्तमानकाल मे जाति-प्रथा मे परिवतन के कारण

पिछले 150 वर्षों से भारत मे पश्चिमीकरण की जो प्रक्रिया चल रही है, औद्योगीकरण तथा नगरीकरण का जिस रूप मे विकास हुआ है, पाश्चात्य और वैज्ञानिक शिक्षा का जो प्रसार हुआ है, आजाद भारत के सविधान में समानता और धम निरपेक्षता के जो प्रावधान रखे गय हैं, उन सबसे तथा अन्य कारणो से जाति प्रथा के बन्धन वस्तुत उतन प्रभावशाली नही रहे, जितन पहिले थे । जाति-प्रथा को निबल और विघटित करने वाले तत्त्व मुख्यत इस प्रकार हैं । -

1 पाश्चात्य शिक्षा—धमनिरपेक्ष और वैज्ञानिक पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति के परिणामस्वरूप भारत म समानता, मित्रता और स्वतन्त्रता की विचारधाराएँ पनपी जिसके फलस्वरूप जाति प्रथा दिन प्रति दिन निबल होती गई ।

2 औद्योगिक उन्नति—वतमानकाल म कारखाना और कार्यालयो मे सभी जाति के लोगो को साथ मिलकर काम करना होता है । इससे एक ओर छूआछूत की भावना तथा दूसरी ओर व्यवसाय पशा सम्बन्धी प्रतिबन्ध दिन प्रति दिन दूर हटते जा रहे हैं ।

3 यातायात साधनो की उन्नति—मोटर, रेल आदि में सब जाति के लोगो के एक साथ यात्रा करन से भी खाने पीन के ब धनो और छूआ छूत के विचारा को शिथिल बनाने में सहायता मिली ।

4 राजकीय कानून—जाति प्रथा की कट्टरता तथा छूआ-छूत के रोग को समाप्त करने के उद्देश्य से 1954 म 'विशेष विवाह अधिनियम' तथा 1955 मे 'अस्पृश्यता अपराध अधिनियम' पारित व लागू किये गये । भारतीय सविधान म आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक व सास्कृतिक सभी क्षेत्रो म अछूतो को भी अन्य भारतीयो के समान ही अधिकार दिय गये । इन सब कारणा स जाति प्रथा के बन्धनो को ढीला करने म सहायता मिली ।

जाति-प्रथा का भविष्य—यद्यपि जाति प्रथा भूतकाल में लाभप्रद रही, परन्तु आज तो इसकी आवश्यकता नही है । भारत मे आज की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ चिरकाल सम्मानित जाति प्रथा के विभेदो को बनाये रखने के लिये अनुपयुक्त हैं । अनेक एसे तत्त्व हैं जो दृढतापूवक इस प्रथा की जड खोद रहे

हैं। आज जाति प्रथा व धन्धे और व्यवसाय का भेद लगभग विलुप्त हो गया है। आज किसी जाति मे जन्मा हुआ व्यक्ति अपने पूवजो के ही धन्धे को नहीं अपनाता, बल्कि वह वही धन्धा या व्यवसाय करता है जिसके लिए उसकी प्रतिभा उपयुक्त है या वही काय करता है जिसकी ओर भाग्य ने उसे ढकेल दिया है। अनेक कारणो से जातियो मे परस्पर खान पान होने लगा है तथा सामाजिक और राजनीतिक उत्सवों और समारोहो पर लोग मिश्रित होने लगे है। इससे जातियो की अपरिवतनशीलता, रूढिवादिता, सकीणता और पृथकत्व विनष्ट होने शुरू हो गए हैं और भविष्य में और तेजी से होगे।

भारतीय समाज मे नारी का स्थान

(Place of Women in Indian Society)

किसी भी सस्कृति का मापदण्ड उस समाज द्वारा दी गई स्त्रियो की पद मर्यादा है क्योकि, जैसा प्रसिद्ध समाज शास्त्री प्रो० रायडन का कथन है, "स्त्रियों ने ही प्रथम सस्कृति की नींव डाली है और उन्होने ही जगलो मे मारे मारे भटकते फिरते हुए पुरुषों का हाथ पकडकर उन्हें स्थिर जीवन या "घर" बसाया है।" मानव सस्कृति का भविष्य भी उन्ही की सहयोगिता और सदप्रयत्नो पर निभर है। प्रत्येक समाज म स्त्रियो और पुरुषो की स्थिति उससे सम्बन्धित आदर्शों और कार्यों के अनुसार निश्चित होती है। युग परिवतन के साथ इन आदर्शो और कार्यों मे भी परिवतन होता रहता है। इसी कारण स्त्रियो और पुरुषो की स्थिति म भी परिवतन स्वाभाविक है। भारतीय स्त्रियों की स्थिति म भी यही हुआ जसा कि निम्नलिखित विवचन से स्पष्ट होगा।

प्राचीनकाल मे हिन्दू समाज मे नारी की स्थिति—वदिक साहित्य क अध्ययन स पता चलता है कि स्त्रियो की स्थिति उनके आत्म विकास, शिक्षा, विवाह, सम्पत्ति आदि के विषयो मे प्राय पुरुषो के समान थी। पत्नी के रूप मे तो उनकी स्थिति बहुत ऊँची थी। ऋग्वेद म अनेक स्थलो पर पति पत्नी द्वारा न केवल सयुक्त अपितु पृथक रूप से भी यज्ञ करने का उल्लेख है। महाभारत के कथनानुसार, "घर घर नही, अगर उस घर मे पत्नी नही।" वदिक युग म अनेक विदुषी महिलायें हुई है। परन्तु, धमसूत्र युग मे नारियो की स्थिति म गिरावट शुरु हो गई। धमसूत्रा म बाल विवाह का निर्देश दिया गया जिससे शिक्षा प्राप्ति मे बाधा पहुँची। उनके लिए धार्मिक सस्कारो में भाग लेने की मनाही कर दी गई। स्त्रियो का प्रमुख कत्तव्य पति आज्ञा पालन हो गया। स्मृति युग म स्त्रियो की स्थिति और भी गिर गई। उनका जो कुछ भी सम्मान इस युग मे होता था, वह केवल माता के रूप म होता था, न कि पत्नी के रूप मे। इस युग में स्त्रियो के समस्त अधिकारो का अपहरण कर लिया गया। स्मृतिकारो ने यह निर्देश दिया कि स्त्रियो को किसी अवस्था म स्वतन्त्र न रखा जाय, बचपन में उन्हे पिता के सरक्षण म, युवावस्था म पति के और वृद्धावस्था

मे पुत्र के सरक्षण मे रखना ही उचित होगा। विधवाग्रो के पुर्नविवाह पर कठोर निषेध लगा दिये गये। साराश मे, यह काल सामाजिक ग्रौर धार्मिक सकीर्णता का युग था।

श्रीमती चद्रावती लखनपाल के शब्दो मे, "इस काल मे स्त्रियाँ "गृह-लक्ष्मी" से "दासिका" के रूप में दिखायी देने लगी, 'माता'-सेविका' बन गयी, जीवन ग्रौर शक्ति प्रदायिनी देवी ग्रब निबलताग्रा का प्रतीक बन गयी। स्त्री जो किसी समय ग्रपने प्रबल व्यक्तित्व के द्वारा देश के साहित्य ग्रौर समाज के ग्रादर्शो को प्रभावित करती थी, ग्रब परतन्त्र, पराधीन, निस्सहाय ग्रौर निबल ग्रबला बन चुकी थी।"

पूव मध्य युग ग्रथवा राजपूत काल म स्त्रिया की दशा ग्रौर भी खराब हो गई। ऊँची जातियो मे भी स्त्री शिक्षा समाप्त हो गई। पर्दा प्रथा को ग्रौर भी प्रोत्साहन मिला विधवाग्रो का विवाह पूर्ण रूप से समाप्त हो गया ग्रौर सती-प्रथा भी इस समय चरम सीमा पर पहुँच गई।

मध्यकाल मे नारी की स्थिति—उत्तर भारत म इस्लाम धम के ग्रनुयायी, तुर्कों की सल्तनत की स्थापना के कारण भारतीय समाज में एक एसा तत्त्व ग्रा गया जिसे हिन्दू समाज कालान्तर म भी ग्रात्मसात न कर सका। इस काल मे स्त्रिया की स्थिति प्राचीन भारत जसी उच्च नही थी। लेकिन फिर भी ऐसा विधान था कि पति ग्रपनी पत्नी का ग्रादर करे, उसे ग्राभूषण भेंट करे ग्रौर उत्तम भोजन दे।" फिर भी, स्त्री का स्थान पुरुष की तुलना मे नीचा था। हिन्दू नारियों की तुलना मे मुस्लिम स्त्रियो को कुछ विशेष सुविधायें थी। वे विधवा विवाह कर सकती थी ग्रौर विशेष परिस्थितियो म पति को तलाक दे सकती थी। उनके लिए सती होने का कोई प्रश्न नही था। मुस्लिम स्त्रिया को ग्रपने पिता व माता दोनो की सम्पत्ति में ग्रधिकार मिलता था। साराश म, इस काल म स्त्रिया की दशा ग्रसतोष जनक ही रही क्योंकि "बाल विवाह सती ग्रौर पर्दा की प्रथाये जारी रही ग्रौर स्त्रियो के प्रति व्यक्तिगत सम्मान कम हो गया।"

किन्तु, इतना सब कुछ होते हुए भी हम इस युग म मीराबाई, नूरजहा, रानी दुर्गावती, चाद बीबी ग्रादि प्रतिभाशाली नारिया के उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं। तत्कालीन उच्च महिलाग्रा के चरित्र के विषय मे सत्रहवी शताब्दी के पाश्चात्य यात्री एकमत हैं कि उनका ग्राचरण ग्रनुकरणीय था। सम्राट ग्रकबर ग्रौर जहागीर ने भी हिन्दू स्त्रियो के सदाचार की भूरि भूरि प्रशसा की थी। उन्होने ग्रपने चरित्र ग्रौर प्रतिभा के बल से राष्ट्र व समाज को ग्रौर नीचे गिरने से बचाया।

ब्रिटिश शासन काल मे स्त्रियो की स्थिति—ग्र ग्रेजी शासनकाल मे भारतीयों द्वारा समाज सुधार के ग्रनेक प्रयत्न किये गये ग्रन्याय, ग्रन्याय ग्रौर ग्रत्याचार जब ग्रपनी पराकाष्ठा पर पहुच जाते हैं, तब उनके विरुद्ध प्रतिक्रिया भी प्रारम्भ हो जाती है। सवप्रथम राजा राममोहनराय(1772–1833ई)ने ब्रह्मसमाज की स्थापना करके

सती प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन किया जिसके फलस्वरूप सन 1829 मे इस कुप्रथा को कानून के द्वारा समाप्त कर दिया गया। इसके अतिरिक्त स्त्रियो को सम्पत्ति अधिकार देने, बाल विवाहो को समाप्त करने और स्त्रिया म शिक्षा का प्रचार करने के क्षेत्र मे भी राजा राममोहनराय ने महत्त्वपूर्ण काय किय। स्वामी दयानन्द द्वारा सन 1875 मे स्थापित 'आय समाज' का उत्तरी भारत म स्त्री शिक्षा का प्रचार करने तथा पर्दा प्रथा और बाल विवाह का विरोध करने म सबसे अधिक योगदान रहा। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने स्त्रियो की स्थिति मे सुधार करन के लिए विधवा विवाह का समथन और बहु पत्नी विवाह सम्बन्धी परम्परागत नियमो का विरोध किया तथा स्त्री शिक्षा को सर्वाधिक महत्त्व दिया।

बीसवी शताब्दी मे, महात्मा गाधी ने सवप्रथम सगठित आधार पर स्त्रिया के अधिकारो के औचित्य को स्पष्ट किया। उन्होने स्त्रिया की स्थिति सम्बन्धी सुधार काय को अपने राष्ट्रीय आन्दोलन का एक प्रमुख अग बना लिया। उन्होंने ब्रिटिश सरकार को भेजे प्रस्तावो में विशेष रूप से स्त्री शिक्षा के प्रसार तथा बाल विवाह की कानून द्वारा समाप्ति पर विशेष जोर दिया गया। राष्ट्र पिता गाधी ने स्त्रिया की निद्रा को तोडकर उन्ह राष्ट्रीय आन्दोलन म भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जिसके फलस्वरूप पहली बार लाखो स्त्रियां घर की चहारदीवारी से निकलकर स्वाधीनता-आन्दोलन मे कूद पडी। उन्होंने पहली बार अपनी शक्ति और सामथ्य को पहचाना। इससे स्त्रियो मे एक नवीन चेतना का विकास हुआ। यही चेतना बाद में उनकी प्रगति का आधार बन गयी।

सन 1929 मे विभिन्न सगठनो नेएक होकर 'अखिल भारतीय महिला सम्मेलन का आयोजन किया। पूना मे इसके प्रथम अधिवेशन के समय स्त्रिया का पुरुषो के समान अधिकार देने पर बल दिया गया। एक प्रस्ताव पारित करके सरकार स मांग की गयी कि सम्पत्ति, विवाह और नागरिकता मे स्त्रियो की परम्परागत निर्योग्यताएं कानून के द्वारा समाप्त की जाएं। स्त्रियो की बढ़ती हुई राजनीतिक मांगो के परिणामस्वरूप सन '1935 के अधिनियम' के द्वारा स्त्रियो को मताधिकार प्राप्त हुआ। धारा सभाओं, बोर्डों व नगरपालिकाओ मे स्त्रियों को प्रतिनिधित्व दिया गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात स्त्रियों की स्थिति—सन 1947 मे, भारतीय स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात स्त्रियो की स्थिति म क्रान्तिकारी परिवतन हुए। डॉ० एम० एन० श्रीनिवास ने पश्चिमीकरण, लौकिकीकरण और जातीय गतिशीलता को इन परिवतनो का प्रमुख कारण माना है। इसके अतिरिक्त स्त्रियो में शिक्षा का प्रसार होने व औद्योगीकरण के फलस्वरूप भी उन्ह आर्थिक जीवन मे प्रवेश करने के अवसर प्राप्त हुए। इससे स्त्रियो की पुरुषो पर आर्थिक निभरता कम होने

लगी और स्वतन्त्र रूप में अपने व्यक्तित्व का विकास करने के अवसर मिले। संचार के साधनो, समाचार-पत्रो और पत्रिकाओ का विकास होने से स्त्रिया ने अपने विचारो को अभिव्यक्त करना शुरू किया। सयुक्त परिवारो का विघटन होन से स्त्रियो के पारिवारिक अधिकारो म वृद्धि हुई। सामाजिक कानूनो के प्रभाव से एक एसे सामाजिक वातावरण का निर्माण हुआ जिसम बाल विवाह, दहज प्रथा और अन्तर्जातीय-विवाह की समस्याओ से छुटकारा पाना सरल हो गया।

नारी की स्थिति मे सुधार और उसके कारण

भारतीय स्त्रियो की स्थिति मे, देश की आजादी के बाद, जो परिवतन हुआ है, उसे निम्नलिखित क्षेत्रो द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है –

1 शिक्षा की प्रगति—स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् स्त्री शिक्षा म व्यापक प्रगति हुई। इस तथ्य को इसी बात से समझा जा सकता है कि सन् 1872 मे भारत मे ऐसी केवल 2,054 स्त्रिया थी जो कुछ लिख पढ सकती थी, जबकि 1971 की जन-गणना के समय तक शिक्षित स्त्रियो की सख्या बढकर लगभग 4 करोड 83 लाख से भी अधिक हो गयी। लडकियो के लिए आज कला और विज्ञान के अतिरिक्त गृह विज्ञान, हस्तकला, शिल्पकला और सगीत की शिक्षा प्राप्त करने के अवसर उपलब्ध होने के कारण स्त्रियो को बाल विवाह और पर्दा-प्रथा से तो छुटकारा मिला ही है, साथ ही साथ उन्होन समाज कल्याण और महिला-कल्याण म भी व्यापक रुचि लेना आरम्भ कर दिया है। स्त्री शिक्षा की चहु मुखी प्रगति को देखते हुए डा के एम पणिक्कर ने यह निष्कर्ष दिया कि "स्त्री शिक्षा ने विद्रोह की उस कुल्हाडी की धार तेज कर दी है जिससे हिन्दू सामाजिक जीवन की जगली झाडियों को साफ करना सम्भव हो गया है।"

2 आर्थिक जीवन मे बढ़ती हुई स्वतन्त्रता—वतमान मे शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, समाज कल्याण, मनोरजन, उद्योगो और कार्यालयो मे स्त्री कमचारियो की सख्या निरन्तर बढती जा रही है। स्त्रियो को आर्थिक स्वतन्त्रता मिल जाने के कारण उनमे आत्मविश्वास, कार्यक्षमता और मानसिक स्तर में इतनी प्रगति हुई है कि उनके व्यक्तित्व की तुलना उस स्त्री से किसी प्रकार नही की जा सकती जो आज से कुछ वष पहले तक ससार की सम्पूर्ण लज्जा को अपने घू घट मे समेटे हुए और पुरुष के शोषण को सहन करती हुई घुटन मे अपना जीवन व्यतीत कर रही थी।

3 पारिवारिक अधिकारो मे वृद्धि—आज की स्त्री पुरुष की दासी नही बल्कि उसकी सहयोगिनी और मित्र ह। परिवार म उसकी स्थिति एक याचिका की न होकर बल्कि प्रबन्ध की है। बच्चो की शिक्षा, पारिवारिक योजनाओ का रूप निर्धारण करने मे स्त्री की इच्छा का महत्त्व निरन्तर बढता जा रहा है।

4 सामाजिक जागरूकता—स्त्रिया आज अनेक प्रगतिशील सगठनो का निर्माण कर रही हैं। डॉ० पणिक्कर ने लिखा है कि "कुछ मेधावी स्त्रियो ने जो

उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है, वह भारत के लिए उतने महत्त्व की बात नहीं है जितनी कि यह बात कि कट्टर पंथी और पिछड़े समझे जाने वाले ग्रामीण व्यक्तियों के विचार भी करवट लेने लगे हैं। यहां स्त्रियां उन सामाजिक बन्धनों से बहुत कुछ मुक्त हो चुकी हैं जिन्होंने उन्हें रूढियों और 'बाबा वाक्य प्रमाण' की विचारधारा से जकड़ रखा था।

राजनीतिक चेतना में वृद्धि—भारत के अनेक प्रान्तों में विधायक तथा केन्द्र में सांसद स्त्रियों के निर्वाचित होने के साथ, श्रीमती इन्दिरा गांधी का भारत की सर्वप्रथम महिला प्रधान मंत्री निर्वाचित होना सम्पूर्ण संसार के लिए कम आश्चर्य की बात नहीं है।

निष्कर्ष—भारतीय नारियों को आज प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के समकक्ष अधिकार हैं। वे नौकरियां, राजकीय सेवाओं तथा व्यवसायों एवं अनेकानेक विभागों में प्रवेश कर चुकी हैं। आज भारत ही नहीं बल्कि संसार के सभी देशों में स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने की जोरदार मांग उठ खड़ी हुई है। अब विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि अब कोई धर्मशास्त्र अथवा मनगढ़न्त पुराण, भारतीय स्त्रियों को अपनी उन्नति करने से नहीं रोक सकते।

5

हमारी साहित्यिक धरोहर

(Literary Heritage)

महाकाव्य, कालिदास तथा तुलसीदास

(Epics, Kalidas and Tulsidas)

I रामायण—आदि महाकाव्य महत्त्व
II महाभारत—भारतीय ज्ञान का विश्वकोष
III महाकाव्यकालीन-सभ्यता और संस्कृति
IV महाकवि कालिदास और उनका साहित्य
V गोस्वामी तुलसीदास और उनका साहित्य

हमारी प्राचीन धरोहर व परम्परा के रूप मे हम जो कुछ मिला है, वह या तो साहित्यिक रूप में मिला है अथवा कलात्मक अवशेषो के रूप मे। इन दोनो में भी साहित्यिक रचनायें हमारी उस काल की रचनाये हैं जिस समय ससार का कोई ग्रथ नही रचा गया था। अत व हमारे लिए ही नही ससार के सभी लोगो के लिए गौरव की वस्तु है। व केवल भारतीयो की ही धरोहर नही, मनुष्य-मात्र की धरोहर हैं। वह एक ऐसा साहित्य है जो विशद और विस्तृत होते हुए ससार की सवश्रेष्ठ श्रेणी म रखा जाता है और आज तक ऐसा सर्वोच्च एव सवगुण सम्पन्न साहित्य विश्व के प्राचीन इतिहास मे नहीं लिखा गया।

भारत के सुविशाल और समृद्ध साहित्य में हमारी जाति की सभ्यता और सस्कृति के सच्चे स्वरूप की झाकी मिलती है। हम अपने देश के सास्कृतिक विकास के विभिन्न युगो की प्रवृत्तियो को तभी भली प्रकार समझ सकते हैं, जब हम उन युगो के प्रतिनिधि महाकवियो और साहित्यकारो की रचनाओ का सांस्कृतिक दृष्टि से अध्ययन करें। हमारा प्राचीन साहित्य हमे सस्कृत भाषा मे उपलब्ध होता है। इस सस्कृत साहित्य रूपी समुद्र का विविध विषयी रूपी अनेक गगाओ ने बहुमूल्य प्रचुर रूपी जल से शृगार किया और उसके उदर को परिपूरित किया। प्रस्तुत

अध्याय मे, हमारा विषय क्षेत्र रामायण और महाभारत, कालिदास और तुलसीदास के साहित्य तक सीमित है। वैसे, सस्कृत म सबसे पहले जिन ग्रथो की रचना हुई व वेद थे।

महाकाव्य रामायण तथा महाभारत

महाकाव्यो के अतगत 'रामायण' और 'महाभारत' दोना प्राचीन महाकाव्य सम्मिलित हैं। ये दोनो ग्रथ भारत के लौकिक सस्कृत साहित्य तथा सस्कृति के प्रतिनिधि ग्रथ हैं। वास्तव म भारतीय लौकिक साहित्य का प्रारम्भ ही इन्ही ग्रथो से होता है। "ये दोनो ही महाकाव्य हिदू धम के नये स्वरूप की देन हैं। इसमे विष्णु के दो मुख्य अवतार राम और कृष्ण मुख्य रूप से अकित किये गय हैं।" इनमे तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक और सास्कृतिक दशाओ व समस्याओ का विशद विवरण मिलता है। जिस प्रकार प्राचीन आर्यो की धार्मिक अनुश्रुति परम्परा वेदो, ब्राह्मण ग्रथो और उपनिषदो में सग्रहीत है, वैसे ही उनकी ऐतिहासिक गाथाएँ, आख्यान और अनुश्रुति रामायण तथा महाभारत म सग्रहीत हैं। डॉ रमेशच द्र मजूमदार के मतानुसार "जहा वदिक सूत्र साहित्य निर्विवाद ब्राह्मण ग्रन्थ हैं, वहा कहा जा सकता हैं कि रामायण और महाभारत मे क्षत्रियो का दष्टिकोण व्यक्त किया गया है। ये दोना ही महाकाव्य न तो किसी एक कवि और न किसी युग की रचना कहे जा सकते है। निश्चय ही दोनो मे क्रमागत युगो मे काफी परिवतन और परिवद्ध न हुए हैं।"

I रामायण--आदिमहाकाव्य महत्व

रामायण हिदुओ का सबसे प्राचीन महाकाव्य है जिसकी रचना महर्षि बाल्मीकि ने की थी। रामायण का अतिम सस्करण जो हमारे सम्मुख है ईसवी पूर्व सन् 200 या 300 माना जाता है। परतु यह महाकाव्य अपने रचनाकाल के बहुत ही पूव के समय का वणन करता है। आय धम की ध्वजा कैसे साहसपूण आदोलन द्वारा दक्षिणी भारत तथा लका तक फहराई गई, इसकी कुछ कल्पना रामायण द्वारा ही हो सकती है। ऐतिहासिक दष्टि से रामचद्र की दक्षिण यात्रा आर्यों की दक्षिण विजय का प्रथम वत्तात है। अनुमानत इसके पश्चात आर्यों की सभ्यता व सस्कृति का विस्तृत प्रभाव दक्षिण मे फला।

बाल्मीकि रामायण के वतमान सस्करणो म लगभग 24,000 श्लोक हैं और सात काण्ड हैं। वे सात काण्ड इस प्रकार हैं—बाल काण्ड, अयोध्या काण्ड, अरण्य काण्ड, किष्किधा काण्ड, सुदर काण्ड, युद्ध काण्ड, और उत्तर काण्ड। कुछ विद्वानो की धारणा है कि मूल रामायण म कुल पाच काण्ड थ। उसम बाल काण्ड तथा उत्तर काण्ड नही थे। इन दोना काण्डो की शैली से यह सम्भव लगता है कि ये दोनो काण्ड बाद मे जोडे गय हो जसा कि प्राचीन काल के अय ग्रथो के साथ अक्सर हुआ है।

संक्षिप्त मूल कथानक व वर्ण्य विषय—महाकवि वाल्मीकि ने सूर्य वंशी नरेश दशरथ और उनके पुत्रों, विशेषत राजा राम की यशोगाथा वर्णन की है जो रामायण का मुख्य वर्ण्य विषय है। अयोध्या-नरेश दशरथ ने तीन विवाह किये थे। सबसे बडी रानी कौशल्या के पुत्र राम थे, दूसरी रानी सुमित्रा से दो पुत्र उत्पन्न हुए— लक्ष्मण और शत्रुघ्न और तीसरी रानी कैकेई से भरत का जन्म हुआ। राम का विवाह विदेह नरेश जनक पुत्री सीता के साथ हुआ था। ज्येष्ठ पुत्र राम अपने माता पिता के प्रति आज्ञाकारी पुत्र थे। वृद्धावस्था में दशरथ ने जब राम को राज-सिंहासन पर बिठाना चाहा तो कैकई ने दुराग्रह करके राम को 14 वर्ष के लिए वनवास में भिजवा दिया। सीता और लक्ष्मण भी राम के साथ वन गये। इस पर राजा दशरथ की पुत्र वियोग में मृत्यु हो गयी। ननिहाल मे रह रहे कैकई के पुत्र भरत को जब इसका पता चला तो वह बहुत दुखी हुए और रामचन्द्र जी को वापस लाने घर से निकल पडे। चित्रकूट पर्वत पर उनकी रामचन्द्रजी से भेंट हुई। भरत ने बहुत अनुनय विनय किया, किन्तु राम ने पिता को दिए वचन को तोडना स्वीकार नही किया। वनवासकाल में लंका नरेश रावण सीता का हरण कर लेता है। इस पर सीता की प्राप्ति के लिए राम को लंका पर चढाई करनी पडती है। और उन्हें शिव-उपासक रावणका वध करना पडता है। चौदह वर्ष समाप्त होने पर राम, सीता व लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौटते हैं और वहा एक आदर्श राज्य की स्थापना करते हैं।

आर्य संस्कृति का प्रतिनिधि ग्रन्थ रामायण—रामायणमे उस काल की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक अवस्था तथा संस्थाओं, प्रथाओं आदि के विषय मे सुन्दर चित्रण मिलता है। इसमे दो भिन्न संस्कृतियों का संघर्ष देखने को मिलता है। आर्य संस्कृति के प्रतिनिधि राम हैं, तो अनार्य संस्कृति का रावण। ये दोनो संस्कृतिया भिन्न भिन्न जीवन मूल्यों को प्रस्तुत करती हैं। जहाँ राम नैतिकता, न्याय, सत्य अथवा भलाई के पक्षपाती हैं वहा रावण में अनैतिकता, असत्य तथा बुराई के दर्शन होते हैं।

रामायण मे आर्य-पारिवारिक जीवन के उच्चतम आदर्शों का निरूपण है। राम आर्य जीवन के उच्च आदर्श के प्रतीक हैं। वे आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति और अपनी प्राणाधिक प्रियतमा को लोकानुरंजन के लिए परित्याग कर देने वाले आदर्श राजा हैं, रामराज्य आज तक आदर्श राज्य माना जाता है, सीता भारतीय नारीत्व की साक्षात प्रतीक हैं। भारतीय स्त्रियों के लिए वह पवित्रता और पतिव्रत धर्म के लिए आज भी आदर्श हैं। कौशल्या जैसी माता और लक्ष्मण जैसे भाई आज भी हिन्दू समाज मे आदर्श और अनुकरणीय माने जाते हैं।

रामायण का साहित्यिक मूल्यांकन —भारत का आदि काव्य होने पर भी साहित्यिक दृष्टि से इसे परिमार्जित, व्यवस्थित तथा अद्वितीय काव्य ग्रन्थ कहा जा

सकता है। अलंकार, शैली, रस, चरित्र चित्रण, देव कथाओं–सभी दृष्टि से यह काव्य महत्त्वपूर्ण है। महाभारत की तुलना में रामायण में सौन्दर्य, चेतना और चरित्र चित्रण अधिक प्रभावोत्पादक हैं। रामायण में संयोग और वियोग दोनों का चित्रण अद्भुत है। भाषा की स्निग्धता, भावों की सरलता, विचारों की गहनता इस ग्रंथ की काव्यगत विशेषताएँ हैं। भारतीय साहित्य पर रामायण का व्यापक प्रभाव पड़ा है।

रामायण का महत्त्व—प्रसिद्ध विद्वान विन्टरनित्ज ने लिखा है कि "रामायण सम्पूर्ण भारतीय जनता की सम्पत्ति बन गई है और इसने शताब्दियों से एक बड़े राष्ट्र के विचारों तथा काव्यों को प्रभावित किया है।" वैसे कुछ पाश्चात्य विद्वान जैसे विन्सेंट स्मिथ, मैकडानल, हन्टर आदि इसे केवल साहित्यिक ग्रन्थ मानते हैं, ऐतिहासिक नहीं। वे रामायण का जन्म लोक कथाओं व लोक गीतों से मानते हैं जो बाद में अनेक कथा प्रसंगों से जुड़ जाने के कारण वृहद महाकाव्य में बदल गया है। परन्तु, भारतीय विद्वानों के अनुसार उपर्युक्त धारणायें युक्तिसंगत नहीं हैं। आधुनिक अनुसंधान व उत्खनन कार्यों से रामायण की ऐतिहासिकता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। अस्तु, सारांश में कहा जा सकता है कि **"रामायण जैसा कहीं भी कोई दूसरा महाकाव्य ऐसा नहीं है जिसने जन-मानस को इतने दीर्घकाल से लगातार और व्यापक रूप से प्रभावित किया हो।"**

II महाभारत भारतीय ज्ञान का विश्वकोष

महाभारत आर्य संस्कृति का सुप्रसिद्ध महाकाव्य है। महाभारत के रचयिता ऋषि वेद व्यास माने जाते हैं। महाभारत का अन्तिम संस्करण जो आज हमारे सम्मुख है ईस्वी पूर्व सन् 200 के लगभग की रचना है। डॉ बेनी प्रसाद ने लिखा है कि "काव्य के ओज, प्रसाद और चमत्कार के लिए महाभारत की समानता संस्कृत साहित्य में केवल रामायण से ही हो सकती है। महाभारत में बहुत से उपाख्यान, संवाद, गीत इत्यादि शामिल हैं जिनकी रचना संभवतः मूलकथा के आस पास हुई थी पर जो पीछे से मिलाये गये हैं। महाभारत हिन्दू धर्म, नीति, समाज सिद्धांत और कथाओं का विश्व कोष है।

वर्ण्य विषय—महाभारत में कुल 18 पर्व हैं जिसमें कुरुवंश की उत्पत्ति से लेकर महाभारत युद्ध में वीरगति प्राप्त योद्धाओं की अन्त्येष्टि क्रिया तथा विजेताओं के स्वर्ग गमन तक की कथा है। कथा अत्यन्त रोचक है। कौन नहीं जानता कि पाण्डु के पांच पुत्र–युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने अपने चचेरे भाइयों अर्थात धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों कौरवों से बहुत अनबन, निर्वासन और संधि प्रस्तावों की निष्फलता के बाद, कुरुक्षेत्र में महायुद्ध किया था और बड़ी कठिनाई एवं मार-काट के बाद विजय प्राप्त की थी।

कौरवो मे दुर्योधन की हठधर्मी के कारण कुरुक्षेत्र के मैदान में महाभारत का युद्ध लडा गया। 18 दिन तक निरतर भयकर युद्ध हुआ। दोनो पक्षों मे अनेक रथी महारथी मारे गए। इनम भीष्म पितामह, द्रोणाचाय, कर्ण, दुर्योधन, दु शासन आदि ने कौरवो की ओर से तथा अभिमन्यु आदि ने पाण्डवा की ओर से वीर-गति पाई। कौरव वश का नाश हो गया। इस गृह-कलह मे समस्त भारतवष झुलस गया, क्योकि उस काल के देश भर के प्रमुख राजाओ ने एक या दूसरे पक्ष की ओर से युद्ध म भाग ले लिया था।

महाभारत का महत्व—महाभारत केवल कौरव-पाण्डवो के सघष की कथा ही नही अपितु भारतीय सस्कृति और हिन्दू धम के सर्वागीण विकास की गाथा भी है। इसमे तत्कालीन धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक और ऐतिहासिक आदर्शो का अमूल्य एव अक्षय सग्रह है तथा भारतीय नीति का विशाल दपण है। कतिपय विद्वान महाभारत को सवप्रधान काव्य, समस्त दशनो का सार, स्मृति, इतिहास एव चरित्र निर्माण की खान तथा पचम वेद मानते हैं। मानव जीवन की ऐसी कोई समस्या या पहलू नही जिस पर इस ग्र थ मे सविस्तार विवेचन न हो। युधिष्ठिर आज भी सत्य के प्रतीक माने जाते है और कृष्ण को विष्णु का अवतार माना जाता है। विस्तार में कोई भी काव्य महाभारत की समता नही कर सकता। यूनानियो के महाकाव्य इलियड और ओडेसी दोनो मिलकर इसका आठवाँ भाग हैं। उपाख्यानो द्वारा लोक धम के अनेक अ गो पर प्रकाश डाले जाने से इसे उपदेशात्मक ग्र थ कहते हैं और धार्मिक दार्शनिक विचारो का समावेश होने से इसे हिन्दू धम का धमशास्त्र कहा गया है।

महाभारत—एक महाकाव्य के रूप मे—महाभारत का मूल कथानक युद्ध का है। अत यह स्वभाविक ही था कि इसके रचयिता का ध्यान सौन्दय चर्चा पर अधिक न जाकर नीति-बोध व धम चर्चा पर जाता। इसमे प्रकृति चित्रण भी अधिक नही है तथा नारी सौन्दर्य पर भी कम लिखा गया है। महाकाव्य की नायिका द्रौपदी का भी सौन्दय वणन नहीं किया गया है। कदाचित् इसका प्रमुख कारण यही है कि यह सच्चे अर्थों मे वीर-काव्य है और उसका रचयिता महाभारत के वीरतापूर्ण कार्यो के वर्णन में ही सलग्न हो गया है। इस तरह, साहित्यिक दृष्टि से महाभारत इतना महत्त्वपूर्ण ग्र थ नही है, जितना रामायण।

निष्कष—महाभारत की कथा मे कहा तक ऐतिहासिक कल्पनाएँ हैं—यह बताना असम्भव है। डॉ बेनी प्रसाद का मत है कि "शायद मूल-कथा की मोटी-मोटी घटनाओ में ऐतिहासिक सत्य है, पर बाकी छोटी-छोटी बातो और कथानक मुख्यत कवियो की करामात है।" अस्तु, यही कहा जा सकता है कि महाभारत का वर्णन चाहे ऐतिहासिक हो अथवा कल्पना मिश्रित, फिर भी उनसे तत्कालीन सभ्यता की बहुत सी बातो का पता लगता है। हिन्दू राजनीति का ब्योरेवार वृत्तान्त सबसे

पहलीबार महाभारत में मिलता है। सामाजिक सस्थाए व्यवहार मे कैसी थी, यह भी महाभारत द्वारा अच्छी तरह मालूम होता है। उस समय के तत्त्व ज्ञान पर भी पर्याप्त प्रकाश पडता है।

III महाकाव्य-कालीन सभ्यता व सस्कृति

महाकाव्यो के अन्तगत रामायण तथा महाभारत सम्मिलित हैं। "वदिक युग के बाद की और बौद्ध युग के पूव की भारतीय सस्कृति के स्वरूप को समझने के लिए इन दोनो महाकाव्यो से बढकर कोई अन्य साधन हमारे पास नहीं हैं।" इनमे धम, आचार विचार, सस्थाएँ, प्रथाएँ प्रणालियाँ, और आदश शताब्दियो से भारतीयो को प्रेरणा दे रहे हैं और हमारे सास्कृतिक जीवन निर्माण मे प्रमुख भाग लेते रहे हैं।

राजनीतिक दशा—इस युग में आर्यों के विशाल राज्य स्थापित हो चुके थे। अधिकांश राज्य राजतन्त्रात्मक थे, कुछ गणतन्त्रात्मक भी थे। इस काल में उत्तर भारत मे अनेको राज्यो का वणन है। विशेषकर महाभारत-काल मे भारत अनेका छोटे छोटे राज्यो मे बटा हुआ था। जो नरेश 'राजन्य कहाने वाले छोटे छोटे शासको को अपने आधिपत्य मे कर लेते थे, वे 'सम्राट' की उपाधि धारण करते थे। 'दिग्विजय' राजनीतिक प्रभुता का प्रतीक था, यद्यपि पराजित देशो को वास्तव मे विजित राज्यो मे नही मिलाया जाता था। पराजित राजा द्वारा प्रभुता को स्वीकृत कर लेना ही पर्याप्त माना जाता था। अधीनस्थ राजा युद्धकाल मे सम्राटों को सहायता और सहयोग देते थे। इस प्रकार 'सामन्तवाद' जिसने प्रारम्भिक और मध्यकालीन भारत की राजनीति में महत्वपूर्ण भाग लिया था, भलीभाँति स्थापित हो चुका था। वश परम्परानुसार राजा का उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र होता था।

राजा राज्य का सबसे बडा अधिकारी होता था, परतु वह निरकुश नहीं था। उसे अपने बन्धुओ, मन्त्रियों, पुरोहितो, परामशदाताओ और जनता के मत का सम्मान करना पडता था। यह माना जाता था कि राजा प्रजा का अनुरजन और रक्षण करता है और उसके कष्ट का निवारण करता है। दुष्ट, निरकुश, अत्याचारी राजा सिंहासन से उतार दिया जाता था। वसे, राजा ऐश्वय का केन्द्र था, वह बडी शान शौकत और तडक भडक से रहता था। न्याय दान करना उसका एक प्रमुख कत्तव्य माना जाता था। राजा राज्य का शासन सचालन मन्त्री-परिषद की सहायता व सहयोग से करता था। सुव्यवस्थित शासन-सचालन के लिए अनेक सामन्त और पदाधिकारी भी थे।

शासन की निम्नतम इकाई 'ग्राम' थी जिसका मुखिया 'ग्रामणी कहलाता था। राज्य अधिकारियों मे से प्रत्येक अपने से ऊपरवाले के प्रति उत्तरदायी होता था

और अन्त में सभी राजा के प्रति उत्तरदायी थे। राजा का कर्त्तव्य माना गया था कि भ्रष्ट अधिकारियों व कर्मचारियों से प्रजा की रक्षा करे। राज्य की आय के प्रमुख स्रोत भूमि की उपज, वाणिज्य-व्यापार, खानों, समुद्रों तथा वनों की उत्पत्ति पर लगाए हुए कर थे।

राज्य के लिए सेनाएँ भी होती थीं। सेना का मुख्य अंग पदल, रथ, हाथी तथा घुड़सवार होते थे। धनुर्विद्या उस समय बहुत बढ़ी चढ़ी थी। युद्ध नियमों के आधार पर लड़ा जाता था। रात्रि को युद्ध बन्द हो जाता था। उस अवधि में, दोनों पक्ष के लोग साधारण व्यक्तियों की तरह आपस में मिला करते थे। निःशस्त्र, निष्कवच और युद्ध से पीठ दिखाने वाले पर प्रहार नहीं किया जाता था। प्रहार करने से पूर्व शत्रु को सूचित किया जाता था, विश्वास देकर या घबराहट में डालकर प्रहार करना एवं परस्पर छलना अनुचित माना जाता था।

सामाजिक दशा—इस काल में सामाजिक जीवन बड़ा सरल और सादा था। लोग महान् सादगी, न्याय निष्ठा और सच्चाई का जीवन व्यतीत करते थे। वे अपने प्रातः स्नान, प्रार्थना और पूजन में कदाचित ही कभी चूकते थे। उनके आहार और वेष भूषा भी सादा थे। वैसे, स्त्री पुरुष दोनों को ही शृंगार करने और आभूषण पहिनने का शौक था। आतिथ्य की बड़ी महिमा थी जो वैदिककाल में थी। वैदिक युग की भांति इस काल में जीवन का दृष्टिकोण आशावादी था। भाग्य की अपेक्षा पौरुष पर अधिक महत्त्व दिया जाता था। अधिकतर जनता मिट्टी के दुर्ग के चतुर्दिक ग्राम में रहती थी और पशु पालन तथा कृषि कर्म करती थी। वणिक तथा अन्य व्यवसायी एवं नागरिक नगरों में रहते थे। समाज पहिले की भांति वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित था। समाज में जाति प्रथा पहिले की अपेक्षा अधिक निर्दिष्ट हो गयी थी। चारों वर्णों में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता पूर्ववत् विद्यमान थी। गृहस्थ में पत्नी का स्थान पति के बराबर समझा जाता था। स्त्रियों में मध्य युग जैसी परतन्त्रता एवं घोर पर्दा प्रथा नहीं थी।

आर्थिक दशा—इस काल में अधिकतर जनता पशु पालन और खेती करती थी। विविध प्रकार के शिल्प व्यवसाय प्रचलित थे, जिनमें वस्त्र व्यवसाय अधिक उन्नति पर था, रेशमी वस्त्रों का भी प्रचलन था। स्वर्ण, चांदी, लोहा, सीसा और रांगे से विविध पदार्थ तैयार किये जाते थे। व्यापार प्रमुख रूप से वैश्यों के हाथ में था। रामायणकालीन आर्थिक व्यवस्था की उन्नति का रहस्य सुशासन माना गया है। लोगों की सामान्य आर्थिक दशा संतोषजनक थी। परन्तु, महाभारतकाल में लोगों की आर्थिक दशा गिर चुकी थी। फिर भी सामान्यतः लोग दुःखी न थे।

धार्मिक दशा—वैदिककाल का धर्म अब बदल चुका था। प्राकृतिक शक्तियों के सूचक वैदिक देवताओं का अब लोप हो चुका था और उनका स्थान ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शिव, गणेश, पार्वती आदि देवताओं ने ले लिया था। जिस प्रकार

वदिक युग मे समस्त देवता एक ईश्वर की विभिन्न शक्तियो के सूचक थे, उसी प्रकार इस युग में ईश्वर के तीन मुख्य उत्पादक, धारक और सहारक शक्तियो के प्रतीक ब्रह्मा, विष्णु और महेश हो गये थे। इस त्रिमूर्ति का उत्कर्ष इस युग की विशेषता है।

रामायण के समय तक यज्ञ का महत्त्व खूब रहा। महाभारत के समय म आत्म सयम और चरित्र शुद्धि पर अधिक बल दिया जाने लगा। ऐसी धारणा होने लगी थी कि सच्चा यज्ञ तो सत्य, अहिंसा, सयम, वैराग्य, आचार शुद्धि एव तृष्णा तथा क्रोध का परित्याग है। तपस्या, कम और आत्मा के आवागमन सिद्धात भी पूर्णत मान्य हो चले थे। इस काल म, वीर पूजा म लोगो का विश्वास बढ़ता जा रहा था और अवतार का प्राबल्य हो रहा था। राम तथा कृष्ण का विष्णु का अवतार माना जाने लगा था। महाभारत के एक भाग भगवदगीता में इस युग का सर्वोत्कृष्ट रूप प्रदर्शित होता है। उसमे कम, ज्ञान और तप तीनो ही साधनो द्वारा मोक्ष की प्राप्ति का माग बतलाया गया है। गीता ने पहली बार स्त्री और पुरुष, ऊँच और नीच, द्विज और शूद्र, आर्य और अनार्य, सभी को मोक्ष का अधिकारी समझा।

निष्कर्ष—रामायण और महाभारत की सामग्री से ऐसा प्रतीत होता है कि उस युग मे वतमान सामाजिक और धार्मिक विश्वासो और सस्थाओ की नींव पूर्णतया रखी गयी थी। साराश मे, कहा जा सकता है कि महाकाव्य काल अपने समृद्ध और विकासोन्मुख जीवन के लिए प्राचीन भारतीय इतिहास का स्वर्णकाल था।

IV महाकवि कालिदास और उनका साहित्य

महाकवि कालिदास सस्कृत साहित्य के सर्वोपरि कलाकार तो हैं ही, यदि उन्हें विश्व साहित्य के सर्वोत्कृष्ट कलाकार भी कह दिया जाय तो अतिशियोक्ति न होगी। कवि कुल गुरु कालिदास द्वारा रचित अनेक काव्य और नाटक विश्व साहित्य मे विख्यात हैं। उनकी समानता अग्रेजी साहित्य के महान कलाकार शेक्सपियर से की जाती है, किन्तु यह नही भूलना चाहिए कि शेक्सपियर ने उत्तमोत्तम नाटक अवश्य लिखे हैं, पर उन्होने किसी महाकाव्य की रचना नही की है। कालिदास तो नाटककार होने के अतिरिक्त रघुवश कुमार सम्भव जसे महाकाव्यो के भी रचयिता हैं। अत उन्हें शेक्सपियर से भी बढ़कर कवि एवं नाटककार माना जा सकता है।

सक्षिप्त जीवन परिचय—सुरभारती के अमर महाकवि कालिदास के जीवन चरित्र के विषय म हमें प्रामाणिक रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है, क्योकि उन्होने अपने किसी भी ग्रन्थ में अपने जीवन से सम्बन्धित कुछ भी नही लिखा है। अतएव उनके विषय मे जो कुछ भी कहा या माना जाता है, वह अधिकतर आनुमानिक ही है। न तो इनके जन्म-स्थान का ठीक ठीक

पता लगता है और न इनकी ज म तिथि का ही। इनके माता पिता का नाम तो आज तक किसी को भी मालूम न हो सका। किसी का कहना है कि यह मिथिला निवासी थे, कोई इन्हे बगाल का रहने वाला बतलाता है और कोई काश्मीर का। परन्तु उज्जन और मालवा का तत्कालीन दशा को और उसकी भौगोलिक स्थिति का जो सूक्ष्म वणन कालिदास ने किया है उसस विद्वानो की धारणा है कि उसका ज म सभवत उज्जैन म हुआ था।

प्रो० बी० एन० लूणिया के अनुसार कालिदास के आविर्भाव के विषय म तीन मत हैं। प्रथम मत क अनुसार कालिदास का आविर्भाव ईसा पूव की पहली सदी म विक्रम सवत के प्रारम्भ म हुआ। इसके अनुसार कालिदास उज्जन के विक्रम सवत के प्रवर्तक राजा विक्रमादित्य का समकालीन था। वह उसकी राज सभा का मेधावी साहित्यकार व राजकवि था। दूसरा मत यह है कि कालिदास गुप्तकाल म था और तीसरा मत है कि कालिदास छठी सदी म था। इन तीनो म दूसरा मत कि कालीदास चौथी पाचवी सदी मे गुप्तकाल म था अधिक प्रामाणिक और मान्य है। उसका कार्यकाल लगभग 455 ई० तक रहा होगा।

कालिदास के ग्रन्थो को देखन से ज्ञात होता है कि वह जन्म से ब्राह्मण थ और शिव भक्त थ, किन्तु अ य देवताओ का आदर करते थे। 'मेघदूत' और रघुवश इस बात के परिचायक हैं कि उन्होने भारतवप का विस्तृत भ्रमण किया था। यही कारण है कि उनका भौगोलिक वणन बहुत ही सुदर और स्वाभाविक है। उन्ह राजसी-जीवन और राज परिवारो का पूरा ज्ञान था। उन्होने दरिद्रता का वणन कही नही किया जिससे मालूम होता है कि उनका जीवन बडा सुखमय और शान्त था। उन्होने गीता रामायण, महाभारत, वेद, पुराण धमशास्त्र दशन, ज्योतिष, आयुर्वेद, सगीत व्याकरण, छद शास्त्र और काव्यशास्त्र आदि का गम्भीर अध्ययन किया था एसा उनके ग्र थो से विदित होता है। उन्ह अपने जीवन काल म ही पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त हो गई थी।

साराश म, कालिदास को जीवन की घनी अनुभूति थी। वे विभिन्न शास्त्रो क ज्ञाता थे। उनकी विद्वत्ता उनकी कृतियो म झलकती है। कालिदास की प्रखर मेधा की ऊचाई तक आज भी अन्य कवि नही पहुँच सके। अपने गुणो के कारण कालिदास की कविता विश्व-वन्द्या हो गई है।

कालिदास एक कवि के रूप मे

कालिदास सस्कृत साहित्य का सवश्रेष्ठ कवि है। उसकी सवप्रियता का कारण उसकी सरल, परिष्कृत और प्रसाद-गुण युक्त शैली है। कालिदास की कविता अपने सौन्दय, सरसता सरलता, सादगी भावो और शब्द चयन के लिए प्रसिद्ध है। उनके ओज और प्रसाद गुणो म वाक्यो की सौम्यपूण चारुता, भावो और भावो की सूक्ष्मता, उनकी उपमाओ की सुन्दरता, अनुकूलता और विविधतायें

उनके अलकारो के सौष्टव मे, पुरुष और प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण और चित्रण में, विचारो की गभीरता और अभिव्यक्ति की तीक्ष्णता मे, करुणा और प्रेम क भावो के उत्कृष्ट प्रदर्शन मे तथा शैली की सरलता एव शब्द चयन के माधुय म, आज तक सस्कृत का कोई भी कवि कालिदास की उपमाओ म जो विविधता, पटुता और सुन्दरता है, अलकारो का जो साधिकार प्रयोग है वह सस्कृत के अन्य कवि म नहीं है। उनकी रचनाओ मे काव्यात्मकता और सौन्दय बोध के साथ साथ, व्यावहारिक जीवन की शिक्षा और नीति परक बातें भी हैं।

कालिदास की शली की मुख्य विशेषतायें—कालिदास की काव्य शली पर विचार करने स ज्ञात होता है कि उसकी शली की मुख्य विशेषतायें इस प्रकार हैं। (1) गुण और रीति—कालिदास सरस वाणी के रस कवि थे। उनकी रचना म सवत्र प्रसाद गुण मिलता है। कालिदास की लोकप्रियता का प्रधान कारण है उनकी प्रसाद पूर्ण, लालित्ययुक्त और परिष्कृत शली। उनकी शली म प्रसाद, माधुय और ओज इन तीनो गुणो की सत्ता है। (2) भाषा—उनकी भाषा सरस, सरल और मनोरम है उसमें क्लिष्ट रचना, क्लिष्ट कल्पना और दुरूह प्रयोगा का अभाव है (3) वणन कुशलता—कालिदास प्रत्येक वस्तु का सजीव वर्णन कुशलता पूवक करता है। जहा पर जसा भाव है, वहा पर उसकी भाषा उसी प्रकार की है। वह प्रकृति के वर्णन मे बहुत पटु है। (4) सौन्दय प्रेम—कालिदास सौन्दर्योपासक कवि थे। वे सौन्दय की कोमल भावनाओ के सच्चे पारखी थे। (5) भाव व्यजना—कालिदास मानव हृदय की कोमल भावनाओ, उसकी उत्सुकता और विह्वलता और उसके विविध भावावेशो के सच्चे पारखी थे।

समालोचना—अपने उपयुक्त गुणो के कारण ही कालिदास की कविता विश्ववन्द्य हो गई है। प्राचीनकाल म कवियो की गणना का प्रसग आने पर कालिदास का नाम सवप्रथम कनिष्ठिका उगली पर रक्खा गया। बाणभट्ट के अनुसार कालिदास की आम्र मजरी के समान सरस मधुर सूक्तियो को सुनकर किसके हृदय मे आनन्द का उद्रेक नही होता। नवम शताब्दि मे आनन्द वधनाचाय ने अपने 'ध्वन्यालोक' में लिखा है कि इस ससार म अनेक कवि पैदा होते हैं फिर भी उनमे से कालिदास के समान दो तीन या अधिक से अधिक पाच छ व्यक्तियो को ही महा कवि की उपाधि दी जा सकती है। टीकाकार मल्लिनाथ ने तो कालिदास की कला के बारे मे यहा तक लिखा है, "कालिदास की वाणी के सार को आज तक केवल तीन व्यक्तियो ने ही समझा है, एक तो ब्रह्मा, दूसरे सरस्वती तीसरे कालिदास स्वय। मेरे समान पुरुष तो उसको ठीक ठीक समझने मे असमथ हैं।"

कालिदास की सवतोमुखी प्रतिभा उन्हें विश्व साहित्य में असाधारण स्थान प्रदान करती है। उन्होने महाकाव्य व गीत काव्य सभी मे अपनी प्रखर प्रतिभा का समान रूप से परिचय दिया है कोई भी एक कृति इनमे उनकी बराबरी नहीं कर

सकता। भारतीय आदर्श के अनुसार काव्य की अन्तरात्मा "रस" की जैसी पूर्ण अभिव्यक्ति कालिदास के काव्यों में हुई है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। कालिदास, वास्तव में, संसार के सर्वश्रेष्ठ कवियों में से हैं।

कालिदास की चार काव्य रचनायें—कालिदास की चार काव्य कृतियाँ प्रामाणिक मानी गई हैं—ऋतुसंहार, मेघदूत, रघुवंश और कुमार संभव। रघुवंश और कुमार संभव महाकाव्य हैं, ऋतुसंहार नीतिकाव्य है व मेघदूत खण्डकाव्य है।

ऋतु संहार—यह कालिदास की संभवत और प्रारम्भिक कृति है। यह अत्यन्त छोटा और सरल सादा काव्य है। इसमें छः सर्ग हैं और 153 श्लोक हैं। प्रत्येक सर्ग में एक ऋतु का वर्णन है। इस ग्रन्थ में वर्ष की छः ऋतुओं (ग्रीष्म, वर्षा शरद, हेमंत, शिशिर और वसंत) का, उनकी गर्मी सर्दी का, उनमें फूलने वाले पेड़-पौधों का, ऋतुओं के जीव-जन्तुओं का, मनुष्यों और अन्य प्राणियों पर पड़ने वाले ऋतुओं के प्रभाव का बड़ा भावुक और मधुर वर्णन किया गया है। इस रचना में कालिदास का सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण और प्रकृति प्रेम दोनों परिलक्षित होते हैं।

कवि कालिदास ऋतुओं को केवल प्राकृतिक रूप में ही नहीं देखता उन्हें वह मनुष्य की भावनाओं के साथ जुड़ा हुआ पाता है। ये ऋतुएं मनुष्य के मन में विभिन्न भावनाओं को जन्म देने में कारक का कार्य करती हैं। वे मनुष्य को आह्लादित करती हैं, उसे उदास करती हैं तो कभी उसकी आकांक्षाओं को तीव्र करती हैं। इस तरह कवि सभी स्थानों पर प्रकृति को मनुष्य की सहचरी के रूप में देखता है। कवि ने इस ग्रन्थ में ऋतुओं का बहुत ही सजीव और सरल चित्रण किया है। शरद ऋतु का वर्णन कितना मोहक है —'शरद ऋतु कास के वस्त्र पहिने हुए, खिले हुए कमल के सुन्दर मुखवाली शरद ऋतु हंसों की ध्वनि के नूपुर पहिने हुए है। इसका शरीर पके हुए धान के समान सुन्दर है। ऐसी शरद् ऋतु नव वधु के समान धरती पर उतर रही है।" ऐसे ही सजीव चित्रण अन्य ऋतुओं के लिये किये गये हैं।

मेघदूत—यह खंड काव्य है। समूचा काव्य मन्दाक्रांता छंद में है और इसमें कुल 130 श्लोक हैं। यह गीतिकाव्य है। इसके दो भाग हैं—पूर्व मेघदूत और उत्तर मेघदूत। प्रथम भाग में यक्ष अपने कर्त्तव्य में आलस करने से अपने स्वामी कुबेर द्वारा अलका नगरी से निर्वासित होता है और वर्षाकाल आने पर अपने निर्वासन स्थान रामगिरि से मेघ को दूत बनाकर अपनी पत्नी के निवास स्थान अलका तक राह बताता उसे वहां भेजता है। कालिदास ने रामगिरि से लेकर अलका तक के मार्ग का—नदी, पर्वत, ग्राम, नगर, नर नारी, प्रकृति आदि का—सरस एवं विस्तृत वर्णन किया है। सबको बड़े भावोद्रेक से प्रस्तुत किया है। दूसरे भाग में उसकी प्रोषित पति का विरहिणी यक्षिणी के विरह में कटे दिनों का करुणामय वर्णन है तथा यक्ष के भेजे गये संदेश का उल्लेख है इस प्रकार मेघदूत में एक विरह विधुर निर्वासित यक्ष तथा उसकी प्रिय पत्नी के वियोग में आतुर दशा का वर्णन है।

इसीलिए, यह वियोग और शृंगार का श्रेष्ठ काव्य है। इसमें मनुष्य की निश्चल, कोमल और गहरी प्रेम भावना अभिव्यक्त हुई है। अभिव्यजना की सूक्ष्मता, कोमल भावना की अभिव्यक्ति और विषय की बहुलता के कारण मेघदूत को कालिदास की सर्वोत्कृष्ट रचना माना गया है।

मनुष्य की मनोदशा का इतना सजीव चित्रण मुश्किल से ही मिल पायगा जसा इस काव्य मे बन पडा है। इसम यक्ष व्याकुल होकर कहता है कि, "हे प्रिय, पत्थर के टुकडे के ऊपर भिन्न भिन्न रगो वाली धातु की खडिया से जब म तुम्हारा चित्र खीचना चाहता हू, उस समय आस से मेरी आखें भर जाती हैं और चित्रम भी तुम्हारे दशन से वचित कर दिया जाता हू।" इस काव्य-ग्रन्थ के बारे म प्रो कीथ का कहना ह, "बादल के आगे बढने के वर्णन का चमत्कार अथवा यक्षी के चित्र की करुणा की जितनी प्रशसा की जाये उतनी थोडी है।" साराश मे यह काव्य समय और स्थान की सीमाओ को लाघकर सवदेशीय एव सवकालीन हो गया है।

रघुवश—यह कालिदास का प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसकी गणना सस्कृत के सवश्रेष्ठ महाकाव्यो मे की गयी है। इसम श्री रामचन्द्र के पूवज, दिलीप, अज, रघु और दशरथ का वणन है, राम का गुणानुवाद और राम के वशजो का चरित्र चित्रण है। इसम कुल 19 सग हैं। इस महाकाव्य मे कालिदास ने युद्ध अभिषेक विवाह, निर्वासन, विजय, सदराज्य, चरित्र चित्रण आदि का वणन सरस, मधुर और लालित्यपूण काव्य शली मे किया है, इसम कवि न कई मार्मिक स्थलो का भाव पूण वणन करके अपनी लेखनी की साथकता सिद्ध कर दी ह।

रवीन्द्रनाथ टगोर के मतानुसार, "रघुवश म भारतवष के प्राचीन सूयवशी राजाओ का जो चरित्र गान है उसमे कवि की वदना निहित है।' साराश मे, इसका प्रत्यक पद मनोहर और आकषक है। जसे भाव ऊँचे हैं, भाषा भी उनके अनुसार सरल, आजल और परिमार्जित है। 'रघुवश का दूसरा सग तो मानो भारतीय भावो का मधुर सूत्र है।

कुमार सम्भव—कालिदास का यह सुदरतम महाकाव्य ह उसकी प्राढ कृति है। कुमार सम्भव म 17 सग मिलते हैं। कुछ विद्वानो का मत है कि कालिदास ने कुमार सम्भव के केवल आठ सग ही लिखे, 9 सग बाद मे जोड दिय गय। क्योकि मल्लिनाथ की टीका आठ सग तक ही है तथा बाद म नौ सर्गो की भाषा और शली विभिन्न है। तथा उनकी काव्यात्मकता मे ओज का अभाव है। इस महाकाव्य म शिव पावती के विवाह कुमार स्वामि कार्तिकय का जन्म तथा कुमार द्वारा तारकासुर के वध की कथा है। इसम बसन्त हिमालय और पावती तपश्चया का वणन तथा शिव पावती सवाद बडे मनोहर हैं। यह शृगार रस का काव्य है। इसकी विशिष्टता है—कल्पनाओ की बहुरगानी, विषयो की विविधता और अनुभूतियो की उष्णता। इस महाकाव्य मे कालिदास ने जीवन दशन के कुछ सत्यो को प्रकट

करने, का सफल प्रयत्न किया है तथा ऐश्वर्य्य के साथ तपस्या का महत्व सच्चे प्रेम के लिए आवश्यक माना है। तपस्या ही प्रेम का पवित्र बनाती है।

कालिदास एक नाटककार के रूप मे—कालिदास के नाटक विश्व विख्यात हैं। इस सबध मे कालिदास ने स्वय लिखा है कि "मेरे नाटक तो नये हैं, पुराने कितने ही नाटक विद्यमान हैं। परतु पुराना होने से कोई नाटक उत्तम नही कहा जा सकता और नया होने के कारण निन्दनीय भी नही माना जा सकता। कृति के गुण दोष पर विचार करके परीक्षकों को निश्चय करना चाहिए कि कौनसा ग्रन्थ हेय है और कौनसा ग्राह्य।" उसके नाटकों के सवाद सक्षिप्त सरल और रोचक हैं। सवादों की भाषा इतनी चुस्त और मुहावरेदार है कि विषय को अत्यत आकर्षक बना देती है। उसके प्रत्येक शब्द चुने हुये और उपयुक्त होते हैं। कालिदास मानव हृदय की कोमल भावनाओं उसकी उत्सुकता और विह्वलता और उसके विविध भावावेशों के सच्चे पारखी थे। कालिदास के नाटकों मे—मालविकाग्निमित्रम, विक्रमोर्वशीय तथा अभिज्ञान शाकुन्तलम उनकी प्रसिद्ध रचनायें हैं।

मालविकाग्निमित्रम—कालिदास का यह प्रारम्भिक नाटक है जो पाच अको मे है, इस नाटक मे कालिदास ने शुग नरेश अग्नि मित्र और विदर्भ प्रदेश की राजकुमारी कुमारी मालविका के प्रेम का वर्णन किया है। मालविका सकटापन्न स्थिति मे पडकर अग्नि मित्र के रनवास मे रानी की दासी बनकर रही थी। अग्नि मित्र अपने विदूषक की सहायता से मालविका से मिलने और उसे प्राप्त करने मे सफल होते है। इस नाटक की महत्त्वशाली घटना यूनानियो का अश्वमेघ यज्ञ द्वारा, भारत से निष्कासन है। अस्तु एतिहासिक दष्टि से भी यह नाटक महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि यह कालिदास का प्रारम्भिक नाटक है और इसमें दोष भी हैं परन्तु उसमे उसकी काव्यकला और नाटककार की प्रचुर झलक है।

विक्रमोर्वशीय—यह कालिदास का दूसरा नाटक है जो पाच अको मे है। इसमे प्रतिष्ठान के ऐल राजा पुरुरवा और उर्वशी के प्रणय, विरह और पुनर्मिलन का वर्णन है। जब स्वर्ग जाती हुई अप्सरा उर्वशी का दानव केशी ने अपहरण कर लिया, तब राजा पुरुरवा ने उसकी रक्षा की। फलत दोनो परस्पर प्रेमबद्ध हो गये दोनो के प्रेम के बीच बार बार बाधा विघ्न उपस्थित होते हैं। अन्त मे आयु नामक पुत्र पुरुरवा को देकर उर्वशी स्वर्ग को लौट जाती है। यह नाटक गीत काव्यात्मक अधिक है। इसमे अत्यन्त ही भाव प्रवण गीत हैं। पुरुरवा के प्रेम को कवि ने बहुत ही सजीव बना दिया है। उर्वशी के पुत्र के प्रति वात्सल्य पूर्ण भावना को भी कवि ने सफलता पूर्वक चित्रित किया है। इस नाटक मे कालिदास ने प्रथम बार अपभ्रंश के छदो का प्रयोग किया है। मालविकाग्निमित्र नाटक की अपेक्षा इस नाटक मे कालिदास चरित्र चित्रण और कथा वस्तु को प्रस्तुत करने मे अधिक सफल हुआ है।

अभिज्ञान शाकुन्तलम्—यह कालिदास का विश्वविख्यात नाटक है। यह नाटक सात अंकों का है। यह कालिदास की सर्वांग सुन्दर कोमल कृति है, जो भारतीय नाट्य साहित्य की मुकुट मणि है। यह नाटक संस्कृत साहित्य का ही नहीं, अपितु विश्व साहित्य का उत्कृष्ट और उच्चकोटि का नाटक है। इसकी भाषा, व्यवस्था और रचना बड़ी मनोरम है। इसका कथानक महाभारत से लिया है परन्तु नाटक को निर्दोष और सर्वांग सुन्दर बनाने के लिए नाटककार कवि ने मूल कथा में कुछ परिवर्तन कर दिये हैं। इन परिवर्तनों से कथा और अधिक मनोहर और आकर्षक बन गई है। महाभारत की निर्जीव कथा में इन्होंने नव जीवन फूँक दिया है।

कथावस्तु—इस नाटक में कालिदास ने महाभारत की प्रख्यात दुष्यन्त शकुन्तला की कथा का नाटकीय ढंग से विकास किया है। ऋषि कण्व के आश्रम में दुष्यन्त शकुन्तला का मिलन, शकुन्तला के हृदय में प्रेम की लुभावनी गुदगुदी शकुन्तला को दुर्वासा ऋषि का शाप, शकुन्तला द्वारा दुष्यन्त की दी गई अंगूठी का खो जाना, शकुन्तला की विदाई, दुष्यन्त की राजसभा में शकुन्तला का प्रवेश, मछुआरों का दृश्य, दुष्यन्त और शकुन्तला का पुनर्मिलन आदि नाटक के प्रभावोत्पादक दृश्य हैं। इस नाटक में जहाँ कालिदास ने एक बार दुष्यन्त के रूप में एक आदर्श नरेश का स्वरूप प्रस्तुत किया है, वहीं दूसरी ओर शकुन्तला के स्वरूप में उन्होंने विशुद्ध भारतीय युवती और पत्नी का श्रेष्ठतम रूप भी प्रस्तुत किया है। इस नाटक में मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति में, चरित्र चित्रण के प्रस्तुतीकरण में और प्रकृति के चित्रण में कालिदास ने अद्भुत नाट्य कौशल का परिचय दिया है।

समालोचना—यह नाटक शकुन्तला तथा दुष्यन्त के प्रणय पर आधारित तो है ही परन्तु इसमें प्राकृतिक दृश्यों का जो स्वाभाविक चित्रण हुआ है, मनुष्य की मनोभावनाओं का सशक्त निरूपण हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ लगता है। नाटक में कई ऐसे मार्मिक स्थल हैं जो अनायास ही पाठकों के मन को मोह लेते हैं—शकुन्तला की कण्व मुनि के आश्रम से विदा, पेड़–पौधों से, पक्षियों से, पशुओं से मिलने व विदा कुछ ऐसे कारुणिक दृश्य हैं जो सहज ही मन को आकर्षित कर लेते हैं। मानव और प्रकृति में भावनाओं का आदान प्रदान और आत्मीयकरण इस नाटक की शक्ति है। कवि ने जिस रूप में इसको प्रस्तुत किया है, वह उन्हीं की विशेषता है। आश्रम की सभी लतायें शकुन्तला को अपनी बहिन मानती हैं मृग शिशु शकुन्तला के मन की बातों को जानते हैं विदाई के अवसर पर उनका कपड़ा खींचते हैं, उसके वियोग में सारी वनस्थली रो पड़ती है। वृक्ष आँसू की तरह पत्ते गिराते हैं, मृग घास खाना और मयूर नाचना छोड़ देते हैं। सचमुच ऐसा सजीव चित्रण कालिदास जैसे कवि-नाटककार की महान् देन है। शकुन्तला की सुकुमारता, उसकी पवित्र मुग्धता उसका वियोग, उसकी तपस्या सभी का कवि ने बड़ी सफलता के साथ निरूपण किया है। यही कारण है कि भाषा की प्राञ्जलता, भावों की गहराई, सजीव चित्रण,

रसो के सही निरूपण के कारण यह ग्रन्थ विश्व के महान साहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान सुरक्षित करा सका है ।

महत्त्व व स्थान—इस नाटक का सस्कृत साहित्य म इतना ऊचा स्थान है कि उसका पढे बिना कोई व्यक्ति साहित्यिन नही कहला सकता। गत सौलह सौ वर्षो से भारतीय साहित्य की रत्न-राशि म यह ज्वाजल्यमान हीरे की भाति चमक रहा ह । इस नाटक का अनुवाद ससार की सब शिष्ट भाषाओ मे हो चुका है । विदेशी साहित्यकारो ने इस नाटक की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की है । जर्मनी के प्रसिद्ध कवि गेटे की रचना "फाउस्ट" पर इसका प्रभाव पडा है ।

जमन कवि गेटे का कहना ह कि शकुन्तला विश्व की सवश्रेष्ठ कल्पना कृतियो में एक ह जिसमे **"यौवन का फूल और प्रौढावस्था का फल"** एक साथ मिल सके हैं। रवीन्द्रनाथ टगोर का मत है कि **"न तो शक्सपियर का, न अन्य किसी पश्चिमीय अथवा भारतीय लेखक का नाटक कालिदास के इस नाटक की समानता कर सका है ।"** प्रो० मेक्डानल ने भी इसकी भूरि भूरि प्रशसा की है। साराश मे, "शकुन्तला" मे कालिदास की प्रतिभा अपने सर्वोच्च शिखर पर दिखाई देती है ।

V गोस्वामी तुलसीदास और उनका साहित्य

भारतीय साहित्य धरोहर म महात्मा तुलसीदास का नाम और उनकी अमर रचना 'रामचरित मानस' अति उल्लेखनीय हे । वाल्मीकि ने जिस प्रकार सस्कृत म रामायण महाकाव्य रचकर विश्व म अपना नाम सदव के लिए अमर कर दिया, उसी प्रकार तुलसीदास न हिन्दी मे 'रामचरित मानस' महाकाव्य की रचना कर अपनी यश चन्द्रिका स इस ससार को हमेशा के लिए आलोकित कर दिया है। यदि यह कहा जाय कि तुलसीदास के जोड का सत्कवि विश्व साहित्य म दूसरा नही हुआ तो अत्युक्ति नही होगी । मध्यकाल के कवियो मे तुलसी का स्थान श्रेष्ठतम कवियो म स है—इसस सभी सहमत हे । डॉ० ग्रियर्सन न तो 'तुलसीदास को महात्मा बुद्ध के बाद उत्तरी भारत का सबस बडा जन नायक माना ह ।' डॉ० रमेश चन्द्र मजूमदार ने लिखा ह कि "रामभक्ति क लेखका म सबसे अधिक प्रसिद्ध तुलसी दास थे । वे न केवल उच्चकोटि क कवि थे, वरन भारत निवासियो (हिन्दुओ) के लिए आध्यात्मिक गुरु भी थे, जहा उनका नाम एक घरलू शब्द हो गया ह और जहा उनकी स्मृति की लाखो व्यक्तियो द्वारा अर्चना की जाती है ।"

सक्षिप्त जीवन परिचय—गोस्वामी तुलसीदास का जन्म ई० सन् 1533 म राजापुर तहसील जिला बादा (यू पी) म हुआ था । य सरयूपारीय ब्राह्मण थे। इनक पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था । तुलसी के बचपन का नाम रामबोला रखा गया था । बचपन मे ही माता पिता के स्वर्गवास हो जाने तथा सरक्षक न मिलने के कारण तुलसीदास का बचपन बडी कठिनाई मे

बीता था। उन्हें भिक्षा माँगकर अपनी उदरपूर्ति करनी पड़ी। कदाचित इसी अवस्था में रहने के कुछ समय बाद उन्होंने रामभक्ति की दीक्षा ली। उनके गुरु का नाम बाबा नरहरिदास था जिनके साथ काशी में पंचगंगा घाट पर जाकर रहे। वहीं पर रह रहे एक अन्य महात्मा शेष–सनातन ने इस बालक का नाम तुलसीदास रखा और उसे व्याकरण, वेद, वेदांग, दर्शन, इतिहास, पुराण और काव्य व नाटक 15 वर्ष तक पढ़ाये। कुछ काल पश्चात् 20 वर्ष की अवस्था में तुलसी का विवाह रत्नावली नामक सुन्दर कन्या से हुआ। कुछ दिन इन्होंने गृहस्थ का जीवन व्यतीत किया। थोड़े दिन बाद एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो बचपन ही में मर गया। इनकी पत्नी सुन्दर थी पर गर्वीले स्वभाव की और तीखी थी, एक दिन उसकी व्यंग्योक्ति सुनकर तुलसीदास की वैराग्य भावना जाग उठी और उन्होंने गृह त्याग कर दिया। उस समय उनकी अवस्था 30 साल के लगभग थी। घर से निकलकर वे कुछ दिन काशी और फिर अयोध्या रहे। पीछे तीर्थाटन को निकल पड़े और जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम्, द्वारका होते हुए बद्रिकाश्रम गये, वहाँ से कैलाश और मानसरोवर तक गए। अन्त में चित्रकूट में आकर रहने लगे। वहाँ इनका बहुत से साधु-सन्तों और विद्वानों से सत्संग हुआ। फिर वहाँ से चलकर 1565 ई० में अयोध्या में रहने लगे, जहाँ रहकर उन्होंने 'रामचरितमानस' लिखना प्रारम्भ किया। बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड और अरण्यकाण्ड वहाँ लिखने के बाद वे काशी चले आये और वहीं रहकर रामायण को सम्पूर्ण किया।

अब तुलसीदास भक्त और महात्मा माने जाने लगे थे। और इनकी मित्रता आम्बर-नरेश महाराजा मानसिंह, महान अकबर के मन्त्री अब्दुर्रहीम खानखाना, भक्त सूरदास, प्रसिद्ध भक्त नाभाजी आदि से हो गई थी। काशी में उनके विरोधिया-शैव व नाथ सम्प्रदाय वालों ने उन्हें काफी मानसिक और शारीरिक कष्ट पहुँचाया। 1624 ई के लगभग तुलसीदास जी की 91 वर्ष की अवस्था में काशी में ही मृत्यु हुई।

तुलसीदास की रचनायें काव्य विशेषतायें

तुलसीदास ने बड़ी मात्रा में साहित्य तैयार किया। प्रामाणिक आधारों पर उनके द्वारा रचित निम्नलिखित ग्रन्थ माने जाते हैं —1 रामचरितमानस 2 विनय पत्रिका 3 कवितावली 4 गीतावली 5 कृष्ण गीतावली 6 दोहावली 7 रामलला नहछू 8 वैराग्य संदीपनी 9 पार्वती मंगल 10 जानकी मंगल 11 बरवै रामायण तथा 12 रामाज्ञा प्रश्न। तुलसीदास ने इनके अतिरिक्त भी साहित्य रचा है ऐसा माना जाता है। परन्तु उचित प्रमाणों के अभाव में उस साहित्य को तुलसी के नाम के साथ नहीं जोड़ा जा सकता।

'तुलसीदास पण्डित और कवि—आचार्य चतुरसेन शास्त्री के अनुसार, तुलसी संस्कृत, हिन्दू दर्शन और धर्मशास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनकी अद्भुत वर्णन शैली, परिमार्जित भाषा और दार्शनिक भावों से ओत प्रोत आध्यात्म वर्णन

इस बात को प्रकट करते हैं। पर पीछे ज्यो ज्यो वे जीवन म आगे बढते गये विद्वान की अपेक्षा कवि अधिक रह गये। उनकी प्रब ध रचना, चरित्र चित्रण और भाव प्रदशन अप्रतिम है। मानव समाज के स्वभाव से उनका गम्भीर परिचय था। इसी से वे ज्ञान के सस्थापक और भक्ति क प्रतिष्ठाता के रूप म अमर हुए। अपनी कविता की धारा मे उ होने सकडो, हजारो नए भावा और मुहावरो का सफल प्रयोग किया, जो सवथा मौलिक है। उनक हाथो म पडकर प्रातीय अवधी बोली समस्त उत्तराखण्ड की पूजनीय भाषा हो गई। उनके स्पश से व्रज भाषा भी निखर गई। उनके विचार स्पष्ट और निश्चल थे। उनमे न वचक उक्ति थी, न अति रजना। उनकी कला मे व्यापक सहृदयता का ऐसा प्रदशन है कि मानव हृदय उस पर मुग्ध हो जाता है।

काव्य की विशेषतायें—तुलसीदास जी के काव्य म निम्नलिखित विशेषतायें थी जिनके फलस्वरूप उत्तरी भारत म वे अधिक जन प्रिय हो गया।

(i) रस-सामग्री—तुलसीदास रस सिद्ध कवि हैं। उनकी सभी महत्त्वपूण कृतियो मे प्रभावशालिनी रस निबधता हुई है। उनके प्रति पाद्य विषय के अनुरूप भक्ति रस ही मुख्य ह, अन्य रसो की योजना गौण रूप मे का गई है।

(ii) चरित्र अकन— चरित्राकन कथात्मक काव्य का महत्त्वपूण अग है। अत तुलसी ने चरित्राकन की सभी विशेषताओ की ओर पूण ध्यान दिया है। उनके पात्रा म ऐसी असाधारण विविधता पाई जाती है, जो बहुत ही कम कवियो की कृतियो मे मिलती ह।

(iii) शब्दाथ स तुलन—तुलसी के का य म शब्दो और उनक अर्थों का सन्तुलन आश्चयजनक है। एक शब्द के स्थान पर दूसरे शब्द का प्रयोग नही किया जा सकता। प्रत्येक शब्द अपन स्थान पर जुडा हुआ है आर उसे वहाँ से हटाया नही जा सकता।

(iv) अलकार योजना—उनके महत्त्वपूण ग्रथो म कोई ऐसा स्थल नही मिलेगा, जहाँ उ होने अलकार योजना न की हो। उनक अलकारा का सौदय शब्द और अथ दोनो के वैचित्र्य पर आश्रित है।

(v) भाषा पर अधिकार—तुलसीदास न तत्कालीन प्रचलित दोनों जन-भाषाओ—अवधि और ब्रज भाषा—में साहित्य रचना की ओर दोनो पर उनका समान रूप से अधिकार था। उनकी 'रामचरितमानस अवधि की और 'कृष्ण गीतावली' व्रजभाषा की सवश्रेष्ठ रचनायें हैं।

(vi) छ द योजना—तुलसीदास ने अपने युग म प्रचलित सभी प्रमुख छन्द-शलियो का उपयोग किया है। उनके पाच स्थूल वग बनाए जा सकते हैं—दोहा, चौपाई, गीत, कवित्त सवया और बरव। प्रत्येक छ द की अपनी आकृति है और भावो के अनुकूल ही तुलसीदास ने उनका प्रयोग किया है।

तुलसीदास का अमर काव्य—रामचरितमानस

रामचरितमानस तुलसीदास की सबसे प्रौढ और सर्वांगपूर्ण रचना है। वह सब गुणसम्पन्न प्रबन्ध काव्य है। रामचरित मानस को उन्होने 2 वर्ष 7 मास मे सम्पूर्ण किया था। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के अनुसार, इस काव्य ग्रन्थ का अयोध्याकाण्ड सबसे उत्कृष्ट और प्रौढ अंश है। उसमे उत्तम काव्य के सब गुण हैं रसो का परिपाक और भावों का विकास उसमें खूब हुआ है। अलकारो की जगमगाहट मानस-नेत्रो मे चकाचौध उत्पन्न करती हैं। वास्तव म मानस का अयोध्याकाण्ड तुलसी की कविता का वसन्त है। सम्भवत यह काण्ड उन्होने सबसे पहले अयोध्या म लिखा था। इसम उन्होने केवल राम और शिव को ही देवभाव से माना है। इस काण्ड म करुण रस का अति प्रभावशाली प्रवाह है। केवल राम के विवाह प्रसग पर थोडा श्रृंगार और हास्य है। लकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड म कवि की प्रतिभा थकी हुई सी दीख पडती है। उत्तर काण्ड में फिर कवि का तेज प्रकट होता है। यहा भक्ति रस का सुन्दर प्रदर्शन है। यह काव्य रचने के बाद तुलसीदास 49 वर्ष तक और जीवित रहे।

तुलसीदास ने अपनी कविता की भाषा देशकाल और परिस्थिति के अनुसार अधिकांश अवधी, कुछ ब्रजभाषा, कहीं कहीं बुन्देलखण्डी और थाडी भोजपुरिया रखी है। तुलसीदास की भाषा मे शुद्ध सस्कृत की सस्कृति और अपनी भाषा का प्रकटीकरण स्पष्ट है। उनकी नैसर्गिक कवित्व शक्ति ने उन्हे बोल चाल की भाषा म रामचरितमानस लिखने के लिए बाध्य किया। यह स्पष्ट है कि वह विद्वान कवि की ग्रामीण भाषा है। उसम सस्कृत काव्य का ही अनुकरण है। वह काल मुगल साम्राज्य के उदय का था। उस समय फारसी भाषा का बोलबाला हो चला था। इसलिए तुलसीदास ने फारसी अरबी शब्दो को भी अपनी कविता मे लेने मे सकोच नहीं किया। केवल भाषा ही नहीं, इन्होने कविता की शैली भी हिन्दी की परम्परा के अनुकूल दोहे और चौपाइयो म चुनी। उन्होने छन्द भी लोक प्रचलित ही चुने थे। रामचरितमानस देशी विदेशी अनेक भाषाओं म अनुवाद हो चुके हैं।

रामचरित मानस मे श्रीराम का चरित्र-चित्रण

रामचरित मानस मे मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन वत का वर्णन किया गया है। इसमे श्री राम के जीवन का विभिन्न अवस्थाओं एव उनके जीवन के विभिन्न पहलुओ का गोस्वामी जी ने बहुत ही सरस एव सजीव ढग स वर्णन किया है। इसमें राम के बाल्यकाल, युवाकाल एव प्रौढ जीवन का सुन्दरतम ढग मे वर्णन किया है। श्रीराम को पुत्र के रूप म, भाई के रूप मे, पति के रूप म, राजकुमार एव तपस्वी के रूप म, एक आदर्श राजा के रूप मे तुलसीदास ने समाज के सम्मुख उपस्थित किया है। उपर्युक्त प्रत्येक रूप मे उनका आदर्श स्वरूप ही प्रस्तुत किया गया है। साराश मे, श्री राम एक आदर्श मानव हैं किन्तु विष्णु के अवतार हैं। तुलसी ने अनेक स्थलो पर राम को जगत-सृष्टा कहा है। तुलसी की भक्ति प्रधान

रूप से दास्यभाव की थी। उनके अवतार का उद्देश्य भक्तो व धर्मों का उद्धार करना था।

इसके अतिरिक्त, तुलसी के आदर्श राम ही नही थे, सीता भी उनके लिए आदर्श स्त्री थी , भरत आदर्श भाई थे, कौशल्या आदर्श माता थी, हनुमान आदर्श भक्त थे जिन्होने राम को अपना आदर्श माना, वे तुलसी के लिए आदर्श बन गये।

वास्तव मे, तुलसीदास 'रामचरितमानस' के माध्यम से एक आदर्श राज्य, एक आदर्श समाज तथा आदर्श सामाजिक सम्बन्धो का निरूपण करना चाहते थे, जिनसे उनके समय का राज्य एव समाज शिक्षा ग्रहण कर सके। अत उन्होंने हर क्षेत्र के आदर्श व्यक्तियो को 'रामचरित मानस' मे स्थान दिया है।

राम, सीता, लक्ष्मण आदि के चित्रण मे तुलसीदास ने आदर्श चरित्र का निर्माण किया है जिसके द्वारा हम सत्य के निकट पहुँच सकते हैं और सत्कर्म के द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। राम-अवतार के रूप म चित्रित हैं, सीता स्वय उत्पन्न है फिर भी सीता के विछोह का दुख राम अनुभव करते हैं और सीता भी उसी भाति विरह का अनुभव करती हैं। यहा सत्य व आदर्श का यथार्थ समन्वय मिलता है।

श्रीराम इस महाकाव्य के धीरोदात्त नायक है। कवि ने उन्हे मर्यादा पुरुषोत्तम तथा लोकनायक के रूप मे चित्रित किया है। उनके चरित्र मे शक्ति, और सौन्दर्य का अपूर्व मिश्रण है। उनके चरित्र म नर तथा नारायण के रूप का अपूर्व समन्वय कर कवि ने हिन्दू समाज के समक्ष भक्ति का आधार प्रस्तुत किया है।

तुलसी ने खल विनाशक राम के शक्तिशाली जीवन द्वारा लोक शिक्षा का पाठ पढाया। किस प्रकार अत्याचार का घडा भरने पर फूटता है और अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह होता है और शान्ति का युग आता है, यह रामचरितमानस में देखने को मिलता है। तुलसीदास के राम पूर्ण मानव है। मानव के सुख दुख, राग-विराग की सम्पूर्ण भावनाएँ उनम हैं। राम के रूप मे युग ने जनता का पूर्ण रूप देखा।

साराश मे, मानस मे चित्रित श्रीराम माता पिता के पक्के भक्त एव आज्ञाकारी पुत्र थे। व न्याय व वीरता की साक्षात्कार मूर्ति थे। जनता की भावनाओं का आदर करने वाले न्यायी और उदार शासक थे। इसीलिए राम राज्य आदर्श शासन माना जाता है। तुलसीदास ने मानस मे श्रीराम के राज्य का आदर्श प्रस्तुत कर एक आदर्श राज्य के स्वरूप का उदाहरण प्रस्तुत किया है। इस तरह, "तुलसीदास की यह अद्भुत सफलता है कि उन्होंने आदर्श चरित्र का सफल निर्माण किया है जिसके फलस्वरूप उनकी गणना विश्व के महान कवियों में की जाती है।" ऐसे समय में जबकि राज प्राप्ति के लिए राज्य-परिवारों में भाई-भाई एक दूसरे के खून के प्यासे बन रहे थे—उन्होंने राम और भरत को आदर्श रखा। इन्हीं गुणों के

तुलसीदास का अमर काव्य--रामचरितमानस

रामचरितमानस तुलसीदास की सबसे प्रौढ और सर्वा गपूर्ण रचन
गुणसम्पन्न प्रबन्ध काव्य है। रामचरित मानस को उन्होंने 2 वष 7
किया था। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के अनुसार, इस काव्य ग्रन्थ
सबसे उत्कृष्ट और प्रौढ अंश है। उसमे उत्तम काव्य के सब गुण हैं
और भावों का विकास उसमें खूब हुआ है। अलकारो की जगम
मे चकाचौंध उत्पन्न करती है। वास्तव मे मानस का अयोध्याकाण
का बसन्त है। सम्भवत यह काण्ड उन्हाने सबसे पहले अयोध्या
उन्होंने केवल राम और शिव को ही देवभाव से माना है। इ
का अति प्रभावशाली प्रवाह है। केवल राम के विवाह प्रसग
हास्य है। लकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड मे कवि की प्रतिभा
है। उत्तर काण्ड में फिर कवि का तज प्रकट हाता है। य
प्रदशन है। यह काव्य रचने के बाद तुलसीदास 49 वष न

तुलसीदास ने अपनी कविता की भाषा देशकाल
अधिकाश अवधी, कुछ व्रजभाषा, कहीं-कहीं बुन्देलखण्डी
ह। तुलसीदास की भाषा मे शुद्ध सस्कृत की सस्कृति
करण स्पष्ट है। उनकी नसर्गिक कवित्व शक्ति न
रामचरितमानस लिखने के लिए बाध्य किया। यह
ग्रामीण भाषा है। उसमे सस्कृत काव्य का ही
साम्राज्य के उदय का था। उस समय फारसी भा
इसलिए तुलसीदास ने फारसी अरबी शब्दा को भ
नही किया। केवल भाषा ही नही, इन्हाने कवि
के अनुकूल दोहे और चौपाइया म चुनी। उ हा
थे। रामचरितमानस देशी विदशी अनेक भाप

रामचरित मानस मे श्रीर

रामचरित मानस मे मर्यादा पुरुषो
गया है। इसमे श्री राम के जीवन का वि
विभिन्न पहलुओ का गोस्वामी जी न बहु
हु। इसमें राम के बाल्यकाल, युवाका
किया है। श्रीराम को पुत्र के रूप म
एव तपस्वी के रूप मे, एक आदर्श र
उपस्थित किया है। उपयुक्त प्रत्येक
गया है। साराश में, श्री राम एक आ
तुलसी ने अनेक स्थला पर राम को जगत

महान समन्वयकारी सन्त—तुलसीदास ने अपने साहित्य में धार्मिक समन्वय की बात स्वीकार की है। उनका धर्म कभी कट्टरता की सीमाओं से बंधा धर्म नहीं रहा। उन्होंने छोटी छोटी बातों पर धार्मिक वैमनस्य की भावना की निन्दा की है। उन्होंने धर्म का विशाल, व्यापक एवं महिमामय स्वरूप का अपने काव्य में निर्देश किया है। उनका धर्म सत्य पर आधारित है, लोक कल्याण उसका साधन तत्व है तथा नियम और शील उसके अंग हैं। इस प्रकार 'शील और नियम, आत्मपक्ष एवं लोकपक्ष के समन्वय द्वारा धर्म की यही सर्वतोमुखी रक्षा रामचरित मानस का गूढ़ रहस्य है।

तुलसीदास ने किसी नवीन पन्थ या सम्प्रदाय को जन्म नहीं दिया। इस पर भी उनका नाम अमर हो गया। वास्तव में, तुलसीदास किसी नवीन सम्प्रदाय की नींव डालने की अपेक्षा विभिन्न विचारधाराओं में समन्वय का प्रतिपादन करना अधिक उचित समझते थे। यथार्थ में, लोकनायक भी वही व्यक्ति हो सकता है जिसमें समन्वय करने की क्षमता हो।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार, "लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियां, साधनाएँ, जातियाँ आचार निष्ठा और विचार पद्धतियाँ प्रचलित हैं। महात्मा बुद्ध समन्वयकारी थे। गीता में समन्वय की चेष्टा है और तुलसीदास भी समन्वयकारी थे" तुलसी का सम्पूर्ण काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। डा० बद्रीनारायण श्रीवास्तव के शब्दों में, "दार्शनिक दृष्टिकोण से उनकी साधना समन्वय की ही साधना प्रतीत होती है।"

तुलसीदास स्वयं राम के अनन्य भक्त थे, पर रामचरित मानस में उन्होंने शिव की महिमा का भी गान किया है। उन्होंने बताया कि राम और शिव दोनों ईश्वर के रूप हैं। तुलसी ने राम को निर्गुण व सगुण बताते हुए कहा है कि वस्तुतः राम एक है। तुलसी ने वर्ण व्यवस्था को स्वीकार करते हुए भक्ति के क्षेत्र में शूद्र को समान स्थान दिया है। रामचरित मानस में क्षत्रिय भरत और ब्राह्मण वशिष्ठ को निम्न जाति के निषाद और केवट का आत्मविस्मृत होकर आलिंगन करते हुए दिखाया गया है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि महात्मा तुलसीदास अपने युग के महान समन्वयकारी सन्त थे। उनके रामचरित मानस से ज्ञान व भक्ति का समन्वय, वैराग्य और गृहस्थ का समन्वय, भक्ति और मुक्ति का समन्वय तथा मर्यादित लोक व्यवस्था और अद्वैती ज्ञान का समन्वय हुआ है। अतः यह उचित ही कहा गया है कि "हिन्दू समाज व धर्म में तुलसीदास समन्वय के प्रतिपादक थे।"

□ □ □

तुलसीदास की महानता एव जन प्रियता

भक्ति आन्दोलन के कवियो म तुलसीदास का स्थान सर्वोपरि है। उनके समय से लेकर आज तक उनकी महानता और जन प्रियता अपने सर्वोच्च स्तर पर स्थित है। तुलसीदास लोकदर्शी कवि थे। उन्होने जीवन के विभिन्न पक्षो को सूक्ष्मता से देखा था। उनके समय की कोई भी परिस्थिति उनकी पैनी दृष्टि से नहीं बची थी। वस्तुत उन्होने अपने समय की राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियो के सजीव चित्र प्रस्तुत किये हैं।

महान् समाज दृष्टा—तुलसीदास भारतीय सभ्यता एव संस्कृति के अनन्य भक्त थे। वे समाज का एक विकसित रूप देखना चाहते थे। वे ऐसा समाज चाहते थे जिसमे सभी सुखी एव प्रसन्न हो। वे समाज को प्राचीन आदर्शों पर आधारित देखना चाहते थे। वर्ण व्यवस्था के साथ साथ राम का सा आदर्श परिवार उन्हे प्रिय था। सीता सी आदर्श पत्नी वे हर स्त्री को देखना चाहते थे। गुरु का सम्मान व आदर्श स्थापित करना चाहते थे। उन्होने तत्कालीन पतनोन्मुख हिन्दू समाज के सामने राम-लक्ष्मण जसे आदर्श व्यक्तियो के चरित्र को सामने रखकर समाज के उच्च आदर्शों की रक्षा करने का पूरा पूरा प्रयत्न किया।

महान् राष्ट्र द्रष्टा—तुलसीदास का साहित्य आदर्श समाज की रचना तक ही सीमित नही था। उनका आदर्श तो राम राज्य की स्थापना था जिसमे सभी प्रजाजन सुखी और सम्पन्न हो। जिसमे राजा और प्रजा का सम्बन्ध साधारण सम्बन्धो पर आधारित न होकर पिता और पुत्र के सम्बन्धो पर आधारित हो। राजा का कर्त्तव्य अपनी प्रजा को सुखी देखना था। वे मानते थे—'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी।' यही नही, राजा को प्रजा प्राणो की तरह प्यारी होनी चाहिए। यह उनका आदर्श था। वे शासन को भय और अन्याय पर आधारित न मानकर प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तो पर आधारित मानते थे। 'मनसा वाचा कर्मणा' राजा को प्रजा का हितैषी होना चाहिए। जब तक ऐसा नहीं होता तब तक आदर्श, सुन्दर राज्य की परिकल्पना नही की जा सकती। राजा की शोषक मनोवृत्ति और सामन्तशाही प्रवृत्ति ने राजा को मानव से दानव बना दिया था। प्रजा असहाय और अरक्षित थी। अत तुलसीदास ने आदर्श राज्य की कल्पना अपने महान काव्य रामचरितमानस मे प्रस्तुत की जो कई दृष्टियो से अपनी तरह की मौलिक रचना है। "तुलसी ने अत्याचारी प्रशासको द्वारा किये गये शोषण के विरुद्ध कोई विद्रोह तो खड़ा नही किया, झकझोर देने वाली शब्दावली मे उथल पुथल मचा देने वाला लोमहर्षक वर्णन भी नही किया, पर तु कर उगाहने की आदर्श रीति बतलाकर व्यजना द्वारा उस शोषण का सकेत अवश्य किया।' इतिहासकार वी० स्मिथ के अनुसार, "तुलसीदास भारत मे अपने युग के सबसे महान् व्यक्ति थे—स्वय सम्राट अकबर से महानतर।"

महान समन्वयकारी सन्त—तुलसीदास ने अपने साहित्य में धार्मिक समन्वय को बात स्वीकार की है। उनका धर्म कभी कट्टरता की सीमाओं से बंधा धर्म नहीं रहा। उन्होंने छोटी छोटी बातों पर धार्मिक वैमनस्य की भावना की निन्दा की है। उन्होंने धर्म का विशाल, व्यापक एवं महिमामय स्वरूप का अपने काव्य में निर्देश किया है। उनका धर्म समय पर आधारित है, लोक कल्याण उसका साधन तत्त्व है तथा नियम और शील उसके अंग हैं। इस प्रकार 'शील और नियम, आत्मपक्ष एवं लोकपक्ष के समन्वय द्वारा धर्म की यही सर्वतोमुखी रक्षा रामचरित मानस का गूढ़ रहस्य है।

तुलसीदास ने किसी नवीन पन्थ या सम्प्रदाय को जन्म नहीं दिया। इस पर भी उनका नाम अमर हो गया। वास्तव में, तुलसीदास किसी नवीन सम्प्रदाय की नींव डालने की अपेक्षा विभिन्न विचारधाराओं में समन्वय का प्रतिपादन करना अधिक उचित समझते थे। यथार्थ में, लोकनायक भी वही व्यक्ति हो सकता है जिसमें समन्वय करने की क्षमता हो।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार, "लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियां साधनाएँ, जातियां आचार निष्ठा और विचार पद्धतियां प्रचलित हैं। महात्मा बुद्ध समन्वयकारी थे। गीता में समन्वय की चेष्टा है और तुलसीदास भी समन्वयकारी थे।' तुलसी का सम्पूर्ण काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। डा० बद्रीनारायण श्रीवास्तव के शब्दों में, "दार्शनिक दृष्टिकोण से उनकी साधना समन्वय की ही साधना प्रतीत होती है।"

तुलसीदास स्वयं राम के अनन्य भक्त थे, पर रामचरित मानस में उन्होंने शिव की महिमा का भी गान किया है। उन्होंने बताया कि राम और शिव दोनों ईश्वर के रूप हैं। तुलसी ने राम को निर्गुण व सगुण बताते हुए कहा है कि वस्तुतः राम एक है। तुलसी ने वर्ण व्यवस्था को स्वीकार करते हुए भक्ति के क्षेत्र में शूद्र को समान स्थान दिया है। रामचरित मानस में क्षत्रिय भरत और ब्राह्मण वशिष्ठ को निम्न जाति के निषाद और केवट का आत्मविस्मृत होकर आलिंगन करते हुए दिखाया गया है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि महात्मा तुलसीदास अपने युग के महान समन्वयकारी सन्त थे। उनके रामचरित मानस से ज्ञान व भक्ति का समन्वय, वैराग्य और गृहस्थ का समन्वय, भक्ति और मुक्ति का समन्वय तथा मर्यादित लोक व्यवस्था और अद्वैती ज्ञान का समन्वय हुआ है। अतः यह उचित ही कहा गया है कि "हिन्दू समाज व धर्म में तुलसीदास समन्वय के प्रतिपादक थे।"

□ □ □

6

भारतीय समाज पर इस्लाम का प्रभाव
तथा
मध्यकाल मे सास्कृतिक समन्वय सम्बन्धी प्रयत्न

(Impact of Islam on Indian Society & Attempts on Cultural Synthesis in Medieval Period)

I इस्लाम और पैगम्बर मुहम्मद सिद्धान्त व शिक्षायें
II हिन्दू समाज पर इस्लाम का प्रभाव
III मुस्लिम समाज पर हिन्दुत्व का प्रभाव
IV मध्य युगीन सास्कृतिक समन्वय
V हिन्दी साहित्य मे मुस्लिम कवियो का योगदान

I इस्लाम और पगम्बर मुहम्मद सिद्धान्त व शिक्षायें

सम्राट हष के पश्चात् राजपूत युग म भारत मे एक ऐसे विदेशी तत्त्व ने प्रवेश किया जिसकी सभ्यता और सस्कृति विकसित थी। यह तत्त्व इस्लाम था। इस्लाम की उत्पत्ति तथा प्रसार ससार के इतिहास की एक महत्त्वपूण घटना है। इस एशियाई महान् धम का जन्म, सातवी शताब्दी के आरम्भ मे, अरब देश मे हुआ। एक शताब्दी के अन्दर यह धम उत्तरी अफ्रीका, ईरान, अफगानिस्तान, चीन मिश्र तथा ससार के कई अन्य देशो मे फल गया। यद्यपि भारत मे इस धम का प्रसार दूसरे देशा की अपेक्षा काफी समय बाद हुआ, तथापि इसने भारतीय समाज व सस्कृति पर गहरा प्रभाव डाला। दो विभिन्न सस्कृतियो, हिन्दू और मुस्लिम, के समाघात के फलस्वरूप, भारत म, सास्कृतिक जीवन के नवीन समन्वय का विकास हुआ।

सिद्धान्त—इस्लाम के पगम्बर हजरत मुहम्मद (577 633 ई०) ने अपने अनुयायियों को निम्नलिखित आदेशा का पालन करने को कहा था। ये आदेश इस्लामी जीवन का महत्त्वपूण अग हैं। 1 कलमा—प्रत्येक मुसलमान को अल्लाह व उसके पैगम्बर में दृढ विश्वास रखना चाहिये और 'कलमा' (ला इलाहा

इल्लिल्लाह मुहम्मदुरसुलिल्लाह) पढना चाहिए। इसके अर्थ हैं "अल्लाह के अतिरिक्त और कोई पूजनीय नहीं है तथा मुहम्मद ही उसके रसूल (सन्देशवाहक) है।" 2 जकात—प्रत्येक समृद्ध मुसलमान को अपनी आमदनी का ढाई प्रतिशत भाग दान-खरात में देना चाहिये जिसे जकात (धार्मिक कर) कहा जाता है। 3 नमाज—प्रत्येक धर्म भीरु मुसलमान को प्रतिदिन पाँच बार नियमित रूप से अल्लाह की इबादत (प्रार्थना) करनी चाहिए, अर्थात नमाज पढना चाहिए। 4 रोजा (व्रत)—रमजान के पवित्र मास में उसे रोजे रखना चाहिए अर्थात सूर्योदय पूर्व से सूर्यास्त के मध्य बिल्कुल भूखा प्यासा रहे। 5 हज (तीर्थ यात्रा)—जीवन में एक बार, बिना कर्ज भार उठाये, उसे मक्का मदीने की तीर्थ-यात्रा करना चाहिए।

मुख्य शिक्षाएं

हजरत मुहम्मद की शिक्षाएँ बडी सरल है। उनके उपदेशो व कार्यों का सकलन 'हदीस' नामक ग्रन्थ मे सकलित हैं।

(1) एक ईश्वर मे दृढ विश्वास—ससार मे केवल एक ही अल्लाह अथवा ईश्वर है जो सर्वोच्च और महान है। वही सबको जीवन देने वाला और पालने वाला है। मनुष्य को एक अल्लाह मे ही दृढ विश्वास रखना चाहिये और उसके अतिरिक्त अन्य किसी देवी देवता की पूजा नही करनी चाहिये।

(2) मनुष्य मात्र को समान मानना—इस्लाम के अनुसार, ससार के सभी मनुष्य मूल रूप से एक समान हैं, आपस में भाई भाई हैं। जन्म से कोई छोटा या बडा नही है। जाति, धर्म और वर्ग के आधार पर भेद भाव करना मनुष्य मात्र की समानता व एकता के सिद्धान्त के विरुद्ध है।

(3) मानव जाति की सेवा—कुरान में कहा है, "जो व्यक्ति अपने मुसलमान भाई की आवश्यकता पूरी करता है, ईश्वर उसकी आवश्यकता को पूरा करता है। जो किसी के दुःख को दूर करने मे सहायता देता है, अल्लाह उसके दुःख दूर करता है। जो लोग अपने भाइयो पर दया नही करते, उन्हे ईश्वर की ओर से दया की आशा नही करनी चाहिये।

(4) मूर्ति पूजा का खण्डन—इस्लाम मे, एक मात्र सर्व शक्तिमान ईश्वर-अल्लाह की इबादत (उपासना) को छोडकर, किन्ही भी देवी देवताओ की मूर्ति-पूजा करना महापाप माना गया है। बुतपरस्ती (मूर्ति पूजा) एक अज्ञान माना गया है।

(5) कर्म तथा स्वर्ग नर्क के सिद्धान्त मे विश्वास—पैगम्बर मुहम्मद का विश्वास था कि शुभ कर्म करने वाले तथा कर्त्तव्य परायण लोग ईश्वर के सच्चे भक्त हैं। प्रलय (कयामत) के दिन प्रत्येक व्यक्ति को इस ससार मे किये उसके अच्छे या बुरे कामो के अनुसार फल मिलेगा। एव सदाचारी व्यक्ति को स्वर्ग के सुख प्राप्त होंगे, जबकि दुराचारी को नर्क मे डाल दिया जायेगा।

(6) प्रार्थना में विश्वास—हजरत मुहम्मद के अनुसार, मनुष्य की अध्यात्मिक उन्नति के लिये इबादत (प्रार्थना) अति आवश्यक है। प्रार्थना या इबादत करने पर मनुष्य का अल्लाह मे विश्वास दृढ होता है। प्रार्थना मनुष्य को अपने कर्त्तव्य के प्रति सावधान रखती है, उन्हें अभिमानी होने से बचाती है और अत्यन्त निराशा के क्षणो म भी उसे धीरज देती है। इस्लाम का पवित्र धार्मिक ग्रन्थ 'कुरान' है जिसमे ईश्वरीय सन्देश सकलित है।

भारत मे मुस्लिम शासन की विशिष्टताएं

भारत म नवीन इस्लामी या मुस्लिम सस्कृति अरबो द्वारा लायी गयी थी। भारत मे इस्लाम धर्म और सस्कृति का प्रचार व प्रसार दो प्रकार मे हुआ—शान्ति पूर्वक और बलपूर्वक। प्रथम ढग से प्रचार करने वाले अरब व्यापारी, मुस्लिम फकीर व दरवेश थे। द्वितीय प्रकार स प्रचार करने वाले तुर्की और मुगल आक्रान्ता थे। प्रो० बी० एन० लूनिया के अनुसार, भारत मे मुस्लिम शासन की कुछ विशिष्टताएं हैं। (1) भारत मे मुसलमानो का इतिहास राष्ट्रीय विकास की अपेक्षा राजाओं, राजसभाओं और विजयो का इतिहास है। उसमे आम लोग और उनकी सस्कृति को कोई महत्त्व नही दिया गया उन्हे गौण स्थान प्राप्त था। (2) प्रारम्भिक राजवश अल्पकालीन थे। इन कुलो का इतिहास वीरता, महानता, वमनस्य, सघर्ष और अध पतन का है। (3) मुसलमान ही भारत के सर्वप्रथम आक्रामक थे जिन्हें हिन्दू समाज अपने मे सम्मिलित न कर सका। मुस्लिम भारत म सदव विभिन्न समुदाय ही बने रहे। उनका इस्लाम धर्म दृढ एकेश्वरवादी धर्म होने के कारण हिन्दू बहु देववाद से मतक्य न कर सका। इसके अतिरिक्त, दूसरे धर्म का निगलकर उसे अपने रक्त, मास व मज्जा म मिश्रित कर अपना अग बना लेने की हिन्दू धर्म मे जो प्राचीन विलक्षण शक्ति थी, वह मुसलमानो के आगमनकाल तक प्राय क्षीण हो चुकी थी। जिन लोगो के पूर्वज विधर्मियो को अपना अग बना लेते थे, व उनका स्पर्श मात्र महापाप समझने लगे। अतएव हिन्दू और मुसलमान एक ही देश में रहने पर भी परस्पर घनिष्टता से घुल मिल न सके। इस खाई को भरने मे वे पूर्ण सफल न हो सके। यद्यपि श्री जवाहरलाल नेहरू ने अपने ग्रन्थ 'भारत की खोज' (Discovery of India) मे यह लिखा है कि बाहर से आये मुस्लिम आक्रमणकारी शीघ्र ही भारत मे विलीन हो गये। उनके राजवश सम्पूर्णत भारतीय हो गये। वे भारत को ही अपनी मातृ भूमि मानते और विश्व के अन्य भागो को विदेश मानते थे। (4) भारत के सभी आक्रमणकारियो में मुसलमान ही केवल ऐसे थे जिन्हें भारत के विरुद्ध धर्म युद्ध (जिहाद) घोषित किया। उनमें अपने धर्म प्रसार के लिये लगन और उत्साह था। वे धार्मिक उत्साह से परिपूर्ण थे और दूसरे लोगों को अपने धर्म की दीक्षा देने के निर्दिष्ट विचार से आये थे। दूसरो का धर्म-परिवर्तन करने की उनमे दृढ भावना थी, न कि दूसरो के धर्म मे विलुप्त हो जाने की। उनम अत्यधिक धार्मिक चेतना

थी। (5) अन्तिम यह कि, 1200 ई० से 1580 ई० तक भारत में मुस्लिम राज्य और समाज ने अपनी मूल भूत सैनिक और घुमक्कडता की विशेषताओं को बनाये रखा। उस काल में शासन करने वाली ये जाति देश में सशस्त्र समुदाय के समान रहती थी।

इतना सब कुछ होने पर भी हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म का जो संघर्ष हुआ, इतिहास में उसका विशेष महत्त्व है। दो विरोधी संस्कृतियों का सम्पर्क, सम्मिलन और सम्मिश्रण भारतीय इतिहास की शिक्षाप्रद घटना है। इन दोनों संस्कृतियों के संयोग और समन्वय के अनेक कारण थे, जिनका कुछ विस्तार से आगे विवेचन प्रस्तुत है।

मुस्लिम आक्रमणों के साथ साथ भारत में नवीन, विभिन्न और निर्दिष्ट सामाजिक तथा धार्मिक विचारों ने प्रवेश किया और इनका सम्पूर्ण एकीकरण असम्भव था। परन्तु जब कभी दो प्रकार की सभ्यताएँ और संस्कृतियाँ सदियों तक परस्पर सम्पर्क में आती हैं, तो वे एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार सुदीर्घकाल से संसर्ग, नवीन भारतीय मुसलमानों के समुदाय के विकास मुस्लिम तुर्क व अफगान व मुगल आक्रमणकारियों के भारत में बस जाने से हिन्दू स्त्रियों से उनके विवाह, हिन्दू और मुस्लिम सन्तों और उनके अनुयायियों के पारस्परिक सम्पर्क मुस्लिम शासकों द्वारा हिन्दू कलाकारों, शिल्पियों और साहित्यिकों के संरक्षण और इनके उदार आन्दोलनों के प्रभाव के कारण हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के विचार और प्रथाओं को अपनाकर उनका समीकरण करने वाले थे। इसके फलस्वरूप भारत में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

हिन्दू और इस्लामी संस्कृतियों के मिलन से सामाजिक, आर्थिक, कला और साहित्य के क्षेत्र में राष्ट्रीय प्रणालियों तथा शैलियों की स्थापना हुई। इसी के फल स्वरूप आधुनिक युग की भारतीय संस्कृति की आधारशिला रखी गई। वर्तमान में हमारी एक ऐसी संस्कृति है जो न हिन्दू है न मुस्लिम, केवल भारतीय है।

II हिन्दू समाज पर इस्लाम का प्रभाव
(Impact of Islam on Hindu Society)

'भ्रातृत्व भावना, धार्मिक भावना, आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास तथा भारतीय समाज का दो विभिन्न श्रेणियों में विभाजन आदि भारत को इस्लाम की ही देन है।"

—डॉ० के० एम० पणिक्कर

1 सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में प्रभाव—जब मुसलमान अरब तुर्क, अफगान, मुगल आदि भारत में आये तो अपने साथ रहन-सहन, वेश भूषा और शिष्टाचार के तरीके भी लाये। इन तरीकों का भारतीय जनता पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सका। हिन्दू समाज, अपने बीच में इस्लाम के आ जाने से निम्न-लिखित रूप से प्रभावित हुआ।

(i) रहन-सहन और वेश भूषा तथा शिष्टाचार पर प्रभाव—मुसलमान बादशाहों की तड़क भड़क वाली पोशाक देखकर भारतीय शासकों ने भी उसी ढंग की पोशाकें पहनना आरम्भ कर दिया। उनके दरबारी ढंग भी मुस्लिम सुल्तानों जैसे हो गये। दरबारों में नाच गानों का आयोजन भी मुस्लिम ढंग से ही होने लगा। अब हिन्दू शासक भी मुसलमानों की भांति विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे। मुस्लिम राजसभा का जो शिष्टाचार था और बैठक के लिये जो श्रेणियां थी, उनका अनुकरण हिन्दू नरेशों और सामन्तों ने किया।

हिन्दुओं की वेश भूषा तथा खान पान पर भी मुसलमानी प्रभाव पडा। अब *हिन्दू लोग भी मुसलमानों की तरह चुस्त रंगीन और भड़कीले वस्त्र* धारण करने लगे। उत्तरी भारत की स्त्रियों ने तो साड़ी के स्थान पर घाघरे का प्रयोग आरम्भ कर दिया। हिन्दुओं में जो मुगल शासन के उच्च पदों पर नियुक्त थे, मुसलमानी खान पान की नकल करने लगे। पुलाव, कबाब तथा कोफ्ता आदि उनके प्रिय व्यंजन हो गये। इनमें से अधिकतर हिन्दुओं ने तो मुसलमानों के आचार व्यवहार, सामाजिकता के ढंग तथा अभिवादन का तौर तरीका अपना लिया। इस सम्बन्ध में **श्री गौरीशंकर भट्ट** ने लिखा है कि "वेश भूषा में अचकन और पाजामा, अंग रागों में इत्र और सुरमा, हिन्दू व्यंजनों में मध्य एशिया के पुलाव एवं बिरियानी और मसालेदार व्यंजनों को बनाने की कला का हिन्दू संस्कृति में समावेश हुआ। तत्कालीन मनोरंजनों में शतरंज, चौगान और गंजीफा मुसलमानों के योगदान हैं।" *तीतर लड़ाना, कबूतर उड़ाना तथा पतंग उड़ाना* आदि भी मुसलमानों की तरह हिन्दुओं में प्रचलित हो गया।

(ii) सामाजिक समानता की भावना का विकास—इस्लाम द्वारा प्रतिपादित सामाजिक समानता के सिद्धान्त ने हिन्दुओं की निम्न जातियों को अत्यधिक प्रभावित किया। इसका कारण यह था कि इन जातियों के व्यक्तियों को उच्च जातियों के लोग घृणा की दृष्टि से देखते थे। डॉ० पी० एन० चोपडा के अनुसार, "इस्लाम ने जन्म और पतृकता के महत्त्व को कम कर दिया और इसके प्रभाव ने हिन्दू धर्म में सामाजिक समानता और भ्रातृत्व की भावनाओं को शक्तिशाली बना दिया।" डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव ने भी लिखा है कि हिन्दू समाज पर इस्लाम का यह प्रभाव पडा कि मुसलमानों के सामाजिक संगठन के कुछ जनवादी सिद्धान्तों को हिन्दुओं ने अपना लिया। हिन्दू सुधारकों तथा उपदेशकों ने सभी धर्मों की आधारभूत एकता और एक ही परमात्मा के विचार का प्रतिपादित किया। उन्होंने सभी जातियों की एकता पर बल दिया और बताया कि मोक्ष प्राप्त करने के लिए किसी विशेष जाति में जन्म लेने की आवश्यकता नहीं है।

(iii) रूढ़िवादिता में दृढ़ता—मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं को इस्लाम धर्म में दीक्षित करने के प्रयासों के कारण हिन्दुओं की रूढ़िवादिता और दृढ़ हो गई। ब्राह्मण

धर्म गुरुओं का विचार था कि मुसलमानों से धर्म और संस्कृति की रक्षा तभी की जा सकती है जब वे अधिक कट्टर बन जाएँ। इस हेतु हिन्दू समाज में जाति बन्धनों और आचार व्यवहार के नियमों को इतना कठोर बना दिया गया, जितने वे पहले कभी नहीं थे। इस काल में जाति प्रथा तथा नियमों सम्बन्धी अनेक स्मृतियों की रचना की गई। इसके फलस्वरूप जहाँ एक ओर हिन्दू धर्म और संस्कृति की रक्षा हो सकी, वहाँ दूसरी ओर हिन्दुओं में जो गतिशीलता तथा समन्वय की भावना थी, वह समाप्त हो गयी। दूसरे शब्दों में, हिन्दू समाज में प्रतिक्रियावादी तत्त्वों का समावेश हो गया।

(iv) आधुनिक भारतीय भाषाओं और साहित्य का विकास—इस्लाम के प्रभाव के कारण स्थानीय भाषाओं का विकास हुआ। अकबर के शासन काल की शांति और समृद्धि ने साहित्यिक प्रेरणा दी और सब प्रान्तों में प्रान्तीय साहित्य का विकास हुआ। इस काल में बंगला, मराठी, पंजाबी, सिन्धी और अवधी में अनेक उत्तम पुस्तकों की रचना हुई। मैथिली भाषा में विद्यापति के गीतों को, बंगला में चण्डीदास के गीतों को और राजस्थानी में मीरा के भजनों को साहित्य की अमूल्य कृतियाँ स्वीकार किया गया। भारतीय भाषाओं में अरबी और फारसी के अनेक शब्दों को स्थान दिया गया। डा० पी० एन० चोपड़ा के अनुसार, सन 1830 में मराठी भाषा में 35% शब्द फारसी के थे। डा० ताराचन्द के अनुसार पंजाबी और सिन्धी में फारसी शब्दों की संख्या और भी अधिक थी।

(v) इतिहास व जीवनी का लेखन—प्राचीन काल में हिन्दुओं ने शुद्ध इतिहास की पुस्तकें नहीं लिखीं। हमें संस्कृत में केवल चार जीवनियाँ मिलती हैं, पर इनमें तथ्यों को अलंकार और शैली से बहुत कम महत्त्व दिया गया है। इनमें तिथियों का कहीं भी उल्लेख नहीं है। इसके विपरीत अरब निवासियों को अपने कार्यों को लेखबद्ध करने में अत्यधिक रुचि थी। संसार में वे जहाँ भी गए, वहाँ से प्रायः सभी तथ्यों को तिथियों के अनुसार लिखकर सुरक्षित रखा। इनके भारत आगमन के बाद उनके इस कार्य का प्रभाव यहाँ के निवासियों पर भी पड़ा। फलस्वरूप इतिहास की अनेक पुस्तकों, जीवनियों और आत्मकथाओं की रचना हुई। मध्यकाल में बहुत से हिन्दू लेखकों ने भी इस प्रकार की पुस्तकों की रचना की। इसके परिणाम का उल्लेख करते हुए डॉ० यदुनाथ सरकार ने लिखा है, "हिन्दू लेखकों ने स्वाभाविक रूप से मुसलमानों का अनुकरण किया और इस प्रकार भारतीय साहित्य में एक नवीन और अत्यधिक उपयुक्त तत्त्व का समावेश हुआ।

(vi) ज्ञान का प्रसार—भारत में इस्लाम के आगमन से एक अति लाभ हुआ। हिन्दू अपने द्वारा लिखित ग्रन्थों को गुप्त रखना चाहते थे। इसके विपरीत मुसलमान अपनी पुस्तकों की अधिक से अधिक प्रतिलिपियाँ करके अधिक से अधिक शिक्षित व्यक्तियों को इनके द्वारा लाभान्वित करना चाहते थे।

मे कागज के आविष्कार ने सहायता दी। "अकबर जैसे शासकों के संरक्षण मे अनेकों प्राचीन भारतीय पुस्तकों का अनुवाद किया गया और उन्हे व रोक टोक जनता तक पहुँचाया गया, जिसके फलस्वरूप ज्ञान का प्रसार हुआ।"

(vii) उर्दू भाषा का जन्म—दिल्ली मुस्लिम शासन की स्थापना से पहले ही वहाँ एक नई भाषा का विकास हो गया, क्योंकि वहाँ विभिन्न भाषाओं को बोलने वाले व्यक्ति रहते थे। वहा बोली जाने वाली भाषा खड़ी बोली, ब्रज भाषा, राजस्थानी और हरियाणा की भाषा का मिश्रण थी। तुर्क शासन काल के प्रारम्भ मे उस भाषा म फारसी और पंजाबी के शब्द मिश्रित हो गय। इसके फलस्वरूप एक नई भाषा 'रेख्ता' (उर्दू) का जन्म हुआ। डा पी एन चौपडा का कथन है कि "हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों की पारस्परिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप 'रेख्ता' या उर्दू नामक एक नई भाषा का जन्म हुआ। यह भाषा वास्तव म हिन्दी थी, जो फारसी और अरबी शब्दों द्वारा मुहावरों को अपनाने से बहुत काफी बदल गई।"

(viii) बाह्य संसार से सम्पर्क—इस्लाम का एक अन्य प्रभाव था—भारत के बाह्य संसार से पुन सम्पर्क। प्रारम्भिक बौद्ध युग में भारत का एशिया के देशो से, विशेष रूप से चीन, मिश्र, रोम तथा यूनान से घनिष्ठ सम्बन्ध था। 480 ई मे गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद भारत का बाह्य संसार से सम्पर्क प्राय समाप्त हो गया। अरब व्यापारियों ने भारत आकर इस सम्पर्क को फिर स्थापित किया। पर इस सम्पर्क मे अन्तर था। कारण यह था कि बहुत कम हिन्दू और भारतीय मुस्लिम अन्य देशो मे व्यापार करने के लिए अपने देश से बाहर गये। इसके विपरीत बुखारा समरकन्द, बल्ख, खुरासान और फारस आदि से सकडो व्यापारी आते थे।

डॉ पी एन चौपडा ने लिखा है कि 17वी शताब्दी के प्रारम्भ म य व्यापारी प्रति वर्ष कम से कम 14,000 ऊँटो पर माल लादकर भारत से कन्धार को ले जाते थे। भडौच, सूरत, चाल गोवा आदि बन्दरगाहो से अरब, फारस, तुर्की, मिश्र, अबीसीनिया आदि देशो को भारतीय वस्तुयें निर्यात की जाती थी। मुगल शासको ने यूरोप के देशो के साथ व्यापार को प्रोत्साहित किया और वहाँ के व्यापारियों को भारत के तट पर अपनी फैक्ट्रियाँ स्थापित करने की अनुमति दी। इन सब बातो के फलस्वरूप भारत का सम्पर्क बाह्य संसार से फिर स्थापित हो गया। इस सम्बन्ध मे प्रो हुमायूँ कबीर के अनुसार, "इसके परिणामस्वरूप न केवल व्यापारिक सम्बन्ध ही स्थापित हुए, वरन् विचारो, रीति रिवाजो का आदान प्रदान भी हुआ तथा समकालीन स्थानीय विचारो की गति तीव्र हुई।"

(ix) विज्ञानो पर प्रभाव—मुसलमान कुछ विज्ञानो म हिन्दुओ से कही अधिक प्रगति कर चुके थे। अत इस्लाम का भारतीय विज्ञानो पर स्पष्ट और निश्चित प्रभाव पडा। उदाहरणार्थ—हिन्दुओ ने मुसलमानो से नजम (ज्योतिष

विज्ञान) मे गणना करने के लिए 'ताजिक' पद्धति का प्रयोग सीखा। उन्होंने 'तजाबा' का ज्ञान भी मुसलमानों से प्राप्त किया। देशान्तर और अक्षास रेखाए गिनने की पद्धति भी हिन्दुओ ने मुसलमानो से ही सीखी। रमल फेंककर सुगन विचारने की प्रथा अरबो के साथ ही भारत म आई। कागज बनाने की कला भी मुसलमानो क साथ भारत म आई। कलई करना, पत्थर, चादी और सोने पर मीनाकारी का काम कलाबूत, किमखाब, जिल्दसाजी आदि शिल्प कला भी भारत मे मुसलमान ही यहा लाय थ।

मुसलमानो ने भी हिन्दुओ से उन विज्ञानो का ज्ञान प्राप्त किया, जिनमें हिन्दू उनसे अधिक प्रगति कर चुके थे। इस सम्बन्ध म डॉ ताराचन्द ने लिखा है—"विज्ञान मे, हिन्दुओ ने गणित खगोल विद्या और औषधि शास्त्र की अत्यधिक विकसित प्रणालिया विरासत मे प्राप्त की थी और ज्ञान के इन क्षेत्रो मे उन्होंने अरबो को अपना ऋणी बनाया था।'

(x) मुस्लिम प्रशासन का प्रभाव—480 ई म गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद भारत अनेक छोटे छोटे राज्यो मे बट गया था। इस कारण एकात्मक (केन्द्रीय) प्रकार की सरकार असभव हो गई थी। इस्लाम के अनुयायी मुगलो के साम्राज्य के अन्तगत भारत को पुन एक प्रकार की राजनीतिक एकता प्राप्त हुई, जिसके परिणामस्वरूप प्रशासन का बहुत कुछ एकसा रूप सभव हो गया। उदाहरण के लिए, यद्यपि मुगलो की कर प्रणाली भारत की प्राचीन कर प्रणाली पर आधारित थी, पर राजकीय प्रबन्ध, उपाधिया और लेखा रखने की विधिया स्पष्ट रूप से फारस (ईरान) से मुस्लिम आक्रमणकारियो द्वारा लाई गई थी। यही बात जिला और प्रान्ता के प्रशासन क बारे मे भी है। हिन्दू राजाओ ने भी इन्ही विधियो का अनुसरण किया।

इस सम्बन्ध म डा जदुनाथ सरकार ने लिखा है, "अकबर के सिंहासनारूढ होने के समय से मुहम्मद शाह की मृत्यु तक (सन् 1556–1749 ई) 200 वर्षों के मुगल शासन ने सम्पूर्ण उत्तरी भारत को और अधिकाश दक्षिण को भी राजकीय भाषा, प्रशासन विधि और मुद्रा की एकता प्रदान की।" इस तरह राजनीतिक क्षेत्र म इस्लाम का प्रभाव विघटनकारी तत्वो को नष्ट कर एकता की ओर ल जाने वाला था। प्राचीन हिन्दू व्यवस्था मे अनेक दुर्बलताएँ थी। मुस्लिम शासन व्यवस्था ने इन दोषो को पर्याप्त मात्रा तक दूर किया और सुदृढ शासन की नीव डाली। वास्तव म, भारत मे राजनैतिक और प्रशासनिक एकता को जन्म देने का श्रेय इस्लाम को ही जाता है।

(xi) युद्ध प्रणाली पर प्रभाव—मुगल युद्ध प्रणाली ने सोलहवी सदी की भारतीय राजनीतिक स्थिति मे क्रान्ति उत्पन्न कर दी मध्य युग के प्रारम्भ में हिन्दू राजा छोटी छोटी सेनाओ को मिलाकर कभी कभी एक बडी सेना बना लेते थे।

पर यह बडी सना किसी एक प्रधान सेनापति की आज्ञा नही मानती थी। इसके विपरीत मुस्लिम शासकों के पास बडी बडी सेनाएँ थीं, जिनका एक ही प्रधान सेनापति होता था। इससे मुसलमान सेनापति को अपना रण चातुय प्रदर्शित करने के अधिक अवसर मिल जाते थ। तोपो क प्रयोग न एक नई युद्ध प्रणाली को जम दिया और हिदू राजाग्रा के रक्षात्मक युद्ध के तरीको मे क्रांति ला दी। इस तरह, मुसलमानो की युद्ध-नीति यहाँ की स्थानीय नीति से ग्रलग एव मौलिक थी। मुगला द्वारा तोपखाने का प्रयोग इस युग म, भारत म पहली बार किया गया था।

2 विभिन्न कलाग्रो के क्षेत्र मे इस्लाम का प्रभाव

(1) स्थापत्य कला पर प्रभाव—इस्लामी सभ्यता व सस्कृति का सबस महत्वपूर्ण प्रभाव भारतीय ललित कलाग्रो पर और विशेपकर स्थापत्य कला पर पडा। राजपूत राजाग्रो ने तत्परता से मुगल स्थापत्य कला के अगो को अपना लिया और उन्हें अपने महलो म स्थान दिया। हिदू मंदिर तक मुगल स्थापत्य कला के अगो से नही बच सके। कला ममन परसी ब्राउन के शब्दा म, "वृदावन के मन्दिरो म बहुत कुछ ग्रपना मौलिक है, लेकिन फिर भी उन पर मुसलमानो की प्रचलित स्थापत्य शली का प्रभाव स्पष्ट है।" हिदू राजाग्रो के इस काल म निर्मित महलो पर मुगल निर्माण शली का काफी प्रभाव पडा। ऐसी इमारतो म यह देख लेना कठिन नही है कि कसे प्रारम्भिक मुगलो की पत्थरी इमारतो म दाँतेदार महराब, काच के मौजेक, रगीन पलस्तर, हाल म गार चून की पृष्ठ भूमि जोडकर उन्हें हिदू राजाग्रो की अधिक रगीली आवश्यकता के अनुकूल बना लिया गया है।

(11) चित्रकला पर प्रभाव—मुगलो की चित्रकला शैली ने हिदू चित्रकला के विषयो, तकनीक और विविध अगो को प्रभावित किया। मुस्लिम चित्रकला न हमारे देश की चित्रकला को पर्याप्त रूप से प्रभावित करके, अनेक नये मोड उपस्थित किये। इसके परिणामस्वरूप भारतीय चित्रकारा ने आकृति चित्रण और भित्ति चित्रो को अकित करने की कला म श्रेष्ठतम प्रतिभा प्रदर्शित की।

(111) उद्यान कला पर प्रभाव—उद्यान कला के विकास मे भी मुसलमाना ने पर्याप्त योग दिया। "मुगलो न मध्ययुगीन भारतीय उद्यान कला को भी सवारा। उन्हाने ग्रपने बाग बगीचो मे जामीतीकि (जामेट्री) के सुदर डिजाइनो के निकुज और मण्डप बनवाये। इन्हे आमतौर से ढलवा सतह पर आठ भागा मे बाट दिया जाता था। इनमे नहरों, चौपडो या सरोवरा और छोटे निझरा के रूप म सिचाई की व्यवस्था की जाती थी और उन्हे ऐसा बनाया जाता था कि इनका पानी दोनों ओर के भाग की सतह तक लबालब भरा रह।" इस उद्यान व्यवस्था को भारत के सभी भागो मे ग्रपना लिया गया। इसस सौदय की अनुभूति और विकसित हा उठी तथा लोगो में बाग-बगीचो का शौक बढ गया।

(iv) सगीत कला पर प्रभाव—सूफियो की साधना मे सगीत की अति महत्ता है। कहा जाता है कि 'खयाल' की ईजाद का श्रेय जौनपुर के नवाब

मुलतान हुमायूँशाह को है, और सम्भवत कव्वाली भी इसी समन्वय का परिणाम है। संगीत म आविष्कारों के क्षेत्र म अमीर खुसरो का नाम अधिक प्रसिद्ध एव महत्वपूर्ण है। उसने भारतीय 'वीणा' और ईरानी 'तम्बूरे' के सम्मिश्रण स 'सितार' का आविष्कार किया। उसन भारतीय 'मृदग' को 'तबने' का रूप दिया। वाद्य यन्त्रो क अतिरिक्त उसन राग रागनियो का भी आविष्कार किया। सूफी सन्तो के प्रभाव के कारण सगीत हिन्दू और मुसलमान दोनो म अति लोकप्रिय हो गया। मुगल सम्राटो ने भी संगीत को राज्याश्रय देकर प्रोत्साहित किया था। अकबर के शासन काल म दक्षिणी और हिन्दुस्तानी (उत्तर भारतीय) सगीत एक-दूसरे के समीप आ गये। मुस्लिम सगीतकारो के सम्पर्क से भारतीय संगीत म गजल, ठुमरी, कव्वाली, तराना, खयाल बड गुजरी आदि रागो का विशेष चलन हुआ।

3 धर्म के क्षेत्र मे इस्लाम का प्रभाव

डा ताराचद ने लिखा है कि इस्लाम ने हिन्दू धर्म म भी आश्चर्यजनक परिवर्तन किये। इस्लाम के प्रमुख सिद्धात हैं—एकेश्वरवाद म विश्वास, मानव की समानता, जाति प्रथा तथा मूर्ति पूजा का विरोध। शकराचार्य, रामानन्द, कबीर आदि हिन्दू विचारक और धर्म सुधारक इन सिद्धातो से अत्यधिक प्रभावित हुए। शकराचार्य न एकेश्वरवाद की शिक्षा दी। रामानन्द न मानव समानता के विचार को अपनाकर सभी जातियो के मनुष्यो को अपने शिष्यो म स्थान दिया। कबीर ने मूर्तिपूजा का खण्डन किया। प्रो बी एन लूणिया का मत है कि धार्मिक क्षेत्र म इस्लाम के प्रभाव से निर्गुण ईश्वर के प्रति पुन श्रद्धा जाग्रत हो गयी। पर यह सब हिन्दू धर्म के लिए ऐसा था मानो सुरा को एक पात्र से दूसरे पात्र म बदल दिया गया हो। हिन्दू धर्म के नेताओ ने इस्लाम की तरह हिन्दू धर्म का अधिक सजीव, सरल, भावुक व आकर्षक करने के लिए उसकी बाहरी रूपरेखा म परिवर्तन कर दिया। साराश म, इस्लाम स प्रभावित होकर हिन्दू समाज सुधारको ने जाति-प्रथा, मूर्ति-पूजा, कर्म काण्ड और धार्मिक आडम्बर का विरोध किया। सूफीवाद स प्रभावित होकर अनेक हिन्दुओ ने मुसलमान पीरो और फकीरो की उपासना प्रारम्भ कर दी और आज भी करते हैं।

निष्कर्ष—हिन्दू समाज पर इस्लाम के आगमन से उपयुक्त वर्णित विभिन्न सुप्रभाव पडे, जो अपना विशेष महत्व रखते हैं। परन्तु, कुछ हिन्दू लेखको ने हिन्दू समाज म प्रचलित कुप्रथाओ के चालू होने का दोष मुसलमानो के आगमन व उनके प्रभाव स जोडा है। उनके अनुसार, हिन्दुओ म शिशु हत्या की प्रथा विस्तृत रूप स फल गयी और हिन्दू समाज मे पर्दा प्रथा भी विस्तृत रूप म प्रचलित हो गयी। मुसलमानो द्वारा कन्याओ का बलात अपहरण होने स बाल विवाह उस युग की सवमान्य प्रथा हो गयी थी। हिन्दू स्त्रियो म मुसलमानो से अपने धर्म और सतीत्व की रक्षा करने हेतु सती प्रथा देशव्यापी हो गयी। मुसलमानो के आने के कारण

भारतीय सामाजिक जीवन मे दासता की अवाछनीय प्रथा घर कर गयी थी। दास रखना उस युग की सवमान्य प्रथा थी।" परन्तु यह तथ्य विचारणीय है कि इस्लाम शिशु हत्या, बाल विवाह, सती प्रथा आदि का प्रबल विरोधी रहा है, उसने तो विधवा विवाह को धार्मिक मान्यता दी है। अस्तु, भारत म इस्लाम के आगमन से पहले ही प्रचलित कुरीतियो के लिए उसे दोषी ठहराना न्यायोचित नही है। साराश मे, इस्लाम का भारतीय धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र मे उल्लेखनीय प्रभाव पडा।

III मुस्लिम समाज पर हिन्दुत्व का प्रभाव

जहा इस्लाम धम न भारत म हिन्दू धम व समाज को अनेक दिशाओ म प्रभावित किया, वहा इस्लाम और मुस्लिम समाज भी हिन्दू धम और सस्कृति के प्रभाव से मुक्त नही रह सका। डा० ए० एल० श्रीवास्तव के शब्दो म, "मुसलमान लोग भी हिन्दुओ के सामाजिक सगठन सभ्यता और सस्कृति से अत्यधिक प्रभावित हुए।' मुस्लिम समाज मे, आज भी ऐसी अनेक प्रथाएँ है जो प्रत्यक्ष रूप से हिन्दू प्रथाओं या परम्पराओ का परिवतन मात्र दिखाई देती हैं।

भारतीय मुसलमानो पर हिन्दुत्व के प्रभाव के कारण—वस्तुत मुस्लिम समाज पर हिन्दुत्व अथवा हिन्दू सभ्यता व सस्कृति का प्रभाव पडने के अनेक कारण हैं। श्री गौरीशकर भट्ट के अनुसार "भारत म एक बडी सीमा तक इस्लाम ने हिन्दू प्रथाओ और मान्यताओ को आत्मसात किया। इस हिन्दूकरण के मुख्य माध्यम रहे है— मध्य युग के वे मुसलमान जो भारत म जन्मे थे, जिन्होने इस्लाम धम को स्वीकार कर लिया था और जिनके लिये 'हिन्दुस्तानी मुसलमान' की उपेक्षापूर्ण सज्ञा का प्रयोग किया जाता था। वे भारतीय मुसलमान, जो मूलत हिन्दू थे, अपना मौलिक दृष्टिकोण, जीवन दशन और सामाजिक स्तर लेकर इस्लाम मे प्रविष्ट हुये।' इस कारण, वे अपने साथ जिन प्रथाओ और परम्पराओ को लाये थे, वे तत्कालीन भारतीय मुसलमानी जीवन का अग बन गयी।

प्रो० बी० एन० लूनिया ने एक अन्य कारण के सम्बन्ध म लिखा है कि, मध्य युग म अनेक सुल्तानो और मुगल शासको ने हिन्दू राजकुमारियो से विवाह किये थे, जिसका परिणाम यह निकला कि उनका प्रभाव किसी न किसी रूप म शासको पर पडा तथा उन्हे अपनी रानियो का मान रखने के लिये धार्मिक कट्टरता की नीति म भी परिवतन करना पडा। प्रो० लूनिया के शब्दो म, 'मुस्लिम विजेताओ ने हिन्दू नारियो, रानियो और राजकुमारियो से विवाह किये। इन हिन्दू स्त्रियो ने अपने अधीन गृहो म हिन्दू प्रथाओ का प्रस्तावित किया जिससे मुसलमान प्रभावित हुये। मुसलमानो के अन्त पुरो म हिन्दू महिलाओ का प्रभाव उन तत्वो म से एक था जिन्होने इस्लाम और हिन्दू धम का समन्वय कराया। भारतीय भ्रातृत्व की परम्परागत भक्ति, श्रद्धा, सहृदयता और दयालुता ने तुर्कों और मगोल खानाबदोशो की बबरता व क्रूरता को कम कर दिया था।" इस प्रकार हिन्दू स्त्रियो के सम्पक

न मुस्लिम शासकों को उदार बना दिया था तथा अनेक हिंदू रीति रिवाजों को शाही महलों में प्रचलित किया।

डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव ने भी लिखा है कि जो हिन्दू मुसलमान बन गये थे, वे अपनी हिन्दू परम्पराओं को नहीं भुला सके। उनके द्वारा फकीरों और दरगाहों की पूजा किया जाना, हिन्दू देवी देवताओं की उपासना का दूसरा रूप था। मुसलमानी त्योहार भी भारत के हिंदुओं के समान ठाठ-बाट से मनाये जाने लगे।

उपरोक्त कारणों से मुसलमान लोग भी हिन्दुओं के सामाजिक संगठन, सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित हुये थे। हिन्दू धर्म, सभ्यता व संस्कृति के प्रभाव के कारण ही भारत के मुसलमान संसार के अन्य मुसलमानों से अनेक बातों में भिन्नता रखते हैं।

1 धार्मिक क्षेत्र में प्रभाव —मुसलमान हिन्दुओं के धार्मिक विचारों और रीति रिवाजों से भी बहुत कुछ प्रभावित हुये। हिंदुओं के अन्धविश्वास और परम्पराओं का प्रभाव मुसलमानों पर भी पड़ा। हिंदुओं के समान मुसलमान भी अपनी इच्छा पूर्ति के लिये पीरों, फकीरों व साधुओं के पास जाने लगे। श्री गौरीशंकर भट्ट ने लिखा है कि, मुसलमानों के त्यौहारों, रीति रिवाजों, विचारों, विश्वासों और धार्मिक जादुई अनुष्ठानों में हिंदुत्व के प्रभाव के अनेक प्रमाण उपस्थित हो गये। पीरों की कल्पना और उनमें विश्वास, दरगाह में मजारों के सामने माथा टेकना, हर हर महादेव की तरह या अली का नारा लगाना, सगुन विचारना, विधवा की अपेक्षा सधवा या सुहागिन को शुभ मानना, हिन्दुओं के ही अनुरूप मृत व्यक्तियों के नाम पर तीजा (भोज) और खरात का आयोजन करना आदि स्पष्ट हिन्दू संस्कृति के प्रभाव के कारण है।

डा० के० एम० अशरफ के अनुसार हिन्दुओं के 'शिवरात्रि' त्यौहार का अनुकरण मुसलमानों ने 'शब ए बरात' नामक त्योहार के रूप में किया। इस विषय में डा० यूसुफ हुसन ने भी लिखा है "नये वातावरण में मुसलमानों की प्रथाओं में भी परिवर्तन किये गये। कुछ नये त्यौहार व उत्सव, जैसे शबे बरात सारे देश में मनायी जाने लगी। बहुत सम्भव है कि यह उत्सव हिंदुओं के 'शिवरात्रि' के उत्सव की नकल थी। आतिशबाजी का प्रचलन दोनों में समान रूप से है। इसी प्रकार मुहर्रम के महीने में 'ताजियेदारी' ने (करबला के शहीदों की समाधियों के छोटे आकार) एक औपचारिक रूप धारण कर लिया। उनमें हिंदुओं की जगन्नाथ की गाडी' और 'श्रीकृष्ण लीला' के उत्सव में एक आश्चर्यजनक साम्य पाया जाता है। अन्य किसी भी मुस्लिम देश में ताजिये नहीं पाये जाते।' यह सत्य है कि इस्लाम धर्म मूर्ति पूजा का विरोधी था और आज भी है, लेकिन हिन्दुओं के सम्पर्क के कारण भारतीय मुसलमान लोग विभिन्न देवी देवताओं की पूजा करने लगे। बंगाल में

'सत्य नारायण की कथा' के अनुकरण के आधार पर ही 'सत्य पीर' की पूजा की जाने लगी। डा० सत्यकेतु विद्यालंकार के अनुसार, 'बंगाल के मुसलमान काली, धर्मराज वैद्यनाथ, आदि अनेक देवी देवताओं की पूजा करते थे। भारत के लोगों में प्रकृति के विविध शक्तियों का देवी देवता के रूप में देखने की परम्परा थी। वे नदी, पर्वत आदि के अधिष्ठाता देवताओं की कल्पना कर उनकी पूजा करते थे। भारतीय मुसलमानों पर भी भारत की इस परम्परा का प्रभाव पड़ा और मुसलमानों ने ख्वाजाखिज्र के रूप में नदियों के अधिष्ठाता देवता की और 'जिन्दा गाजी' के रूप में सिंहवाहिनी देवी के प्रमी देवता की कल्पना कर डाली। भारत के मुसलमान पीरों के मजारों की पूजा करने के लिए भी प्रवृत्त हुए।" वर्तमान में भी देश के कुछ भागों में पीरों के मजारों की पूजा मुसलमान लोग बड़ी श्रद्धा से करते हैं। उस के अवसर पर हिन्दुओं की तरह वहां नृत्य और गायन (कव्वाली) का आयोजन बड़े उत्साह से किया जाता है।

धार्मिक क्षेत्र में हिन्दू धार्मिक विचारधारा का प्रभाव इस्लाम के सूफीवाद पर भी पड़ा। अधिकांश विद्वान इस बात में सहमत हैं कि सूफीवाद पर वेदांत दर्शन की स्पष्ट छाप पड़ी है। रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत से प्रभावित होकर ईश्वर (अल्लाह) को प्राप्त करने के लिए सूफी फकीर प्रेम साधना पर बल देने लगे। सूफियों द्वारा स्वच्छता, पवित्रता तथा सत्य पर अत्यधिक बल देना, हिन्दू धर्म के सम्पर्क का ही परिणाम है। इतिहासकार गिब्र के मतानुसार, 'भारत के सूफी, इस्लाम के उतने निकट नहीं है, जितने कि हिन्दू धर्म के।' डॉ० वहीद मिर्जा ने भी लिखा है— 'कलंदरों और फकीरों जैसे साधु संन्यासियों की बड़ी संख्या में होने का सब मिलाकर यह प्रभाव हुआ कि सरल शुद्ध इस्लाम, जिसमें बाह्य धार्मिक कर्त्तव्यों पर बल दिया जाता था, अब बदलकर एक मिश्रित-सा भक्ति सम्प्रदाय बन गया जिसमें चमत्कार और अन्ध विश्वास संत पूजा से समन्वित होकर अधिक महत्त्वपूर्ण हो गये। अब यही साधारण सी प्रथा हो गई थी कि मुसलमान लोग अपना एक आध्यात्मिक गुरु बना लेते थे और ऐसी जन आस्था थी कि केवल वही इस लोक और परलोक में सुखी और सम्पन्न जीवन का वरदान दे सकता है।'

उपर्युक्त बातों के बावजूद कुछ विद्वानों का मत है इस्लाम और उसके मौलिक सिद्धांतों पर हिन्दू धर्म का कोई विशेष उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ा। डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव ने लिखा है कि "मुसलमानों के धार्मिक विचारधारा और रीति रिवाजों पर हिन्दू धर्म का सीमित सा प्रभाव पड़ा था।" डॉ० जदुनाथ सरकार का भी यही मत है। उनके अनुसार, हिन्दू धर्म इस्लाम के निकट रहने के पश्चात भी उसे अधिक प्रभावित नहीं कर सका। उनके शब्दों में " इस्लाम कट्टर एकेश्वरवादी धर्म है। बहुदेववाद के साथ इसका किसी प्रकार मेल नहीं हो सकता। यद्यपि हिन्दू और मुसलमानों को एक ही देश में साथ साथ रहना पड़ा, तथापि ये हिन्दुओं

म घुल मिलकर कभी नही रह सके। धार्मिक भेद भाव की यह खाई किसी प्रकार भी नही पाटी जा सकी। भारत के मुसलमानो के हृदय म भारत के बाहर (इस्लाम के उदगम स्थान) का सम्मान हटा नही। अब भी उनके मुँह मक्का की ओर ही नमाज के लिये मुडते है।' वे आगे स्पष्ट करते हुये लिखते है "हिन्दुओ ने मुसलमानो को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये 'अल्लोपनिषद' की रचना की तथा सम्राट अकबर को अपना अवतार तक मानने को प्रस्तुत हो गये, परन्तु मुसलमान इस धार्मिक उदारता के बदले म तनिक नही झुके और (मूर्ति पूजक) हिन्दुओ को 'काफिर' कहते रहे।"

2 सामाजिक क्षेत्र मे प्रभाव—धर्म के क्षेत्र मे हिन्दू धर्म ने चाहे इस्लाम को अधिक प्रभावित नही किया, परन्तु सामाजिक क्षेत्र म हमे अनेक प्रभावशाली परिणाम दृष्टिगोचर होते है। डा० ए० एल० श्री वास्तव के अनुसार, मुसलमान लोग भी हिन्दुओ के सामाजिक सगठन, सभ्यता व संस्कृति से काफी प्रभावित हुये। मुसलमानो मे 'अकीका' और 'बिसमिल्लाह' के उत्सव हिन्दुओ के 'मुण्डन' और 'विद्यारम्भ' के संस्कारो जैसे मनाये जाने लगे। हिन्दू विवाह संस्कारो से मुसलमानो ने वधु शृगार की प्रथा को अपनाया। 'हफ्त ओ नह' हिन्दू वधु के सोलह शृगार का दूसरा नाम है। मुसलमानो ने हिन्दुओ के कुछ कीमती वस्त्रा जैसे पाग और चीर आदि को पहनना शुरू कर दिया था। यहा तक कि मुसलमान सुल्तान और बादशाह भी हिन्दू राजा के समान 'छत्र' और अन्य राजकीय चिह्नो का प्रयोग करने लगे। यद्यपि इस्लाम हार, अगूठी और कानो के आभूषण पहिनने की अनुमति नही देता है, पर मुसलमानो ने उनको पहिनना प्रारम्भ कर दिया।

इब्न ए बतूता के अनुसार, पान का चबाना भी मुसलमानो ने हिन्दुओ से सीखा है। उन्होने हिन्दू पकवानो, मिठाइयो और मिर्च मसालेदार भोजन को अपना लिया। भारत के निर्मित महीन सूती वस्त्र, रेशमी वस्त्र, आदि का प्रयोग अब उच्च वर्ग के मुसलमान करने लगे।

अन्तिम यह कि, हिन्दू जाति-व्यवस्था भी जनवादी मुस्लिम समाज को प्रभावित किय बिना न रही। हिन्दुओ की जाति प्रथा स प्रभावित होकर मुसलमान दिल्ली सल्तनत काल के प्रारम्भिक दिनो मे ही तुर्की, पठान, सय्यद और शेख आदि म बट गय और अपने ही वर्ग मे विवाह करने लगे, क्योकि इनम से कुछ अपने को अन्य वर्गों से श्रेष्ठ समझते थे। आगे चलकर ये लोग "अपने से नीची जाति या चारा धात अथवा कामो से बाहर, यहाँ तक कि अपनी निजी कौम से बाहर, विवाह सम्बन्ध करने की बात नही सोच सकते थे।" व्यवसाय के आधार पर मुसलमानो म अनेक जातियो ने जन्म लिया। ये जातियां परस्पर विवाह सम्बन्ध नही करती।

3 कला के क्षेत्र मे प्रभाव—अकबर के समय से मुसलमानो ने हिन्दू चित्र कला को अपना लिया। हिन्दू सगीत और कुछ अन्य ललित कलायें भी मुसलमानों

ने सीखी। कुछ मुस्लिम विद्वान योग और वेदान्त के अध्ययन की ओर भी आकर्षित हुये, और कुछ ने हिन्दू औषधि शास्त्र और ज्योतिष का भी अध्ययन किया।

निष्कर्ष—उपरोक्त वर्णन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि इस्लाम ने हिन्दू जीवन के सभी अंगों को प्रभावित किया और स्वयं भी हिन्दुओं के धार्मिक और सामाजिक संगठन से प्रभावित हुआ। अतः भारतीय सभ्यता व संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव एक समन्वयवादी दृष्टिकोण से परिलक्षित होता है। टीटस के मतानुसार "हिन्दू धर्म ने जो कि अभी भी सुस्थिर मार्ग पर आश्चर्यजनक सन्तोष और विश्वास से बढ़ता जाता है भारतीय मुसलमानों पर अपने ऊपर इस्लाम के प्रभाव की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभाव डाला।"

IV मध्ययुगीन सांस्कृतिक समन्वय
(Medieval Cultural Synthesis)

'शायद ही कभी मानव जाति के इतिहास में हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों जैसी दो गहन, शक्तिशाली पर मौलिक भिन्नता रखने वाली संस्कृतियों के आपस में घुल मिल जाने का ऐसा चमत्कार दिखायी दिया हो। इनके पारस्परिक भेदों तथा विशाल सांस्कृतिक व धार्मिक भिन्नताओं ने अपने प्रभाव से इतिहास को ही शिक्षाप्रद बना दिया।

—सरजान मार्शल

मध्यकाल के प्रारम्भ में अर्थात् तुर्क अफगान युग में हिन्दू और मुस्लिम ऐसे दो वर्ग थे जिनमें शासक और शासित का सम्बन्ध था। पर जब दो विभिन्न धर्मों व संस्कृतियों के लोग दीर्घकाल तक एक साथ निवास करते हैं तो उन पर एक-दूसरे का प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी हो जाता है। जब मुस्लिम विजेता अरब, तुर्क, अफगान व मुगल आदि स्थायी रूप से भारत में आबाद हो गये तो स्वाभाविक रूप से वे भारत के योगियों संतों, धर्माचार्यों, विद्वानों और शिल्पियों के सम्पर्क में आये, और वे उनसे प्रभावित हुये बिना नहीं रह सके। इसी प्रकार इस्लाम के रूप में जो नया धार्मिक आन्दोलन इस देश में प्रविष्ट हुआ था, उसमें अपूर्व जीवन शक्ति थी। वह भी इस देश के पुराने धर्म को प्रभावित किये बिना नहीं रहा। हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों के इस सम्पर्क ने जो परिणाम उत्पन्न किये। उनका भारत के इतिहास में बहुत अधिक महत्त्व है। इसी से भारत की वह आधुनिक संस्कृति प्रादुर्भूत हुई, जिस पर अनेक अंशों में मुस्लिम धर्म व संस्कृति का प्रभाव विद्यमान है।

परस्पर सामंजस्य, सहयोग और सहिष्णुता की भावना का विकास—हिन्दुओं और मुसलमानों के मूलभूत मतभेदों के होने पर भी आक्रमण और विप्लव की अशान्ति के नीचे कालान्तर में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पारस्परिक सामंजस्य और सहिष्णुता की सुखद धारा प्रवाहित होने लगी थी। क
पर हिन्दुओं और मुसलमानों ने युद्ध और ~ ि त हो जाने
को

समझ लिया था व धीरे धीरे दोना समुदायो मे सामजस्य और सहयोग की भावना प्रकट हो रही थी। व परस्पर एक दूसरे को जानने और समझने की चेष्टा भी करने लगे। "फलत हिन्दू धम, हिन्दू कला, हिन्दू साहित्य और हिन्दू विज्ञान ने मुस्लिम तत्वा को अपनाया ही नही अपितु हिन्द सस्कृति की भावना और हिन्द मनीषा की प्ररणा म भी परिवतन हो गया। इसी प्रकार मुसलमानो ने भी जीवन के हर क्षेत्र के प्रति उन्मुग होकर खुले हृदय से आदान प्रदान किया। हिन्दुओ के धार्मिक नताओ और सन्तो ने हिन्दू मुस्लिम विचारो क सम वय का सफल प्रयास किया तो मुसलमानो के सूफी सम्प्रदाय तथा उनके लेखका व कविया ने भी हिन्दू सिद्धान्ता व परम्पराओ को ग्रहण किया।"

धार्मिक क्षेत्र मे—पारस्परिक सहिष्णुता की भावना की अभिव्यक्ति मुसलमानो के सन्तों के प्रति, विशेषकर रहस्यवादी आध्यात्मिक सन्तो के लिए, हिन्दुओ की बढती हुई श्रद्धा और भक्ति म हुई थी और इसी प्रकार मुसलमान भी हिन्दुओ के साधु-सन्तो के प्रति ऐसी ही श्रद्धा और भक्ति की भावना रखने लगे। हिन्दुओ ने उदारतापूवक मुस्लिम पीरो और उनके मजारो का पूजा आरम्भ किया। मुस्लिम पीरा की कब्रो पर हिन्दू मिठाइया चढाते और कुरान के पाठ का श्रवण करते। व कुरान को एक देववाणी के समान मानने लगे, जीवन म बुरे प्रभावो और अपशकुना से बचने के लिए अपने घरो में कुरान की प्रतिया रखने लगे तथा भ्रातत्व प्रदर्शित करने के लिए मुसलमाना को भोजन कराने लगे। अजमेर के शेखमुईनुद्दीन चिश्ती के भक्ता मे बहुसख्यक हिन्दू भी थे। इसी भाति मुसलमान भी हिन्दू धम की ओर झुके। मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी होने पर भी बगाल मे मुसलमाना ने हिन्दुओ की शीतला, काली और धमराज, वैद्यनाथ आदि अन्य देवी देवताओ की पूजा को अपना लिया। सामजस्य, सहिष्णुता, सहयोग और समीक्षा की भावनाओ के इन परिणामो के साथ-साथ सत्य पीर नामक देवता का प्रादुर्भाव हुआ जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनो मानते थे। गौड (बगाल) नरेश हुसनशाह को इसका सस्थापक माना जाता है। इस प्रकार हिन्दू धम और इस्लाम की पारस्परिक प्रतिक्रिया से कई विचित्र समन्वयकारी सम्प्रदाया और क्रियाओ का उदय हुआ।

प्रो० बी० एन० लूनिया के मतानुसार, सामजस्य, सम्मिश्रण और समीप्य की मगलकारिणी भावनाओ का प्रभाव इस्लाम पर भी कम न हुआ। उसमे कोमलता और सरसता आ गई। उसके भारतीय स्वरूप मे खूब परिवतन हुआ और सूफी सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दू और मुसलमान दोना ही, सूफी सम्प्रदाय के सतो को मानने लगे। उनकी समाधिया (मजार) इन दोना सम्प्रदाया के लिये तीथ स्थान बन गयी। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह अजमर म है जहाँ उस के मेले पर लाखा हिन्दू और मुसलमान आज भी आते हैं। तेरहवी सदी में निजामुद्दीन औलिया (दिल्ली) और सोलहवी सदी मे शेख सलीम चिश्ती सूफी सम्प्रदाय के अन्य प्रसिद्ध

सन्त थे। सन्तों के अन्य सम्प्रदाय सुहरावर्दी और कादरी थे। इन सफी सम्प्रदायों का प्रभाव यह हुआ कि इस्लाम ने अपने भारतीय वातावरण में सन्त पूजा को ग्रहण कर लिया। हिन्दू मुसलमानों में परस्पर मेल और सामीप्य तथा सहिष्णुता की भावनाओं का अन्य परिणाम यह हुआ कि सत्यपीर सत्तानामी, नारायणी आदि ऐसे पन्थों का प्रादुर्भाव हुआ जिनके अनुयायी हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे और जो परस्पर दोनों में कोई भेदभाव नहीं मानते थे। कालान्तर में मुसलमानों में पन्थी साहित्य का विकास भी हुआ।

सम्मेलन, सामजस्य, सहिष्णुता और सहकारिता एवं पारस्परिक प्रेम की भावनाओं की अभिव्यक्ति उच्च कुलीन मुसलमानों के बढ़ते हुए प्रयत्नों से हुई जो उन्होंने हिन्दू वातावरण में रहने पर हिन्दू प्रथाओं को अंगीकार करने के लिए किये थे। इन दोनों समुदायों के शासकीय वर्ग के सदस्यों में हुए परस्पर अन्तर्जातीय विवाहों से इन सामजस्यों को सहायता प्रदान की। इन दोनों समुदायों के बीच तीव्र मतभेद को कम करने का अधिक प्रयास किया गया एवं एक दूसरे की प्रथाओं को अपनाने में सहयोग दिया गया।

राजनीतिक क्षेत्र में भी सामजस्य और सहयोग की यह भावना दृष्टिगोचर हुई। स्थानीय शासन की हिन्दू प्रणाली को स्थिर रखने के अतिरिक्त मुस्लिम राज्य ने कभी-कभी बहुसंख्यक हिन्दुओं को सेना में नियुक्त किया। जो शासन की विभिन्न शाखाओं में प्रभावशाली हो गये। उदाहरण के लिए, चन्देरी के मेदनीराय और उसके मित्र मालवा में माण्डू के सुल्तान के यहां उच्च पदों पर थे। बंगाल में हुसैन शाह ने पुरन्दर, रूप और सनातन जैसे हिन्दुओं को उच्च पदों पर नियुक्त किया था। गोलकुण्डा और बीजापुर के सुल्तानों ने कतिपय हिन्दुओं को अपना मन्त्री बनाया। यही नहीं, मुस्लिम शासकों और नरेशों द्वारा, विशेषकर सबों (प्रान्तों) में हिन्दू मन्दिर और समाधियों को अनेक प्रकार के अनुदान दिये जाते थे। बोधि-गया के महन्त की जागीरदारी का प्रमुख भाग मुहम्मद शाह का अनुदान था। काश्मीर का सुल्तान प्रायः अमरनाथ और शारदादेवी के मन्दिर में दर्शनार्थ जाता था और यात्रियों की सुख-सुविधा के हेतु उसने वहां विश्राम स्थल बनवाये थे। मुसलमानों के प्रति राजपूतों की उदारता और वीरता के उदाहरण भी प्रचुर हैं। रणथम्भौर में राणा हम्मीर ने यह जानते हुए भी कि अलाउद्दीन सुल्तान की क्रोधाग्नि भड़क उठेगी, सुल्तान के विद्रोही सरदार मुहम्मद शाह व उसके साथियों को आश्रय दिया। राणा संग्रामसिंह 'के पास मुगल बादशाह बाबर से युद्ध करते समय अनेक मुस्लिम शासक महमूद लोदी, हसनखां मेवाती आदि दल-बल सहित थे। इसी तरह दक्खिन में विजयनगर के हिन्दू सम्राट भी अपनी सैनिक सेवा में मुसलमानों को नियुक्त करते थे और उन्होंने अपनी राजधानी और उसके बाहर इस्लाम को संरक्षण दिया।" ये राजनीतिक नियुक्तियां सम्भवतः सद्भावना की अपेक्षा राजनीतिक

आवश्यकता के कारण हुई थी। परन्तु, निस्सन्देह इन्होंने हिन्दू और मुसलमानों के बीच सहृदयता और बन्धुत्व की वृद्धि का मार्ग सुलभ कर दिया।

इस प्रसंग में यह ध्यान रखना चाहिए कि दिल्ली की तुर्क अफगान सल्तनत के क्षेत्र में हिन्दू मुस्लिम संस्कृतियों को एक दूसरे के निकट में आने का वैसा अवसर नहीं मिला, जैसाकि गुजरात, मालवा जौनपुर, दौलताबाद और बंगाल के मुस्लिम राज्यों में मिला। इन प्रान्तीय सल्तनतों के शासन में हिन्दू कर्मचारियों का बड़ा भाग था, और इनके सुल्तान व अन्य अमीर सरदार हिन्दुओं के बहुत निकट सम्पर्क में थे। इसी कारण अहमदाबाद, माण्डू, लखनौती, काश्मीर आदि में हिन्दू और मुसलमान संस्कृतियों को एक दूसरे को प्रभावित करने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ था। इसी के फलस्वरूप साहित्य और ललित कलाओं के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण समन्वय और उन्नति हुई।

हिन्दू व मुस्लिम कला का समन्वय

वर्तमान काल में हमारी स्थापत्य, संगीत और चित्रकला का जो रूप दिखाई देता है उस पर हिन्दू मुस्लिम संस्कृतियों के समन्वय की स्पष्ट छाप है।

वास्तुकला एवं स्थापत्य कला भारत में जब मुस्लिम शासक इमारतें बनाने लगे तो यह काम मुस्लिम इंजीनियरों को सौंपा गया जो केवल मुस्लिम जगत की निर्माण विधि और रचना कौशल से परिचित थे। परन्तु इन इमारतों को चुनने वाले सब कारीगर भारतीय थे। ये लोग भारतीय परम्पराओं में पले हुए थे और भारतीय नमूनों पर इनका हाथ जमा हुआ था। दोनों के सम्पर्क से स्थापत्य कला के क्षेत्र में एक नई और मिश्रित शैली का उदय हुआ।

हिन्दू और मुस्लिम सम्पर्क की सबसे प्रत्यक्ष व स्थूल रूप वह वास्तुकला है जिसका इस युग में विकास हुआ और जिसे इतिहासकारों ने 'इण्डो मुस्लिम' कला नाम दिया है। डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव के मतानुसार इस्लामी वास्तुकला की मुख्य विशेषतायें चार थीं—(1) गुम्बद (2) ऊँची ऊँची मीनारें, (3) मेहराब और (4) मेहराबों की डाटदार छतें। जबकि भारतीय शैली की मुख्य विशेषतायें थीं—(1) पटी हुई छतें, (2) आगे निकले हुए ब्रेकेट (3) शिखर (4) घोड़ियों पर आधारित मेहराब (5) छोटे छज्जे और (6) छोटे-छोटे गोल और चौकोर खम्भे। सजावट की प्रधानता के कारण हिन्दू कला मुस्लिम कला की शैली को प्रभावित करती रही। मुसलमानों ने हिन्दू भवनों की मजबूती और उनकी सुन्दरता को ग्रहण किया। मुसलमान अपनी इमारतों में कंक्रीट और चूने का बहुत अधिकता से उपयोग करते थे और इसलिए वे चौड़े और खुले भागों को मेहराबों और गुम्बजों से जोड़कर इमारतों में वह सुन्दरता और विशालता ले आते थे जिससे हिन्दू कारीगर अनभिज्ञ थे। दोनों शैलियों के सम्मिलन से एक नयी स्थापत्य कला ने जन्म लिया जिसे कि 'हिन्दू मुस्लिम कला' कहा जा सकता है। सल्तनत युग में

इस मिली जुली वास्तुकला का विकसित रूप प्रान्तीय सल्तनतों की इमारतों में बहुत अधिक देखने को मिलता है। मुगल सम्राट अकबर के समय से बनने वाली इमारतों में से अधिकांश इस मिली जुली शैली की प्रतीक कही जा सकती हैं। मुगलों की स्थापत्य कला को राजपूत राजाओं ने बहुत जल्दी अपना लिया। हिन्दू मन्दिर भी इस कला के प्रभाव से अछूते न रहे। पर्सी ब्राउन का मत है कि वृन्दावन के मन्दिरों की इमारतों में मुसलमानों की प्रचलित शैली का प्रभाव अधिक स्पष्ट है। अहमदाबाद की इमारतों में 'तीन दरवाजा' और 'जामा मस्जिद' श्रेष्ठ हैं, जो सल्तनत काल की इण्डो मुस्लिम वास्तुकला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

चित्रकला—अफगान युग में भारतीय चित्रकला की उस शैली का विकास हुआ जिसे "राजस्थानी शैली" कहते हैं। इसका विकास राजपूताना और गुजरात के प्रदेशों में पन्द्रहवीं सदी में हुआ था। गुजरात का प्रसिद्ध सुल्तान महमूद बेगड़ा (1451–1511) कला का संरक्षक व कलावन्तों का आश्रयदाता था। उसके संरक्षण में मिली जुली चित्रकला की—राजस्थानी शैली की अच्छी उन्नति हुई। मुगल सम्राट अकबर के दरबार में मुसलमानी ईरानी शैली का सम्पर्क भारतीय चित्रकला शैली से हुआ। ईरानी और भारतीय चित्रकला शैलियाँ धीरे धीरे मिलकर एक हो गयीं। इस नवीन शैली में विदेशी शैली एकदम मिलकर पूर्णरूप से भारतीय हो गई। यही मिश्रित शैली 'मुगल चित्रकला' शैली के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस शैली ने राजपूत चित्रकला शैली को भी पूर्णतः बदल दिया और कांगड़ा शैली इस परिवर्तन का परिणाम थी।

संगीत कला—संगीत के क्षेत्र में भी हिन्दुओं और मुसलमानों के सम्पर्क ने अनेक महत्त्वपूर्ण परिणाम उत्पन्न किये। भारत के मुसलमानों ने कव्वाली और खयाल के रूप में मकबरों में व धार्मिक उत्सवों पर संगीत का प्रारम्भ किया। संगीत की ये शैलियाँ भारत के लिए नई थीं, पर बाद में भारतीय संगीताचार्यों ने इन्हें पूरी तरह से अपना लिया, और ये भारतीय संगीत के महत्त्वपूर्ण अंग बन गये। संगीत के क्षेत्र में हिन्दू मुस्लिम शैलियों के समन्वय में अमीर खुसरो का विशेष योग दान रहा। महान मुगल सम्राटों (सिवाय औरंगजेब) को संगीत एवं नृत्य में रुचि रही जिसके परिणामस्वरूप संगीत के क्षेत्र में समन्वय के काम को बहुत प्रोत्साहन मिला। अकबर का दरबार संगीत कला का भी प्रसिद्ध केन्द्र था। डॉ० आशीर्वादी लाल का मत है कि अकबर के दरबार में हिन्दू और मुस्लिम संगीत पद्धतियों का मुक्त रूप से सम्मिलन हुआ और अन्त में दोनों ही एक दूसरे से इतनी घुल मिल गयीं कि उनका अलग अलग पहचानना कठिन हो गया।

भाषा और साहित्य के क्षेत्र में समन्वय व उन्नति

कतिपय मुस्लिम सुल्तान व उनके दरबारी साहित्य में अधिक रुचि रखते थे और उनके राज्याश्रय में उच्चकोटि का साहित्य तैयार हुआ। अमीर खुसरो,

मीर हसन दहलवी, ग्रहमद थानेसरी, बद्र-ए-चच, ग्रमीउलमुल्क मुल्तानी दिल्ली के सुलतानो के युग म साहित्यिक नभ मण्डल क ददीप्यमान नक्षत्र थे। मुहम्मद तुगलक की राज्य सभा कवियो, तर्क शास्त्रज्ञो, दार्शनिको और वक्ता से सुशोभित थी। इसी प्रकार प्रख्यात कवि और लेखक प्रान्तीय राजवशो की राजसभाग्रो मे रहते थे जिसके सरक्षण म प्रचुर साहित्य का प्रादुर्भाव हुग्रा। जौनपुर ग्ररबी विद्वत्ता, इस्लाम दशन के ग्रध्ययन और साहित्य का केन्द्र था और वहाँ का नरेश इब्राहीम शाह शर्की विद्वानो का उदार ग्राश्रयदाता था। उसके शासन काल म ग्रनेक साहित्यिक व दार्शनिक ग्रन्थो का सम्पादन हुग्रा। चौदहवी शताब्दी म फीरोज तुगलक ने दशन शास्त्र, ज्योतिष ग्रादि भारतीय ग्र थो का फारसी मे ग्रनुवाद करवाया। लोदी वश के सुलतान सिक दर के शासनकाल मे सस्कृत, ग्रायुर्वेद ग्र थो का ग्रनुवाद फारसी में किया गया। मुगल सम्राट ग्रकबर के काल मे ग्रनेकानेक सस्कृत ग्र थो, रामायण, महाभारत ग्रादि का फारसी मे ग्रनुवाद करवाया गया।

मध्ययुग के साहित्यिक क्षेत्र म समन्वय को उल्लेखनीय सफलता हुई। उर्दू भाषा का समुदय ग्रौर विकास था। सस्कृत मे उत्पन्न हुई विचारधाराग्रो ग्रौर भाषाग्रो के साथ तुर्की, फारसी और ग्ररबी शब्दो ग्रौर विचारों के सम्मिश्रण से उर्दू भाषा का प्रादुर्भाव हुग्रा। इसमे ग्ररबी, फारसी, तुर्की, पश्चिमी हिन्दी एव दिल्ली प्रदेश की स्थानीय भाषा के शब्द हैं। वास्तव मे यह भाषा हिन्दुग्रो ग्रौर मुसलमानो के साहित्यिक समन्वय का परिणाम थी। ग्रमीर खुसरो ने सव प्रथम इस भाषा में रचना की। कालान्तर म मुस्लिम नरेशो की राजसभाग्रो के कवियो, लेखको ग्रौर इतिहास वेत्ताग्रो ने इसके साहित्यिक रूप को निखारा ग्रौर उत्तर भारत म ग्रठारहवी शताब्दी मे यह एक ग्रच्छी साहित्यिक भाषा हो गई जिसके विकास मे हिन्दू ग्रौर मुसलमान लेखको का योगदान था। इसके माध्यम से हिन्दू ग्रौर मुसलमान एक दूसरे के बहुत समीप ग्राते गये ग्रौर उनके मध्य का भेद भाव बहुत कुछ दूर हो गया।

निष्कर्ष—इस प्रकार हम देखते हैं कि राजनीतिक सम्बन्धो मे विद्वेष होने पर भी हिन्दू ग्रौर मुस्लिम सस्कृतियो के हेल मेल से सुदूर तक प्रभावित करने वाले परिणाम हुए। मुस्लिम विजेता ग्रपने साथ निर्दिष्ट सामाजिक ग्रौर धार्मिक विचार लाये थे जो हिन्दुग्रो के विचारो से मौलिक रूप मे भिन्न थे। परन्तु सुदीर्घकाल के सम्पर्क मे हिन्दुग्रो ग्रौर मुसलमानो के दो विभिन्न समुदाय परस्पर ग्रधिक समीप ग्रा गये जिनके परिणामस्वरूप हिन्दू सस्कृति का विकास इस्लामी रग से रजित हो गया। परन्तु हिन्दू सस्कृति भी मुसलमानी तत्त्वों को प्रभावित किये बिना न रही। "वास्तव मे हिन्दू ग्रौर मुसलमान दोनो ने ही सास्कृतिक देन के विकास म ग्रपना ग्रपना योग दिया है। मध्य युग म दो विभिन्न सस्कृतियो का परस्पर ससर्ग ग्रौर हेल मेल हुग्रा, परन्तु उनका पूर्ण समन्वय नहीं हुग्रा। वे एक दूसरे मे पूर्णतया

नहीं घुल मिल गयी। प्रथम इन दोना संस्कृतियों में संघर्ष हुआ और तब समन्वय, परन्तु यह पूर्ण रूपेण न था।"

हिन्दू धर्म पर इस्लाम की प्रतिक्रिया विविध रूप से हुई। हिन्दू समाज के अनुसार सनातनी तत्वों ने विस्तृत कठोर और अपरिवर्तनशील जाति नियमों को बनाकर अपनी सामाजिक और धार्मिक प्रणालियों को दृढ़ कर लिया। परन्तु उदार तत्वों ने इस्लाम के कतिपय लोकतन्त्रीय सिद्धांतों को अंगीकार कर लिया। ये सिद्धांत रामानन्द, कबीर, नानक, दादू और चैतन्य जैसे सन्तों के उपदेशों और मतों में अभिव्यक्त हुए। बंगाल में वैष्णव धर्म और महाराष्ट्र में नवीन सम्प्रदाय का विकास हिन्दू धर्म व इस्लाम के सम्पर्क की देन मानी जाती है। इस संसर्ग की दूसरी देन सहयोग, सहिष्णुता और सामंजस्य की भावना है जिसकी अभिव्यक्ति सूफी संतों के विचारों और मुस्लिम संतों के प्रति हिन्दुओं की श्रद्धा हुई थी। सूफी मत का आधार हिन्दू विचारधाराओं से अत्यधिक प्रभावित हुआ। इस सम्पर्क का अन्य महत्वशील प्रयास प्रादेशिक भाषाओं और उर्दू के विकास में दृष्टिगोचर होता है। वैष्णवों की कविता हिन्दू धर्म और इस्लाम के समन्वय का सर्वोत्कृष्ट विलक्षण उदाहरण है। कला के क्षेत्र में, हिन्दू और मुस्लिम तत्वों के समन्वय से भवन निर्माण कला की एक नवीन शैली का विकास हुआ।

V हिन्दी साहित्य में मुस्लिम कवियों का योगदान

डॉ ए एल श्रीवास्तव ने लिखा है, 'सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में उच्चकोटि के साहित्य का निर्माण हुआ। अकबर से पूर्व हिन्दी में उच्चकोटि के ग्रन्थों का निर्माण होना शुरू हो चुका था, जिनमें 'पदमावत' और 'मृगावत' उल्लेखनीय हैं। अकबर का शासन हिन्दी कविता का स्वर्ण युग था।" इस युग में हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों ने हिन्दी में कविताएँ लिखीं। उच्चकोटि के हिन्दी मुस्लिम कवियों में अमीर खुसरो, मलिक मोहम्मद जायसी, रसखान, अब्दुर रहीम खानखाना तथा उसमान का नाम उल्लेखनीय है।

1 अमीर खुसरो [1253-1325 ई]

अमीर खुसरो हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के एक प्रधान प्रतिनिधि, एक महान कवि तथा एक सच्चे राष्ट्रवादी सूफी संत थे। 'वह अपने समय के श्रेष्ठ इतिहासकार, संगीतज्ञ और कवि थे। इन सभी रूपों में उसने जो कार्य किया वह भारत के इतिहास में सदैव अमर रहेगा। डॉ यूसुफ हुसैन ने ठीक ही लिखा है— 'मध्य काल का महान कवि साहित्यकार और रहस्यवादी अमीर खुसरू भारतीय मुस्लिम संस्कृति के सब प्रमुख प्रतिनिधियों में से एक था।" यह पहला मुसलमान कवि था जिसने हिन्दी में उत्कृष्ट कविताएँ लिखी।

डॉ माताबदल जायसवाल ने लिखा है कि, यद्यपि अमीर खुसरो की महत्ता उनके फारसी काव्य पर आश्रित है, परन्तु उनकी लोकप्रियता का कारण उसकी

हिन्दी रचनायें हैं। हिन्दी में काव्य रचना करने वालों में खुसरो का नाम सर्व प्रमुख है। अरबी फारसी के साथ साथ अमीर खुसरो को अपने हिन्दी ज्ञान पर भी गर्व था। "अमीर खुसरो के नाम से हिन्दी में पहेलियां, मुकरियां, दो सखुने और कुछ गजलें प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त उनका फारसी हिन्दी कोष 'खालिकबारी' भी इस प्रसंग में उल्लेखनीय है।

इतिहासकार इलियट के अनुसार अमीर खुसरो अपनी कविता 'आशिक' में हिन्दी भाषा की प्रशंसा करता और वर्णन तथा अलंकार में इसके गुणों का उल्लेख करता है। अरबी, फारसी और हिन्दी की तुलना करते हुए खुसरो कहता है—"आपको हिन्दी भाषा के शब्द फारसी से निम्नतर नहीं मिलेंगे। पर हिन्दी अरबी से निम्नतर है। हिन्दी अरबी से इस बात में समान है कि दोनों में से किसी में मिश्रण सम्भव नहीं है। यदि अरबी में व्याकरण और शब्द योजना है, जो हिन्दी में किसी प्रकार कम नहीं है।"

डा. यूसुफ हुसैन के अनुसार, खुसरो ने अपनी रचनाओं में हिन्दी का प्रयोग किया है। कभी कभी वह अपनी फारसी की कविताओं में हिन्दी शब्दों का प्रयोग इस प्रकार करता है कि कवितायें अत्यधिक प्रभावपूर्ण हो जाती हैं। उसने स्पष्ट रूप से लिखा है कि उसने हिन्दी कवितायें लिखी हैं। ऐसा जान पड़ता है कि उसे अपने भारतीय होने और हिन्दी में कवितायें लिखने पर गर्व था। उसका कहना था—"मैं भारतीय तुर्क हूँ और तुम्हें हिन्दी में उत्तर दे सकता हूँ। अरबी का बखान करने के लिये मेरे पास मिश्री शक्कर नहीं है क्योंकि मैं भारत का तोता हूँ, इसलिए मुझसे हिन्दी में बात चीत करो ताकि मधुरतापूर्वक बोल सकूँ।" प्रायः सम्पूर्ण मध्यकाल में खुसरो की हिन्दी कविताओं का उल्लेख किया गया है।

पिंगल साहित्य में प्रारम्भिक नाम अमीर खुसरो का आता है, जिसमें खड़ी बोली का प्रयोग मिलता है। पिंगल साहित्य भी उसी के कारण फारसी भाषा के समान उच्च स्थान पा सका।

डा. रामधारीसिंह दिनकर ने लिखा है कि, 'दिल्ली के आस पास प्रचलित खड़ी बोली में साहित्य सर्जन का काम सबसे पहले, खुसरो ने आरम्भ किया था। अमीर खुसरो ने प्रचलित जन भाषा में रचना करके हिन्दी और उर्दू के भविष्य की राह खोल दी। अतएव वे खड़ी बोली हिन्दी और उर्दू दोनों ही भाषाओं के पिता हुए।

प्रसिद्ध उर्दू शायर मीरतकी 'मीर' ने लिखा है कि मध्यकाल में अमीर खुसरो के हिन्दी गीत जन साधारण में अत्यन्त लोकप्रिय थे। उन्होंने फारसी और हिन्दी में मिश्रित वाक्यों द्वारा अपने काव्य का सर्जन किया और बाद में पूर्ण हिन्दी शब्दों का प्रयोग किया। उनके काव्य की स्पष्टता का अग्रलिखित उदाहरण विशेष उल्लेखनीय है—

खुसरो रन सुहाग की, जागी पीवा संग ।
तन मेरो मन पीउ को, दोउ भये एक रंग ॥

कहा जाता है कि खुसरो ने अपने आध्यात्मिक गुरु और विख्यात सूफी संत हजरत निजामुद्दीन औलिया की मत्यु के उपरान्त उनकी कब्र पर निम्नलिखित दर्द भरी कविता कही थी—

"गोरी सोये सेज पर, मुख पर डाले केश,
चल खुसरो घर आपने, रन भई चहुँ देश ।"

डॉ० ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में, "भारत का तोता, अमीर खुसरो, कवियों का सम्राट था ।" उसकी कवितायें हृदय और मस्तिष्क में हलचल मचा देने वाली हैं । उसकी काल्पनिक उड़ान, भाषा पर अधिकार, विषयों की विभिन्नता, आश्चर्यजनक सौंदर्य, मानव भावनाओं का वर्णन, प्रेम और युद्ध के दृश्य इतने अद्वितीय हैं कि वे उसको सब समय के सर्वश्रेष्ठ कवियों में अमर स्थान प्रदान करते हैं । कवि होने के अतिरिक्त वह गद्य का लेखक भी था । अस्तु, "खुसरो को पद्यात्मक गद्य का महान् कलाकार घोषित करना पड़ेगा ।" सारांश में, अमीर खुसरो ने पिंगल साहित्य को विकसित किया तथा हिंदी खड़ी बोली का शिलान्यास किया ।

2 मलिक मोहम्मद जायसी [1475-1542 ई०]

सूफी प्रेम काव्यधारा के सबसे प्रमुख कवि जायसी हैं । अवध में जायस नगर नामक स्थान से सम्बन्धित होने के कारण 'जायसी' कहलाये । जायसी एक किसान गृहस्थ के रूप में जायस में रहते थे । वह आरम्भ से बड़े ईश्वर भक्त और साधु प्रकृति के थे । इनका स्वभाव नम्र एवं साधुवत था तथा इनमें दानशीलता एवं एकान्तप्रियता के गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थे । इनका अमेठी राज्य के दरबार में एक उच्चकोटि के फकीर के रूप में प्रतिष्ठा पाना भी प्रसिद्ध है ।

जायसी की रचनायें विशेष महत्त्व—जायसी मध्ययुगीन साहित्य की परम्परा के प्रवर्तक थे । उनकी प्रमुख रचनायें निम्नलिखित हैं (1) पद्मावत, (2) अखरावट, (3) आखरी कलाम, (4) महरी बाईसी, (5) चित्रावत, और (6) मोस्तीनामा । इनके अतिरिक्त 'मसदा', 'मुकहरानामा', 'चम्पावत', 'सुखरावत', 'लहरावत', आदि रचनाएँ भी जायसी की बतलायी जाती हैं, किंतु इनके विषय में कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिले हैं । डॉ० परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में कहा जा सकता है कि, "जायसी का वास्तविक महत्त्व उनके द्वारा प्रेम तत्त्व के व्यापक रूप का सफल चित्रण करने में ही देखा जा सकता है । उन्होंने इसे भारतीय जीवन की पृष्ठभूमि पर बड़े मार्मिक ढंग से प्रकित किया है तथा ऐसा करते समय उन्होंने अल्हड़ अवधि को सशक्त एवं समृद्ध बना दिया है, जिसके लिए हम उनके चिरऋणी रहेंगे ।"

पदमावत साहित्यिक महत्व—'पदमावत' प्रसिद्ध मसनवी (प्रेम-काव्य), जायसी की प्रौढ़ रचना है और निश्चय ही प्रौढ़ अवस्था में लिखी गई होगी। पद्मावत की कथा का प्रमुख आधार इतिहास है। इसकी मूलकथा पद्मावती और रत्नसेन का प्रेम विवाह है। चित्तौड़ के राजा रत्नसेन ने सिंहल-द्वीप की राजकुमारी पद्मावती के अपूर्व सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर उससे विवाह किया था। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने पदमावती की सुन्दरता पर मुग्ध होकर उसे प्राप्त करने के उद्देश्य से चित्तौड़ पर आक्रमण किया था, परन्तु उसे दो बार मुँह की खानी पड़ी। वह छल-पूर्वक राजा रत्नसेन को बाँध ले जाता है। परन्तु रानी पदमिनी एक छल करके उसे छुड़ा मंगा लेती है। अन्त में, युद्ध होता है जिसमें राजा रत्नसेन मारा जाता है। परन्तु, पद्मिनी जौहर कर लेती है और अलाउद्दीन हाथ मलता ही रह जाता है।

डॉ० के० एस० लाल ने अपने शोध प्रबन्ध में, इस रत्नसेन, पद्मावती और अलाउद्दीन की कथा व युद्ध की घटनाओं को पूर्णतया काल्पनिक कथा स्वीकार किया है। वस्तुतः इस ग्रन्थ का पूर्वार्द्ध पूर्णतः काल्पनिक तथा उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक है।

पदमावत एक उत्कृष्ट प्रेम काव्य है जिसे जायसी की रचनाओं में सदा सर्वोच्च स्थान दिया जाता है तथा कदाचित् अन्य सूफी प्रेम काव्यों में यह सर्वश्रेष्ठ है। परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में, 'इसमें सन्देह नहीं कि केवल अपने 'पद्मावत' नाम के प्रेमाख्यान के कारण ही, वे श्रेष्ठ कवि कहे जाते हैं। उनके समय तक इस प्रकार के काव्य साहित्य का पूर्ण विकास नहीं हो पाया था और इसके आदर्श केवल इने गिने ही थे। जायसी ने इस रचना शैली की नवीन धारा को अपनाकर बहुत बड़ी सफलता दिखलाई और एक ऐसी सुन्दर कृति प्रस्तुत की जो आगे के लिये नमूना बन गयी।" जायसी निःसन्देह हिन्दी के सूफी कवियों के शिरोमणि हैं, वे अवधि भाषा के महाकवि हैं। पदमावत में तत्कालीन अवधि का रूप सुरक्षित है।

3 रसखान [1548 ई० जन्म]

कृष्ण भक्त कवियों में रसखान की बड़ी प्रतिष्ठा है। रसखान मुसलमान होते हुए भी वैष्णव भाव में तल्लीन रहे। सुलभ सामग्रियों के आधार पर कवि का असली नाम सैयद इब्राहीम था। यह दिल्ली के पठान सरदार थे। दूसरा नाम रसखान तो काव्य रचना प्रारम्भ करने पर प्रचलित हुआ। रसखान का जन्मकाल 1548 ई० के लगभग माना जाता है। इनके जीवन के सम्बन्ध में बहुत किंवदंतियाँ प्रसिद्ध हैं। किंवदन्ती है कि रसखान का प्रेम पहले लौकिक था। कृष्ण की चर्चा सुनकर उन्होंने सच्चे प्रेम का महत्व समझा और दिल्ली छोड़कर वे वृन्दावन और गोकुल की गलियों में घूमते रहे। स्वामी विट्ठलनाथ ने इन पर कृपा की। रसखान उच्चवंशीय पठान सरदार थे किन्तु भगवत भक्ति में इन्होंने अपने जीवन के समस्त वैभव को

परित्याग कर दिया था। "व मुसलमान परिवार के होकर भी मुसलमान न थे। और हिन्दू देवता की पूजा अर्चना करके भी हिन्दू न थे। किसी जाति या धर्म विशेष को न अपनाकर उन्होंने उस भक्ति-जाति और प्रेम धर्म को अपनाया जो विश्व व्यापी, सार्वभौम और चिरंतन सत्य है। इसलिए रसखान की भक्ति सरस तथा सात्त्विक है।" वस्तुतः रसखान प्रेम की ऊँची दशा को पहुँचे थे, जहाँ सीमित बंधनों से ऊपर उठकर सौन्दर्य व आनन्द के असीम रस राज्य में आत्मा विचरण करने लगती है।

रसखान की रचनायें—रसखान की प्रमुख रचनायें— 'प्रेम वाटिका' तथा 'सुजान रसखान' और 'राग रत्नाकर' हैं। 'प्रेम वाटिका' में दोहों का अधिक प्रयोग किया है। परन्तु 'सुजान रसखान' नामक रचना में सवैयों का अधिक प्रयोग किया है।

रसखान की भक्ति गोपियों की सी भक्ति थी। वे कृष्ण के प्रेम की प्राप्ति चाहते थे। उनकी रचनाओं की बस एक चाह है—एक ही आकांक्षा है, वह है कृष्ण का सामीप्य प्राप्त करना। कृष्ण उनके प्रिय हैं और व उनके प्रेमी। 'रसखान के रूप, सौन्दर्य चित्रण में जो सौन्दर्य तन्मयता, सजीवता और प्रकृतिमता है वह अन्यत्र नहीं है। रसखान की भाषा ब्रज है।

रसखान ने अपनी कृति 'सुजान रसखान' में कृष्ण के बचपन का चित्रण किया है। वे कृष्ण और राधा के यमुना तट पर मिलन का वर्णन करते हैं जब दोनों एक-दूसरे की गोद में बेसुध हो जाते हैं और प्रेमी तथा प्रेमिका एक हो जाते हैं। वे कृष्ण के बचपन के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं, जो अत्यधिक स्वाभाविक है। डा विनयमोहन शर्मा ने लिखा है 'इनकी रचनाओं में प्रेम का अत्यन्त मनोहारी वर्णन हुआ है। यह कवि अपने प्रेम की तन्मयता, भाव विह्वलता और आसक्ति के उल्लास के लिये उतना प्रसिद्ध है, जितना अपनी भाषा की मार्मिकता, शब्द-चयन तथा व्यंजन शैली के लिये रसखान ने अपनी रस सिक्त रचनाओं से अपना नाम सार्थक कर दिया है।"

4 अब्दुर्रहीम खानखाना [1556-1626]

अकबरी दरबार के हिन्दी कवियों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह उच्च कोटि के कवि और विद्वान थे। समस्त समकालीन कवियों से उनका सम्पर्क था। वह स्वयं भी कवियों के आश्रयदाता थे। केशव आसकरण मण्डन, नरहरि, गंग जैसे कवियों ने इनकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। अपनी उदारता के कारण जीवन के अंतिम दिनों में यह निर्धन हो बन चुके थे।

इनका जन्म सन 1556 ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम बैरमखाँ था जो सम्राट अकबर के अभिभावक थे। जब रहीम केवल 5 वर्ष की आयु के थे तब गुजरात के पाटन नगर में उनके पिता की हत्या कर दी गई। तभी से उनका पालन पोषण अकबर ने स्वयं अपनी देखरेख में कराया। इनकी कार्यक्षमता से

प्रभावित होकर अकबर ने इनको 1572 ई० म पाटन नगर की जागीर प्रदान की। अपनी कार्यक्षमता, योग्यता तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण रहीम निरंतर उन्नति करते रहे। 1584 ई० मे इन्हे 'खानखाना' की राजकीय उपाधि तथा पाच हजारी मसब देकर अकबर ने सम्मानित किया। वह दक्षिण के सूबेदार भी रहे। 1626 ई० म 70 वर्ष की अवस्था मे उनकी मृत्यु हुई।

रहीम की रचनाएँ—समीक्षा—रहीम की कुल मिलाकर 13 रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। "इनके प्राय 300 दोहे 'दोहावली' नाम से सगहीत हैं। दोहे मे ही रचित इनकी एक स्वतन्त्र कृति 'नगर शोभा' है। इसमे विभिन्न जातियो की स्त्रियो का शृगारिक वर्णन है।' इन रचनाओ के अतिरिक्त उनकी अन्य रचनायें—'बरवै-नायिका भेद', 'शृगार सोरठ', 'रहीमसतसई', 'मदनाष्टक', 'रहीम रत्नावली', 'रहीम विलास' 'रास पचाध्यायी' आदि है।

रहीम की कल्पना शक्ति महान थी जिसकी छाया इनकी कविताओ मे मिलती है। सरस्वति का निवास रहीम की वाणी मे था। इनके दोहे सरल भाषा मे हैं जो महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी फारसी कविताएँ भी उच्चकोटि की हैं।

डा रामचन्द्र तिवारी के शब्दो मे कहा जा सकता है कि 'रहीम के काव्य के मुख्य विषय शृगार, नीति और भक्ति है। इनकी विष्णु और गगा सबधी भक्ति-भावमयी रचनाएँ वैष्णव भक्ति आन्दोलन से प्रभावित होकर लिखी गयी हैं। नीति और शृगार परक रचनाएँ दरबारी वातावरण के अनुकूल हैं। रहीम की ख्याति इन्ही रचनाओ के कारण है। बिहारी और मतिराम जैसे समर्थ कवियो ने भी रहीम की शृगारिक उक्तियो से प्रभाव ग्रहण किया है। व्यास, वृन्द और रसनिधि आदि नीति विषयक दोहे रहीम से प्रभावित होकर लिखे गये हैं। रहीमका ब्रज और कवियो के अवधी दोनो पर समान अधिकार था।' साराश मे रहीम का काव्य उनके सहज उद्गारो की अभिव्यक्ति है। इन उद्गारो म इनका दीर्घकालीन अनुभव निहित है। वे सच्चे और सवेदनशील हृदय के व्यक्ति थे। जीवन मे आने वाली कटु मधुर परिस्थितियो ने इनके हृदय पट पर जो बहु विधि अनुभूति की रेखाएँ अकित कर दी थी, उन्ही के अकृत्रिम अकन म इनके काव्य की रमणीयता का रहस्य निहित है।

5 उसमान

जायसी की भाति उसमान कवि भी प्रेम के चित्रण मे अधिक सफल हुये हैं। यह गाजीपुर के निवासी थे। इनके पिता का नाम शेख हुसैन था। ये मुगल सम्राट जहाँगीर के समकालीन थे।

उसमान ने 'चित्रावली' नामक प्रसिद्ध काव्य की रचना की। चित्रावली म जायसी का अत्यधिक अनुकरण किया गया है। अन्तर इतना ही है कि उसकी कहानी सर्वथा काल्पनिक है और जायसी की कुछ ऐतिहासिक है। उसमान ने 'चित्रावली' म सुजान कुमार की प्रेम गाथा लिखी है जो कवलावती और चित्रावली नामक राजकुमारियो से विवाह करने म समर्थ होते हैं। इस काव्य म बीजापुर नगर

की विस्तृत वर्णन है। कविता के एक भाग म जा जोगी खण्ड कहलाता है, उसमें काबुल, खुरासान, गुजरात, लका, बदख्शा तथा भारत का भी वर्णन है। उसमान की रचना तत्कालीन सामाजिक जीवन पर भी प्रकाश डालती है। कवि के लिखन का ढग भावपक्ष तथा मधुर है। उन्होंने जहागीर की न्यायप्रियता, उसके दरबार म आने वाले विदेशियो आदि का भी वर्णन किया है। श्री रामपूजन तिवारी के शब्दों में कहा जा सकता है कि, "कवि की दृष्टि से हिन्दी के सूफी कवियो म जायसी क के बाद उसमान को ही स्थान दिया जा सकता है। चित्रावली' मे पद पद पर कवि की काव्य प्रतिभा वाग्वैदग्ध्य और रचना कौशल का परिचय मिलता है।"

निष्कर्ष—यह केवल प्रेम का ही स्वरूप नहीं था कि मुसलमान कवियो ने हिन्दी मे रचनाएँ की और अपनी योग्यता का परिचय दिया। यथार्थ म, यह स्पष्ट करता है कि हिन्दू व मुसलमानो मे घनिष्ठ प्रेम सम्बन्ध था। यदि सौन्दर्य वर्णन म एक तरफ महाकवि तुलसीदास व सूरदास हैं, तो दूसरी तरफ रहीम रसखान तथा आलम' कवि भी हैं, जिन्होंने हिन्दी कविता और साहित्य को समुन्नत किया है।

□□□

7

भक्ति आन्दोलन

[The Bhakti Movement]

I भक्ति आन्दोलन उदय के कारण
II भक्ति आन्दोलन की विशेषतायें और प्रभाव
III भक्ति आन्दोलन के प्रवर्त्तक सन्त

I भक्ति आन्दोलन उदय के कारण

"मध्यकालीन सांस्कृतिक समन्वय की एक महत्त्वपूर्ण देन भक्ति आन्दोलन है।"

—प्रो० बी० एन० लूनिया

डा० ए० एल० श्रीवास्तव ने लिखा है कि "दिल्ली सुल्तानों के काल (1206–1526 ई०) में कई हिन्दू सन्तों और सुधारकों ने धर्म सुधार के आन्दोलन का सूत्रपात किया। इस आन्दोलन ने भक्ति पर जोर दिया। इसलिए इसे भक्ति आन्दोलन कहा गया।" भक्ति मार्गीय साधना के उद्भव एवं विकास को इतिहासकारों ने आन्दोलन या धर्म-सुधार की संज्ञा दी है।

उत्पत्ति और विकास—भारतवर्ष में भक्ति के विचारों की उत्पत्ति के लिए विभिन्न मत व्यक्त किए हैं। डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव का मत है कि यह आन्दोलन पूर्णतया नवीन न था और इसकी प्रगति का श्रेय इस्लाम को नहीं था। इस आन्दोलन का इतिहास महान धर्म सुधारक शंकराचार्य के समय से प्रारम्भ होता है जिन्होंने हिन्दू धर्म को एक ठोस दार्शनिक भूमि प्रदान की थी। सेनार्ट का भी मत है कि भारत में भक्ति की जड़ें बहुत गहरी हैं। वेदों के देव गीत अगाध भक्ति से भरे हुए हैं। हिन्दू और प्राचीन आर्य भी देवताओं के सामने भक्ति से नत मस्तक हो जाते थे। बार्थ ने भी कहा है कि भक्ति आन्दोलन एक भारतीय घटना है, जिसकी जड़ें हिन्दुओं के धार्मिक विचारों में थीं। डा० यूसुफ हुसन ने लिखा है कि ईश्वर भक्ति का जन्म बिल्कुल स्वाभाविक रूप में भारत में हुआ। भारत में जिस अर्थ में भक्ति समझी जाती थी, वह प्रेम से परिपूर्ण है।

परन्तु, अनेक विद्वान उपरोक्त मत से सहमत नहीं हैं। उनका मत है कि मध्यकालीन भक्ति आंदोलन इस्लाम धर्म की देन है। इस्लाम धर्म की सादगी, मूर्ति-पूजा का विरोध, एकेश्वरवाद में विश्वास, जाति-पाँति के विरुद्ध सभी बातें इस्लाम धर्म की विशेषतायें थीं, जिसे भक्ति आंदोलन के संतों ने अपनाया था। मुस्लिम धर्म से सम्पर्क के कारण भक्ति आंदोलन की भावना को प्रोत्साहन मिला और जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमें नामदेव, दादू, कबीर और नानक की शिक्षाओं में परिलक्षित होता है जिसमें हमें हिन्दू तथा मुस्लिम विचारधाराओं का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगत होता है।

प्रो० हरिदत्त वेदालंकार के अनुसार भारत में इस्लाम धर्म का शान्तिपूर्वक प्रवेश दक्षिण भारत में हुआ। वहीं से धार्मिक सुधार आंदोलनों का शुरू होना सूचित करता है कि इनको इस्लाम से कुछ प्रेरणा अवश्य मिली। इस्लाम के अनुयायियों की उपस्थिति ने जाति भेद, धार्मिक जीवन और ईश्वर के अस्तित्व आदि विषयों पर लोगों को विचार करने के लिए उत्तेजित किया। एकेश्वरवाद और समानता आदि के विचार हिन्दू-धर्म में पहले से ही विद्यमान थे, किन्तु इस्लाम से उन्हें बल मिला।

डा० ताराचन्द ने अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ 'भारतीय संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव' में लिखा है कि 'भक्ति इस्लाम के प्रारम्भिक काल में ही पश्चिमी समुद्र तट पर आकर बसने वाले अरबों की देन है। इस्लाम के आगमन के पूर्व एकेश्वरवाद भारत में था ही नहीं और शंकर जैसे आचार्यों की शिक्षा पर भी इस्लाम का प्रभाव पड़ा है।'

प्रो० बी० एन० लूनिया का कथन है कि इस्लाम और हिन्दू धर्म के परस्पर संसर्ग के महत्वपूर्ण परिणाम हुए। इस सम्पर्क से कुछ ऐसे सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ जो हिन्दू और मुस्लिम धर्मों के भेद भाव को मिटाने वाले थे और जिन्होंने हिन्दू धर्म के सुधार-आंदोलनों का रूप ले लिया। इस्लाम विश्व-बन्धुत्व का संदेश देता है, धर्म की सादगी का समर्थन करता है एवं एकेश्वरवाद का उपदेश देता है। इस्लाम के ये सिद्धांत दार्शनिक हिन्दू मस्तिष्क पर चेतन या अचेतन रूप में अपना प्रभाव डालने लगे और इन्होंने इतिहास में धार्मिक सुधारकों के नाम से प्रसिद्ध होने वाले संत उपदेशकों के उदार आंदोलनों को प्रोत्साहित किया। विशिष्ट विस्तृत बातों में कतिपय मतभेदों को छोड़कर ये सुधारक उदार भक्ति-सम्प्रदाय के समर्थक थे।

भक्ति आंदोलन के दो काल—डॉ यूसुफ हुसैन ने लिखा है कि भक्ति आंदोलन को दो स्पष्ट कालों में विभाजित किया जा सकता है

(1) प्रथम काल (प्राचीनकाल से 13वीं शताब्दी ई० तक) यह काल 'भगवद गीता' के समय से लेकर 13वीं शताब्दी तक माना जाता है, जबकि इस्लाम धर्म ने भारत के आन्तरिक भागों में प्रवेश किया था। इस काल में भक्ति व्यक्तिगत भावना

थी। यह भक्ति वासुदेव अर्थात् सर्वोच्च ईश्वर के प्रति थी। 'भगवदगीता' का उद्देश्य किसी निश्चित दर्शन या धर्म का निर्माण न करके हिन्दू दर्शन के विभिन्न अंगों का समन्वय करना था। इस समन्वय का आधार भक्ति था।

(2) द्वितीय काल (1 वी सदी से 16वीं सदी तक)—*यह काल सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक और धार्मिक सुधार तथा कलात्मक अभिव्यक्ति का काल है।* इस काल में इस्लाम और हिन्दू धर्म के सम्पर्क के कारण प्रबल मानसिक क्रान्ति हुई, जिसका प्रभाव प्रायः सभी अंगों पर पड़ा। इस काल में सुधार आन्दोलनों का प्रारम्भ पहिले दक्षिण भारत में हुआ फिर उत्तर भारत में। दक्षिण में रामानुज ने लोगों को त्याग की भावना के साथ इच्छा रहित भक्ति करने का उपदेश दिया। उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तक रामानन्द थे, उन्हें जाति प्रथा में कोई विश्वास नहीं था और उन्होंने सभी जातियों के व्यक्तियों को अपना शिष्य बनाया। बंगाल में चैतन्य ने लोगों को कृष्ण से प्रेम करने और उसकी भक्ति करने की शिक्षा दी। तैलंग ब्राह्मण वल्लभाचार्य का मत था कि ब्राह्मण और अन्य व्यक्ति की आत्मा में कोई अन्तर नहीं है और मनुष्य की आत्मा को केवल भक्ति से ही मुक्ति मिल सकती है। महाराष्ट्र के नामदेव ने ईश्वर की एकता पर बल दिया। उनका यह विश्वास था कि केवल ईश्वर प्रेम और भक्ति द्वारा ईश्वर से एकता प्राप्त हो सकती है। रामानन्द के शिष्य कबीर ने सम्नाम और उसमें सहयोग तथा समन्वय की भावना उत्पन्न करने का प्रयास किया। पंजाब के गुरु नानक ने कबीर के समान सब धर्मों की मौलिक एकता और हिन्दू मुसलमानों के अभेद पर बल दिया। इस तरह, यह **"मध्ययुग का भक्ति आन्दोलन इस्लामी संस्कृति के हिन्दू समाज पर प्रथम प्रभाव का प्रतिनिधित्व करता है।"**

भक्ति आन्दोलन के उदय के कारण

1. शंकराचार्य का अद्वैतवाद ज्ञान मार्ग—दक्षिण भारत में, सातवीं शताब्दी में हुए शंकराचार्य ने 'अद्वैतवाद के सिद्धान्त' का प्रसार किया। उनका कथन था कि केवल ब्रह्म ही सत्य है और आत्मा तथा ब्रह्म में कोई भेद नहीं है, पर माया से घिरे रहने के कारण आत्मा ब्रह्म में लीन नहीं हो पाती है। यह तभी सम्भव है जब मनुष्य ज्ञान मार्ग का अनुसरण करें। परन्तु साधारण मनुष्यों के लिए इस ज्ञान मार्ग का अनुसरण करना कठिन था, वह उनकी समझ से बाहर था। वे ऐसे मार्ग की खोज में थे जो उनके हृदय और मस्तिष्क दोनों का सन्तोष दे। अतः जन साधारण ने मध्यकाल में प्रतिपादित भक्ति मार्ग को अपनाया क्योंकि वह अपेक्षाकृत सरल और रुचिकर था। इस तरह डा. यूसुफ हुसैन के शब्दों में, भक्ति आन्दोलन को अपने विकास के लिए उचित वातावरण मिला।

2. वैदिक धर्म का जटिल रूप ब्राह्मणवाद का खोखलापन—वैदिक धर्म की शिक्षाएँ केवल सैद्धान्तिक थीं। ब्राह्मणवाद मूलरूप से एक बौद्धिक सिद्धान्त बनकर

रह गया था तथा अपने आप म नीरस था, उनकी शिक्षाएँ काल्पनिक और समझ स बाहर थी। इ ही परिस्थितियो म भक्ति प्रेम मिश्रित ईश्वर भजन के आ दोलन ने एक अनुकूल वातावरण पाया।"

3 **जाति व्यवस्था की कठोरता**—पूव मध्यकाल म भारतवप म हिन्दुओ की जाति प्रथा ने कठोर रूप धारण कर लिया था। निम्न जतियो के व्यक्तिया को न केवल घृणा की दृष्टि से देखा जाता था, वरन उन पर अत्याचार भी किय जाते थे। जबकि भक्ति-माग म जाति भेद को कोई स्थान नही दिया गया। भक्ति आन्दोलन के अनेक सन्तो के शिष्यो मे सभी जातियो के व्यक्ति और मुसलमान भी थे। इसके फलस्वरूप भक्ति आ दोलन का मार्ग प्रशस्त होता चला गया।

4 **इस्लाम का प्रभाव**—बहुत से विद्वान भक्ति आन्दोलन का कारण इस्लाम धम बतलाते हैं। डॉ रमेशचन्द्र मजूमदार ने लिखा कि "इस्लाम की प्रजा तान्त्रिक और उदार भावनाओ ने इस आ दोलन को विशेष रूप से प्रभावित किया। डॉ जदुनाथ सरकार के मतानुसार, "यह वास्तविकता है कि मध्यकालीन भारत के इस विवादास्पद आन्दालन को उनके अत्य त पडोस म मुसलमानो की उपस्थिति मे बडी प्रेरणा मिली।" इस्लाम जाति पाति का विरोध करता है और मूर्ति पूजा को महत्त्व नही देता जो भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सिद्धात थ।

II भक्ति आ दोलन की विशेषताएँ और प्रभाव

भक्ति आन्दोलन देश की तत्कालीन सामाजिक एव धार्मिक व्यवस्था के खिलाफ जबरदस्त आन्दोलन था। बडे वडे सन्त एव साधु जिसम सहयोग करने को तत्पर हुए। ऐसा शक्तिशाली आन्दोलन निश्चय ही तत्कालीन व्यवस्था को प्रभावित करने वाला सिद्ध हुआ। इसमे किसी एक वग के व्यक्ति सम्मिलित न होकर सभी धर्मों के व्यक्ति सम्मिलित थे। अत इसक प्रभाव बहुत ही यापक रहे। डा० यूसुफ हुसन ने लिखा है कि "इस आन्दोलन ने न केवल दानो धर्मों (हिन्दुत्व और इस्लाम) के निष्ठावान व्यक्तियो के मिलन के लिए एक सगम-भूमि तैयार की, अपितु मानव की सावभौम एकता का प्रचार किया तथा खुले रूप मे कुसस्कारो और क्रूर वण व्यवस्था का खण्डन किया। मौलिक रूप से यह आन्दोलन नया था तथा मूल रूप से प्राचीन परम्पराओ और धार्मिक प्रभुत्व के विचारो से भिन्न था।"

भक्ति आन्दोलन राष्ट्रीय दृष्टिकोण पर आधारित था। इस आन्दोलन मे वे सत और महा मा सम्मिलित हुए थे, जो कट्टर धर्मानुयायी न होकर एक उदार वादी विचारधारा के समथक थे। ये वे लोग थे जो मनुष्य के बीच धम अथवा जाति की मनुष्य द्वारा खडी की गयी दीवारो के अस्तित्व को स्वीकार करने को तयार नही थे। वे जमकर धम के ठेकेदारो का विरोध कर रह थे और मानवीय समानता को खुला समथन दे रहे थे। इससे देश मे राष्ट्रीय विचारधारा को जन्म मिला। शासन व समाज मे ऐसा तत्त्व सामने आया जो हिन्दू मुस्लिम एकता को अच्छी नजर

से देखता था और मानवता को धार्मिक कठमुल्लापन से दूर ले जाना चाहता था। यही कारण है कि रसखान का, मुस्लिम पठान होते हुए भी, हिन्दुओं ने भक्तों की श्रेणी में रखा। इसी तरह, मुसलमानों ने भी—नानक और दादूदयाल को श्रद्धा के फूल चढाये। कबीर जैसे संत भक्त की मृत्यु पर हिन्दू मुस्लिम दोनों धर्म के लोगों ने आंसू बहाये। वास्तव में, यही वह राष्ट्रीयधारा है जिसको अकबर बादशाह ने आगे चलकर अपनी राज्य शासन की नीति के रूप में स्वीकार किया।

भक्ति आन्दोलन की विशेषतायें—भक्ति आन्दोलन के संतों के उपदेशों में कुछ सामान्य विशेषतायें मिलती हैं। उनकी प्रमुख शिक्षाओं का सारांश इस प्रकार है

1 धार्मिक संकीर्णता का विरोध—भक्ति आन्दोलन ने धार्मिक संकीर्णता के बन्धनों को तोड़ने पर बल दिया और लिंग, धर्म, वर्ण, जाति, स्त्री-पुरुष, हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण अब्राह्मणों में किसी प्रकार का भेद नहीं किया। इस आन्दोलन के संत मनुष्यमात्र को एक मानते थे।

2 जात-पात व ऊँच नीच के भेदभाव का खण्डन—इन सन्तों ने भक्ति के आधार पर सबकी समानता का प्रतिपादन किया। उनमें जाति पाति को महत्त्व देने जैसी क्षुद्र प्रवृत्तियां नहीं थीं। उन्होंने जात पाति और ऊँच नीच के भेदभाव का खण्डन कर सामाजिक क्षमता की घोषणा की। स्वामी रामानन्द का तो मूलमंत्र था

"जांत पात पुछे नहीं कोई। हरि को भजे सो हरि का होई।"

इस शिक्षा को द्विजेतर जातियों ने बड़े ही उत्साह से ग्रहण किया।

3 ईश्वर की एकता पर बल—इस आन्दोलन में भाग लेने वाले, विभिन्न देवी देवताओं की उपासना करने के बजाए एक ईश्वर में विश्वास करते थे। यह सत्य है कि उनमें कोई निर्गुण ब्रह्म का उपासक था, तो कोई सगुण ईश्वर का, परन्तु सबका मूल उद्देश्य सर्वशक्तिमान भगवान की उपासना करना मात्र था। उन्होंने सभी धर्मों की आधारभूत समानता का उपदेश दिया तथा एकेश्वरवाद का समर्थन किया।

4 मूर्ति पूजा का खण्डन और विरोध—भक्त संतों ने मूर्ति पूजा में कोई रुचि नहीं दिखायी और कुछ संतों ने तो स्पष्ट विरोध किया, जिनमें कबीर प्रमुख थे। उनके अनुसार—

"पाहन पूजे हरि मिले, मैं पूजूँ पहार।
ताते या चाकी भली, पीस खाये संसार।

भक्त विसोवा खेचर ने प्रत्यक्ष मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए कहा था, "पत्थर का देवता तो बोलता तक नहीं, फिर भला हमारे इस जीवन के दुःखों को

कसे दूर कर सकता है ? यदि वह हमारी इच्छा पूर्ण करने की शक्ति रखता तो स्वयं गिर जाने पर टूट क्या जाता है ?"

5 कर्मकाण्ड तथा आडम्बरों का विरोध—भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तक धार्मिक कर्म काण्ड, अन्धविश्वास तथा आडम्बरों के विरोधी थे । सभी भक्त मत का मोक्ष के एक मात्र साधन के रूप में, भक्ति भावना में अटूट विश्वास था । उन्होंने मोक्ष प्राप्ति के लिए ईश्वर की प्रेमपूर्वक शरणागति को सर्वोत्तम साधन बताया। भक्ति आन्दोलन का स्वरूप अत्यन्त सरल तथा आडम्बरहीन था । सरल रूप में भगवान् के प्रति प्रेम तथा सच्चे हृदय से भक्ति करना, इस मत का प्रमुख आधार था । उनका मत था कि "सच्चा धर्म दार्शनिकों, पंडितों और पुरोहितों के कठोर सिद्धांतों और मिथ्या वादानुवाद में नहीं है और न निरर्थक कर्मकाण्ड में, बल्कि ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति में है ।'

हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल—भक्ति आन्दोलन के अधिकांश संत असाम्प्रदायिक थे । व किसी भी सम्प्रदाय अथवा अन्धविश्वास के कट्टर अनुयायी न थे। उन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकता पर विशेष बल दिया । भक्ति आन्दोलन के कबीर, नानक, दादू आदि संतों ने हिन्दू और मुसलमानों के बीच भेद की खाई पाटने का प्रयास किया । उन्होंने दोनों धर्मों के बाह्य भेदों, रूढ़ियों और आडम्बरों का खण्डन करते हुए मूलभूत आन्तरिक एकता पर बल दिया और हिन्दू मुस्लिम धर्मों की झूठी पृथकता का खण्डन किया । इस तरह उन्होंने हिन्दुत्व और इस्लाम की मूलभूत एकता पर बल दिया ।

7 जन-भाषा का प्रयोग—इस आन्दोलन के संतों ने अपने उपदेश साधारण बोल चाल की भाषा में किये । जो संत जिस प्रान्त का निवासी था, उसने वहीं की सामान्य भाषा को अपनाया । भक्ति मार्ग के संतों ने महात्मा बुद्ध और महावीर की भाँति जन भाषा का प्रयोग किया, जिसके परिणामस्वरूप इस आन्दोलन के सिद्धान्तों का व्यापक प्रचार हुआ । कबीर तथा नामदेव ने हिन्दी, नानक ने पंजाबी, मीरा ने राजस्थानी, नरसी मेहता ने गुजराती तथा चैतन्य ने बंगाली भाषा में काव्य रचना की ।

8 संन्यास-धारण करने का विरोध—इस आन्दोलन के प्रवर्तक कर्मकाण्ड तथा आडम्बरों के तो विरोधी थे ही, परन्तु संन्यास लेने के पक्ष में नहीं थे । उनके विचार में ईश्वर को प्राप्त करने के लिये संन्यास ग्रहण करना आवश्यक नहीं था । यदि व्यक्ति का आचरण पवित्र है और उसके हृदय में भगवान के प्रति सच्ची श्रद्धा है तो वह गृहस्थ रहकर भी मोक्ष प्राप्त कर सकता है । कबीर, नानक, रैदास आदि संतों ने गृहस्थ में रहते हुए भक्ति-प्रचार किया ।

9 कुप्रथाओं का विरोध—इस आन्दोलन के समर्थकों ने सती प्रथा, दास प्रथा और शिशु हत्या जैसी सामाजिक कुरीतियों को समूल नष्ट करने का प्रयास किया ।

10 जनवादी आन्दोलन—इसे न तो राज्याश्रय प्राप्त था और न उच्च वर्ग का समर्थन। यह एक जनवादी आन्दोलन था और जन साधारण ने इसको पूरा-पूरा सहयोग दिया।

भक्ति आन्दोलन प्रभाव और परिणाम

भक्ति आन्दोलन ने सम्पूर्ण भारत को प्रभावित किया और उसका प्रभाव अनेक शताब्दियों तक कायम रहा। पंजाब से लेकर बंगाल तक और हिमालय उत्तर प्रदेश से लेकर कन्याकुमारी तक भारत का कोई भी भाग ऐसा न था जहां पर यह आन्दोलन लोकप्रिय न हुआ हो। डॉ ए एल श्रीवास्तव ने ठीक ही कहा है कि, "यह जन आन्दोलन था और इसने लोगों को गहरे रूप से प्रभावित किया था। शायद बुद्ध-धर्म के पतन के पश्चात् भक्ति आन्दोलन जैसा देशव्यापी जन आन्दोलन हमारे देश में दूसरा नहीं हुआ था।"

प्रो बी एन लूनिया के अनुसार, इस्लामी समाज का उदाहरण हिन्दुओं के ईर्ष्या द्वेष को गलाने वाला पदार्थ था। सभी सुधारकों ने जाति प्रथा की निन्दा की, बहुदेववाद और मूर्ति-पूजा का खण्डन किया और सच्चा धर्म सात्त्विक आचरण एवं पवित्र जीवन का समर्थन किया। उनका कथन था कि सच्चा धर्म निरर्थक आडम्बरों में निहित नहीं है, पर भक्ति व ईश्वर के पवित्र प्रेम में है। ईश्वर तो हिन्दुओं और मुसलमानों, चाण्डालों और ब्राह्मणों सभी का है और उनके सम्मुख सब समान हैं। उन्होंने प्रेम व दया से पूर्ण अपने उपास्य देव की भक्ति का उपदेश दिया और उसी को मुक्ति का साधन बतलाया।

इन सन्तों ने अपने उपदेशों से जनता के मस्तिष्क को पण्डितों, पुजारियों और मौलवियों के डाग से मुक्त करने में सहायता दी, धार्मिक पक्षपात, कट्टरता और असहिष्णुता को कम करने का प्रयत्न किया, धार्मिक कर्मकाण्ड और बाह्याडम्बर की निस्सारता प्रदर्शित की बहुदेव पूजा की रोक थाम की एवं एकेश्वर का पुनः प्रचार किया। उन्होंने हिन्दू वर्ण व्यवस्था को कट्टर अनुदार व अपरिवर्तनशील भावनाओं से मुक्त किया निम्न श्रेणी के लोगों के लिए आध्यात्मिक तथा सामाजिक स्तरों को ऊंचा उठाया जन्म की अपेक्षा कर्म का अधिक महत्त्व दिया तथा समाज में उदारता, सहनशीलता, दान आदि की उच्चतम भावनाओं का प्रसार किया। वास्तव में उन्होंने, "देश को विचार और कार्य दोनों ही दृष्टियों से ऊँचा उठाने तथा क्षमताशील बनाने में सफलता प्राप्त की।"

भक्ति आन्दोलन मध्यकालीन भारतीय इतिहास की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। यह एक जन आन्दोलन था जिससे देश में धार्मिक व सामाजिक चेतना की एक नई लहर उत्पन्न हुई। भक्ति-आन्दोलन का हिन्दू समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। इसके परिणाम भी महत्त्वपूर्ण निकले जो अग्रानुसार हैं -

1 समानता की भावना का उदय–हिन्दू समाज मे समानता के सिद्धान्त का समर्थन किया जाने लगा और लोगो का जात-पात तथा ऊंच नीच म विश्वास कम हो गया ।

2 मूर्तिपूजा मे कमी—इस आन्दोलन मे मूर्ति पूजा समाप्त तो नही हुई, पर कम अवश्य हो गई । लोगो म यह धारणा प्रबल हो गई कि मूर्तियो की पूजा निरथक है ।

3 आडम्बरो मे अविश्वास—अब धार्मिक कर्म-काण्डो व सामाजिक बाह्य आडम्बरो म लोगो की आस्था न रह गई ।

4 ब्राह्मणवाद के प्रभाव का पतन—भक्ति आन्दोलन के विस्तार म ब्राह्मणो की पौराणिक परम्परागत प्रभुता तथा धार्मिक क्षेत्र म उनके एकमात्र अधिकार का अन्त हो गया ।

5 निम्न जातियों का उत्थान—अब समाज म निम्न जातियो को भी ऊँचा उठने और भक्ति द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने का अधिकार मिल गया ।

6 धार्मिक सहिष्णुता का विकास—इस आन्दोलन ने धार्मिक सहिष्णुता को जन्म दिया । इसके फलस्वरूप भारतीय समाज के दो मुख्य अगो–हिन्दुओ और मुसलमानो मे सामजस्य और समन्वय की भावना उदय हुई । परिणामत भारत के सामाजिक जीवन मे समृद्धि स्थिरता और शान्ति दृष्टिगोचर होने लगी । ऐसे ही वातावरण मे मुगल साम्राज्य की, सोलहवी शताब्दी म स्थापना हुई थी ।

7 जन भाषाओ की अभूतपूर्व उन्नति—अधिकाश सतो व धर्म व समाज सुधारको ने इस काल मे लोगो को अपने अपने प्रदेश की जन भाषाओ मे उपदेश दिये । भक्ति आन्दोलन के कारण अनेक गीतों और पदो ने गुजराती एव राजस्थानी मे, चण्डीदास तथा चैतन्य ने बगला मे एकनाथ और ज्ञानेश्वर न मराठी म, कबीर, जायसी व रसखान ने हिन्दी मे, तुलसी ने अवधी म, सूरदास ने बृज भाषा तथा नानक ने पजाबी मे अपनी रचनायें की । इस तरह भाषाओ के साहित्य की सम्पन्नता म वृद्धि हुई ।

निष्कर्ष—इस तरह भक्ति आन्दोलन का भारत के सांस्कृतिक इतिहास म अति महत्त्वपूर्ण स्थान है । इस आन्दोलन के कारण हिन्दू जाति के निराश हृदय मे आशा का सचार हुआ । इसके प्रभाव से अनेक सामाजिक कुरीतियो का नाश हुआ तथा राष्ट्रीय विचारधारा को शक्ति प्राप्त हुई । धर्म का रूप शुद्ध एव सात्विक बन गया । उसमे व्यर्थ के कर्मकाण्डो एव बाह्य आडम्बरो का महत्त्व कम हुआ । लोगो म भक्ति भावना का जोर बढता गया ।

डा० यूसुफ हुसैन न ठीक ही लिखा है कि "भक्ति आन्दोलन ने ईश्वर की दृष्टि म प्रत्येक व्यक्ति के महत्त्व के विषय मे एक नया सामाजिक सन्देश दिया । साथ ही नये सामाजिक तथा आध्यात्मिक आदर्शों की भक्ति का अनुसरण करके

उपयुक्त साधन बनाने के लिए प्रचलित हिन्दू आन्दोलन ने दलित वर्ग के लिए मुक्ति का मार्ग खोल दिया। सब साधारण में धार्मिक कट्टरता के स्थान पर उदारता लगी। इससे धार्मिक, सामाजिक तथा दर्शनिक क्षेत्र में समन्वयकारी प्रवृत्तियों को बल मिला।

III भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तक सन्त

मध्य काल में इस्लाम और हिन्दू धर्म के परस्पर ससर्ग से अति महत्त्वशाली परिणाम हुए। इस सम्बन्ध में डॉ० मजूमदार, राय चौधरी एवं दत्त ने लिखा है "इस्लाम के कुछ प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों ने हिन्दुओं की धार्मिक और सामाजिक व्यवस्थाओं में प्रवेश किया और कुछ धार्मिक उपदेशकों की अध्यक्षता में उदार आन्दोलनों को जन्म दिया। विस्तार में कुछ अन्तरों के अलावा ये सब सुधारक उदार भक्ति सम्प्रदाय के निदेशक थे।" कुछ प्रमुख सन्त इस प्रकार हैं

रामानुज—भक्ति आन्दोलन के सबसे पहले समर्थक रामानुज थे, जिनके सिद्धान्त भक्ति के आधार बन गए। रामानुज का जन्म दक्षिण में मद्रास के पास तिरुपति में 1060 ई० में हुआ और इनकी शिक्षा काल काजीवरम में बीता। अपनी विद्वता के कारण वे शीघ्र ही महान वैष्णव आचार्य यमुनामुनि की गद्दी के उत्तराधिकारी हो गये और त्रिचनापल्ली के समीप श्रीरंगम उनका प्रमुख केन्द्र बन गया। उनका जीवन बहुमुखी था एवं कार्य क्षेत्र व्यापक था। उन्होंने वैष्णवों का संस्थाबद्ध रूप में संगठन किया। उनके सतत् सफल प्रयासों से वैष्णव-मत की नींव दृढ हो गई और उसने स्थायी रूप ले लिया।

रामानुज सुधारक थे। उनका मत था कि "समाज में पुरुष अथवा स्त्री को चाहे जो भी दशा हो, परमात्मा के समीप सभी समान हैं, शर्त यह है कि वे सदजीवन का पालन करते हों।" उनके अनुसार, एक शुद्ध अन्त्यज भी भक्ति और प्रेम के माध्यम द्वारा मुक्ति प्राप्त कर सकता है। उन्होंने शूद्रों को एक निश्चित दिवस पर मन्दिर प्रवेश की अनुमति दे दी।

उन्होंने वैष्णव नाम के अन्तर्गत एकेश्वरवाद का उपदेश दिया और शंकराचार्य के अद्वैत मत का खंडन किया। ईश्वर में अनन्य भक्ति को ही उन्होंने मुक्ति का एकमात्र साधन बतलाया। उनका मत था कि आत्मा तथा परमात्मा भिन्न हैं। यद्यपि आत्माओं का समुदय आग से चिनगारी के समान उसी से होता है। मनुष्य की आत्मा ईश्वर से इस प्रकार निकलती है, जिस प्रकार आग से चिनगारी। उन्होंने निराकार ईश्वर का प्रतिरोध करते हुए कहा कि ईश्वर में अनेक विशिष्ट गुण हैं, भक्त जिनका ध्यान कर सकता है। इस प्रकार उन्होंने सगुण ईश्वर का उपदेश दिया। उनका सिद्धान्त "विशिष्ट द्वैत" नाम से प्रख्यात है। उन्होंने लोगों को त्याग भावना के साथ इच्छा रहित भक्ति का उपदेश दिया। उनका विचार था कि बिना मन की एकाग्रता तथा भक्ति के मोक्ष प्राप्ति सम्भव नहीं है।

माध्वाचार्य—दक्षिण के अन्य प्रसिद्ध उपदेशक माध्वाचार्य थे जो दक्षिण कन्नड मे उदिपी नामक स्थान के निवासी थे । ये विष्णु के उपासक थे और शिव को कोई महत्व नही देते थे। उनके सिद्धात के अनुसार ज्ञान से भक्ति होती है और मनुष्य का अंतिम उद्देश्य हरि का प्रत्यक्ष दर्शन है जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती है । उनका मत था कि "सुखो-दुखो की स्थिति कर्मानुसार होने से उनका अनुभव सभी के लिए अनिवार्य है । इसलिए सुख का अनुभव करते समय भी भगवान को न भूलो तथा दुःख काल मे उसकी निन्दा मत करो। वेद शास्त्र सम्मत कर्म-मार्ग पर अटल रहो। कोई भी कर्म करते समय बडे दीन भाव से भगवान् का स्मरण करो । भगवान् ही सबसे बडे, सबके गुरु तथा जगत के माता पिता हैं । इसलिए अपने सारे कर्म उन्ही को अर्पण करने चाहिए ।"

वल्लभाचार्य—अन्य प्रसिद्ध वैष्णव सन्त वल्लभाचार्य थे जो कृष्ण सम्प्रदाय के सबसे अधिक प्रसिद्ध प्रवर्तक माने गये हैं । ये दक्षिण के तैलंग ब्राह्मण थे और अपनी अद्वितीय प्रतिभा और विद्वता से शीघ्र ही विद्वानो में प्रसिद्ध हो गये । उन्होंने शारीरिक यातनाएँ, वैराग्य और संसार त्याग का उपदेश दिया एवं सर्वोपरि परमात्मा के साथ अपनी आत्मा व विश्व के सम्पूर्ण एकीकरण पर बल दिया। उन्होने लोगो को कृष्ण भक्ति का उपदेश दिया और पुष्टि मार्ग की स्थापना की । उन्होने शंकराचार्य के मायावाद का खण्डन किया और लोगो को बतलाया-"जीव उतना ही सत्य है, जितना कि ब्रह्म । फिर भी वह ब्रह्म का अंश और सेवक है । जीव को भगवान की भक्ति के बिना शांति नहीं मिल सकती है । भगवान् श्री कृष्ण ही परमब्रह्म है ।" डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव के मतानुसार, "वल्लभाचार्य के उपदेशो मे एक भावात्मक प्रेरणा थी और इस प्रेरणा ने ब्रज, राजस्थान और गुजरात की कला और काव्य को बहुत ही ऊँचा उठाया । वास्तव मे वल्लभाचार्य के विचारो ने केवल धार्मिक जागृति ही उत्पन्न नही की, बल्कि संगीत, काव्य, नृत्य और चित्रकला में भी महान पुनरुत्थान का श्रीगणेश किया ।"

वल्लभाचार्य का अधिकांश जीवन ब्रज मे व्यतीत हुआ । उनका एकेश्वरवाद "शुद्ध अद्वैत" नाम से प्रसिद्ध है । प्रो० बी० एल० लूनिया के अनुसार, उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके अनुयायियो ने इस सिद्धात का भौतिक अर्थ लगाया । अतएव उनके सिद्धातो मे दुर्गुण उत्पन्न हो गये और उनकी मौलिक पवित्रता व सरलता विनष्ट हो गयी । अपने पतितरूप मे यह इन्द्रिय सुख मे निरत रहने वालो का विषयासक्त धर्म हो गया ।

रामानन्द [1356-1410 ई०] उपदेश की विशेषताएँ

14वीं शताब्दी तक सभी धर्म गुरु दक्षिण भारत में ही हुए थे । पर 14वीं शताब्दी मे उत्तर भारत में एक प्रसिद्ध आचार्य का जन्म हुआ। यह आचार्य रामानन्द थे। वे रामानुज के बाद वैष्णव

धर्म के पाचवें गुरु थे। उत्तर भारत म वष्णव धम के प्रसार के लिए व ही अधिक उत्तरदायी हैं। उन्होंने जाति प्रथा का खण्डन किया और बिना किसी भेद भाव के सभी वर्गों और जातियो से लोगा को अपना शिष्य बनाया। उनके प्रमुख शिष्यो मे एक नाई, एक मोची व एक मुसलमान था। उ होंने ईश्वर के सम्मुख मनुष्य की समानता का उपदेश दिया। व पहले सुधारक थ जिन्हाने अपने सिद्धांतों के प्रचार के लिए हिन्दी भाषा का उपयाग किया और इस प्रकार जन साधारण में, विशेषकर निम्न वर्ग के लागो मे, उन्हाने ख्याति प्राप्त की।

डॉ० धीरे द्र वर्मा न लिखा है "रामानन्द का महत्त्व अनेक दृष्टिया से है। व राम भक्ति को साम्प्रदायिक रूप देने वाले सव-प्रथम आचाय थे। उन्ही की प्रेरणा से मध्य युग मे तथा उसके पश्चात प्रचुर रामभक्ति साहित्य की रचना हुई। कबीर और तुलसी दोनो का श्रेय रामान द को ही है। रामानन्द ने भक्ति के द्वार स्त्री और शूद्र के लिय भी खोल दिये। फलत मध्य युग म एक बडी सबल उदार विचारधारा का जन्म हुआ। स त साहित्य की अधिकाश उदार चेतना रामानन्द के ही कारण है। यही नहीं, रामानन्द की इस उदार भावना ने हिन्दू और मुसलमानो को भी समीप लाने की महत्त्वपूर्ण भूमिका तैयार कर दी। हिन्दी के अधिकांश सन्त कवि, जो रामान द को ही अपनी मूल प्रेरणा स्रात मानते हैं, मुसलमान ही थे। रामानन्द की उदार विचारधारा प्राय समूचे भारत मे फल गयी।

रामानद के उपदेश विशेषताएं—स्वामी रामानन्द ने जो उपदेश दिये, उनके विभिन्न पहलुओं पर निम्नलिखित पंक्तियो म प्रकाश डाला जाता है

(1) राम और सीता की उपासना—उन्होंने राम और सीता के पवित्र रूप को जन साधारण के आगे प्रस्तुत किया तथा नतिक और सामाजिक मर्यादा का पाठ पढ़ाया। राम भक्ति मे ईश्वर के अवतार पुरुषोत्तम राम के आदर्श का यशोगान किया गया।

(2) मानव समानता मे विश्वास—रामान द मानव समानता के सिद्धात में विश्वास करते थे। उनके क्रांतिकारी विचारा के फलस्वरूप शूद्रो और निम्न जातियो में जागरण की लहर दौड गयी। उन्होने स्त्रिया की दलित दशा के प्रति दु ख प्रकट किया और उनके स्तर को ऊँचा उठाने के लिए अपने शिष्यो को प्रोत्साहित किया। उनका कहना था कि "सब लोग परमात्मा के सेवक है, इसलिए वे सभी आपस मे भाई भाई है।"

(3) परम्पराओं मे विश्वास—रामानन्द ने जाति-व्यवस्था के बन्धनो को शिथिल किया और शूद्रो एव स्त्रिया के लिए अपने धम के द्वार खोल दिए। इतना करने पर भी व इस पक्ष में नहीं थे कि प्राचीन परम्पराओं को पूर्णरूप से समाप्त कर दिया जाय। इस सम्बन्ध मे डा० बडथ्वाल ने लिखा है "उन्होंने शूद्र के वेदो को पढने के अधिकार को स्वीकार नहीं किया और सामाजिक मामलो मे वे मुसलमान से हिन्दू की और शूद्रो से द्विजो की श्रेष्ठता को अस्वीकार न कर सके।

(4) जन भाषा हिन्दी का प्रयोग—यह प्रथम वैष्णव गुरु थे जिन्होंने अपने सिद्धांतों का प्रचार हिन्दी भाषा में किया। इससे पूर्व वैष्णव धर्म का प्रचार संस्कृत भाषा में किया जाता था। हिन्दी उत्तर भारत की जन साधारण की भाषा थी अतः उनके उपदेशों को सर्वसाधारण ने बड़ी सरलता से ग्रहण कर लिया और उनके सिद्धांतों का प्रचार भी व्यापक मात्रा में हुआ।

(5) भक्ति के दो सम्प्रदायों के जन्मदाता—रामानन्द का महत्त्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि इनके शिष्य सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार के उपासक थे। डॉ॰ ताराचंद ने लिखा है- "रामानन्द के उपदेशों ने धार्मिक विचारधारा के दो सम्प्रदायों को जन्म दिया, एक अनुदार और दूसरा उदार। पहले सम्प्रदाय ने प्राचीन विश्वासों में आस्था रखी और धार्मिक सिद्धांतों तथा विधियों में केवल मामूली परिवर्तन किया। दूसरे ने अधिक स्वतंत्र मार्ग का अवलम्बन किया और ऐसे धर्म का निर्माण करने का प्रयास किया, जो विभिन्न धर्मों के मनुष्य को, विशेष रूप से हिन्दुओं और मुसलमानों को स्वीकार हो। पहले सम्प्रदाय में सर्वश्रेष्ठ नाम तुलसीदास का और दूसरे में कबीर का। ये दोनों वास्तव में मध्ययुगीन भारत के अद्वितीय महापुरुष थे।"

निष्कर्ष—रामानन्द के उपदेशों के परिणाम अति हितकर सिद्ध हुए। डॉ॰ ए॰ एल॰ श्रीवास्तव के शब्दों में "क्योंकि हर कोई वैष्णव धर्म के उपदेश समझ सकता था, इसलिए शूद्रों में काफी जागृति हुई। रामानन्द ने धार्मिक सभाओं में अपने शिष्यों को समान व्यवहार का आश्वासन दे रखा था, इसलिए उनके उपदेशों ने स्त्रियों का स्तर ऊँचा उठाया और पारिवारिक जीवन को पवित्रता प्रदान की। रामानन्द ने प्रेम और भक्ति पर तो बल दिया पर धार्मिक कृत्यों, धार्मिक रस्मों, उपवासों और तीर्थ यात्राओं पर बल नहीं दिया। फिर, उन्होंने भक्ति आंदोलन को लोकवादी रूप प्रदान किया जो उनकी जनप्रियता का स्वाभाविक परिणाम था।" इन सबके परिणाम स्वरूप रामानन्द की उदार विचारधारा प्रायः समूचे भारतवर्ष में फैल गयी।

सन्त कबीर मुख्य शिक्षायें और महत्त्व

रामानन्द के शिष्यों में सबसे श्रेष्ठ स्थान कबीर का है। भक्तिकालीन सन्तों में कबीर का नाम सबसे ऊपर आता है। अधिकांश विद्वानों के अनुसार उनका जन्म संवत 1456 के लगभग हुआ था तथा उनकी मृत्यु 1515 वि॰ संवत में हुई। नाम के लिए तो वे मुसलमान थे, पर उनके विचार हिन्दुओं के से थे। यद्यपि वे विवाहित थे, पर उनके विचार त्यागी मनुष्य जैसे थे। वे जाति प्रथा के कट्टर विरोधी थे। उनका इस बात में दृढ़ विश्वास था कि केवल ईश्वर भक्ति से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। उन्होंने सभी प्रकार के आडम्बरों की निन्दा की। कबीर ने गुरु को अति उच्च स्थान प्रदान किया है। सच्चा गुरु केवल भगवान की कृपा से ही

मिलता है। गुरु के माध्यम से ही शिष्य ईश्वर के समीप पहुँच सकता है। कबीर ने अपने उपदेशों में ईश्वर और मानव जाति के प्रति प्रेम पर बल दिया। उन्होंने अच्छी संगति की अत्यधिक प्रशंसा की।

प्रो० बी० एन० लूनिया के मतानुसार, 'कबीर की शिक्षाओं पर, जो रहस्यवाद से ओत प्रोत थी इस्लाम के सूफी संतों का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कबीर एक निर्मल भविष्य के स्वप्नदृष्टा थे जिसमें असत्य और असमानता तथा आडम्बर और अलंकार का सर्वथा अभाव था। वे समाज के दृढ़ सचेतक, निर्भय आलोचक, हिंदू मुस्लिम समन्वय के प्रथम प्रयासक, मध्य वर्ग के प्रणेता, मार्ग दर्शक, हिंदू मुस्लिम एकता के महान् अग्रदूत और विशुद्ध मानव धर्म के प्रशस्त प्रचारक तथा महान धार्मिक क्रांति कारक थे।'

कबीर-समाज सुधारक के रूप में—कबीर का महत्त्व एक कवि या साहित्यिक की अपेक्षा एक सुधारक के रूप में अधिक है। डॉ० यूसुफ हुसन के मतानुसार, उत्तरी भारत के विभिन्न वर्गों और धार्मिक समुदायों के मतभेदों का मान्य उपायों द्वारा अंत करना कबीर का प्रमुख उद्देश्य था। वे वर्णाश्रम-प्रथा के साथ ही अंधविश्वासों पर आधारित धर्मों की शत्रुता का अथवा दूसरों की मूर्खता से लाभ उठाकर उन्हें भ्रष्ट करने वाले एक स्वार्थी अल्पसंख्यक समुदाय का उन्मूलन करना चाहते थे। साथ साथ रहने वाले लोगों के बीच में सामाजिक एवं धार्मिक शांति स्थापित करने के आकांक्षी थे, क्योंकि धर्म के नाम पर उन्हें एक दूसरे से अलग कर दिया गया था।

कबीर पूर्ण शक्ति के साथ उन परम्पराओं का खण्डन करते रहे जो ऊँच-नीच की भावनाओं को उत्साहित करती थी। कबीर के युग में—पन्द्रहवीं शताब्दी में—सामाजिक समानता की बात करना एक अनोखापन था। प्रारम्भ में अवश्य ही उन्हें बड़े विरोध का सामना करना पड़ा होगा, परन्तु वे अपने विचारों में दृढ़ रहे और मानव समानता पर जीवन भर बल देते रहे। एक विद्वान के शब्दों में "कबीर का व्यक्तित्व क्रांतिकारी था। उनका यह व्यक्तित्व ही भक्त प्रेमी तथा शुद्ध मानव की विभिन्न धाराओं में बहा है। उनके व्यक्तित्व में सर्वत्र एक प्रखरता, निश्छलता तथा स्पष्टता है।" उनके सामाजिक सुधार की उल्लेखनीय विशेषताएँ निम्न लिखित थी

(1) जाति प्रथा व ऊँच-नीच की भावना की निंदा—डॉ यूसुफ हुसन के अनुसार कबीर जाति प्रथा के अन्त के बारे में सुनिश्चित थे। वे इसका निरंकुश और अन्यायपूर्ण मानते थे तथा उसकी खुलकर निंदा करते थे, जैसा कि उनसे पहले किसी सुधारक ने नहीं किया। उन्होंने शूद्रों के लिये अन्य जातियों के बराबर सामाजिक समानता की मांग की। उन्होंने जाति भेद का खंडन करते हुए मनुष्य की समानता पर बल दिया और इस बात की घोषणा की कि ईश्वर के उच्च सिंहासन के सम्मुख

ऊँच और नीच, हिन्दू और मुसलमान सभी समान हैं। कबीर ने स्वयं कहा था "यह क्या बात है कि एक व्यक्ति जन्म से शूद्र होता है और अपनी मृत्यु तक शूद्र रहता है ? ब्राह्मण स्वयं अपने लिए जनेऊ बनाता है और उसे धारण करता है। यदि ब्राह्मणी से जन्म लेने वाला ब्राह्मण है, तो तेरा जन्म दूसरे ढंग से क्यों नहीं होता है ?"

(2) बाह्य पवित्रता का उपहास—कबीर ने बाह्य पवित्रता और स्पर्श द्वारा अपवित्र होने के विचार का अति व्यंग्यात्मक भाषा में उपहास किया है। उनका कथन था "मुझे बताइये कि अपवित्रता क्या है ? यह किस प्रकार उत्पन्न होती है ? तुम्हारे भोजन में और पानी में, जिससे तुम अपना मुँह साफ करते हो अपवित्रता है। मछलियाँ, कछुआ और मगरों के रूप में नदी रक्त से ओत प्रोत है। ओ पण्डित ! तुम भोजन करने के लिए पृथ्वी पर बैठते हो, पर पृथ्वी अपवित्र है। पग पग पर उसमें लोग दफन हैं और वे मिट्टी हो गये।"

(3) मानव कल्याण पर बल—कबीर ने आध्यात्मिक समस्याओं के बजाय मानव आचरण की समस्याओं पर अधिक बल दिया है। उन्होंने अच्छी संगति की अत्यधिक प्रशंसा की और कहा—"मनुष्य जैसी संगति में रहता है, वैसा ही उसका आचरण और स्वभाव हो जाता है।"

कबीर—धार्मिक सुधारक के रूप में—डा० यूसुफ हुसैन के अनुसार, कबीर की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य एक ऐसे मार्ग की खोज करना था, जिसको स्वीकार करके उत्तरी भारत की विभिन्न जातियों और धार्मिक सम्प्रदायों में समन्वय स्थापित हो सके। परंतु, कबीर ने नया धर्म स्थापित करने का कभी विचार नहीं किया। उन्होंने न तो हिन्दू धर्म और न इस्लाम धर्म को श्रेष्ठता प्रदान की, बल्कि उन्होंने दोनों धर्मों की अच्छी बातों की प्रशंसा और बुरी बातों की निन्दा की। अतएव, उन्होंने धार्मिक सुधारों पर बल दिया जो निम्नानुसार है

(1) सर्वोच्च सत्ता एक है—कबीर ने हिन्दुओं और मुसलमानों को यह बताकर कि सर्वोच्च सत्ता एक ही है, हिन्दू और इस्लाम धर्मों की झूठी पृथकता का खण्डन किया। उन्होंने कहा—"भाई ! संसार के दो स्वामी कहाँ से आये ? मुझे बताओ कि अल्लाह, राम, केशव, हरि और हजरत नाम किसने रखे हैं ? सोने के सभी आभूषण एक ही अपूर्व धातु के बने हैं। संसार को दिखाने के लिए उपासना के दो रूप हैं, जिनमें से एक को नमाज और दूसरे को पूजा कहते हैं। महादेव और मुहम्मद, ब्रह्मा और आदम एक ही हैं। हिन्दू और तुर्क क्या है ? दोनों इसी संसार में रहते हैं। उनमें से एक वेद पढ़ता है और दूसरा कुरान, एक पण्डित है दूसरा मौलाना। यद्यपि मिट्टी के बर्तन एक ही वस्तु से बनते हैं, पर इनके नाम अलग अलग होते हैं। कबीरदास कहते हैं कि हिन्दू और मुसलमान दोनों भ्रम में हैं क्योंकि इनमें से किसी को भी ईश्वर नहीं मिला है।"

(2) धर्मों की झूठी प्रथकता का खण्डन—कबीर ने कहा कि धार्मिक भेद भाव अर्थहीन है। वास्तविक मानवता तो एक ही है। उनका कथन था-"ओ संन्यासियो! मैंने दोनों धर्मों की विधियाँ का देखा है। अपने गर्व के कारण हिन्दू और मुसलमान की विधि एक ही है। सतगुरु ने मुझे यह बात बताई है। जो बात कबीर कहता है उसे सुनो—राम और खुदा एक ही है।"

(3) मूर्ति पूजा व आडम्बरों की निन्दा—कबीर ने हिन्दुओं और मुसलमानों के अर्थहीन आडम्बरों और रस्मों की निन्दा की है। उन्होंने दिखावे के व्रत, रोजा, कब्रों की पूजा आदि के विरुद्ध आवाज उठाई। मूर्ति पूजा की निरर्थकता का विरोध करते हुए उन्होंने हिन्दुओं से कहा—

'पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहार।
तातें या चाकी भली, पीस खाय संसार॥

(3) तीर्थ यात्रा में अविश्वास—कबीर का हिन्दुओं की तीर्थ यात्रा और मुसलमानों के हज (मक्का की तीर्थ यात्रा) में अविश्वास था। उनका कहना था कि तीर्थ यात्रा करना व्यर्थ है। इससे कहीं आवश्यक है—भाव की शुद्धता, मालिक का भय, नैतिक आचरण सबके प्रति स्नेह और भाईचारे का व्यवहार।

(5) ब्राह्मणों और मुल्लाओं की निन्दा—कबीर ने पुरोहित ब्राह्मणों व मौलवियों को अन्ध विश्वासी, अहंकारी, सत्य भ्रष्ट व मूर्ख आदि कहकर निन्दा की। उन्होंने कहा कि ब्राह्मण और मौलवी जिन धार्मिक कृत्यों को करते हैं, उससे उनको मोक्ष नहीं मिलती है बल्कि लोगों में भेदभाव बढ़ता है।

निष्कर्ष—वास्तव में यह संत कबीर ही थे जिन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों में सामंजस्य की भावना स्थापित करने के लिए उत्साहपूर्वक हार्दिक प्रयत्न किये। उन्होंने प्रेम तथा धर्म का उपदेश दिया जिसका उद्देश्य समस्त वर्गों और सम्प्रदायों में एकता का विकास करना था। उन्होंने इस्लाम और हिन्दू धर्म की विस्तीर्ण खाई को भरने तथा उसमें सहयोग, समन्वय और सम्मिलन की भावना धर्मों के बाह्य भेदों रूढियों एवं आडम्बरों का खण्डन करते हुए उनकी आन्तरिक एकता पर अधिक जोर दिया। डा० ताराचन्द के शब्दों में कहा जा सकता है कि "कबीर के जीवन का उद्देश्य प्रेम के धर्म की शिक्षा देना था, जो सब जातियों और धर्मों को एक बनाये। उन्होंने हिन्दू धर्म और इस्लाम के उन तत्वों को अस्वीकार कर दिया, जो इस भावना के विरुद्ध थे।"

गुरु नानक [1469–1538 ई०] प्रमुख उपदेश

गुरु नानक सिख धर्म के संस्थापक एवं सिखों के आदि गुरु थे। वे अपने समय के अपूर्व धर्म सुधारक, रूढ़िविरोधी तथा अद्भुत युग पुरुष थे। मध्य युगीन धर्म सुधारकों में नानक का विशिष्ट स्थान है। कनिंघम के अनुसार, "प्रत्येक मौलिक धर्म-संस्थापक अपनी व्यक्तिगत, सामाजिक व ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुरूप

हो अपने धार्मिक सन्देश देता है जिसका पालन नानक ने भी किया।" गुरु नानक का जन्म 1469 ई० म पाकिस्तान स्थित वतमान'ननकाना' म हुआ था।

उद्देश्य और धम प्रचार—दुशवन्तसिंह के अनुसार, 'एक युवक के रूप म व उस समय प्रचलित भक्ति माग के सीधे सम्पक म आय। कबीर ने उन्ह काफी प्रभावित किया और पजाब की यात्रा करत समय उनका कई मुसलमान सूफी सतो स भी मिलना हुआ। सूफी शख फरीद के जीवन दशन ने उन्ह बहुत ज्यादा प्रभावित किया।" वास्तव मे, नानक विभिन्न धमा की बुराइया के विरोधी थे तथा साथ ही विभिन्न धर्मों की अच्छाइयों को स्वीकार करना अपना परम कतव्य समझते थे। डॉ० ताराच द के मतानुसार नानक क मस्तिष्क मे यह विचार सवथा स्पष्ट था कि उनका ज म केवल एक ही काय की सिद्धि के लिए हुआ है और वह काय है–लोगो को उस मुक्ति का माग बताय जो एक है तथा जिस पर एक ही ईश्वर का शासन है।"

डॉ० ए एल श्रीवास्तव ने गुरु नानक के उपदेशो के लक्ष्य के सम्ब धो म लिखा है 'नानक का उद्देश्य एक ही ईश्वर की मान्यता के आधार पर हिन्दू धम मे सुधार करना और हिन्दुओ एव मुसलमानो के बीच मैत्री पूण सम्ब ध स्थापित करना था।" प्रो० बी एन लूनिया के अनुसार, 'उन्होने मृत्यु पयन्त हिन्दू मुसलमानो के तीव्र मतभेदो को दूर करने की सफल चेष्टा की। इनके शिष्यो म हिन्दू व मुसलमान दोनो ही थे।"

गुरु नानक ने उपनिषद क विशुद्ध एकेश्वरवाद क सिद्धात को पुन जागत किया। कबीर के समान उन्होने एकेश्वरवाद का उपदेश दिया, मूर्ति पूजा की निन्दा की, बहुदेव पूजा का विरोध किया एव हिन्दू धम और इस्लाम के कमकाण्ड का प्रतिरोध किया। उनका उद्देश्य विभिन्न धर्मों के सघष का अन्त करना था। उनका कथन था कि ईश्वर नाम के सम्मुख जाति और कुल क व धन निरथक हैं। उन्होने ईमानदारी, विश्वासपात्रता, सत्य निष्ठा, दान दया, मद्य निषेध आदि उच्चतम आदर्शों के पालन करने का आदेश दिया। उनका मत था कि विश्व का परित्याग कर सन्यास लेना ईश्वर की दृष्टि म आवश्यक नही है, उसके लिए तो धार्मिक सन्यासी तथा भक्त व गृहस्थ सभी समान ह।

गुरु नानक के उपदेश प्रमुख विशेषताएं

गुरुनानक ने जो उपदेश दिए उनके विभिन्न पहलू और प्रमुख विशेषताएं निम्नानुसार हैं (1) हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल—नानक हिन्दू मुस्लिम एकता क प्रबल समथक थे। उ इन दोनो को पिता परमेश्वर की सतान मानते थे। नानक ने हिन्दुओ और मुसलमानो क मध्य द्वेष को मिटाने के लिए कहा "ईश्वर न मुझसे कहा कि तू ससार म जा और लोगो से एक ही ईश्वर का नाम लेने के लिए कह। सत्य का धर्म स्थापित कर और बुराई को दूर कर। दोना जातियो मे से

जो भी तेरे पास आए, उसे अपना शिष्य बना। जीवन को व्यर्थ नष्ट मत होने दे' निधना की रक्षा कर, याद रख कि 84 लाख योनियों में ईश्वर विद्यमान है।"

(2) एक सर्वोच्च सत्ता—नानक ने चरम सत्य ईश्वर को बताया और उसी को जनता के समक्ष रखा। उनका कहना था—"संसार भर का ईश्वर एक है, समस्त भेद मात्र मानव कृत हैं।" विश्व में या इससे बाहर कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिसका सम्बन्ध ईश्वर से नहीं है। जितनी भी सृष्टि है, वह सब उसी का नाम है।

(3) सच्चे धर्म पर जोर—नानक ने लोगों को सच्चा धर्म का अभिप्राय बताते हुए कहा "धर्म केवल शब्दों में नहीं है। जो व्यक्ति सब मनुष्यों को बराबर समझता है, वही धार्मिक है। मकबरों या कब्रिस्तानों में घूमना या समाधि में बैठना धर्म नहीं है। विदेशों में घूमना या तीर्थ स्थानों में स्नान करना धर्म नहीं है। संसार की अशुद्धताओं में शुद्ध रहो और इसी में तुम्हें सच्चा धर्म मिलेगा।" धार्मिक कट्टरता और अन्ध विश्वास किसी भी धर्म का हो, उन्हें अप्रिय था और वे उसका बिना किसी हिचक के विरोध करते थे।

(4) आडम्बरों की निन्दा—गुरुनानक ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बाह्य आडम्बरों की निन्दा की। उन्होंने गंगा स्नान, तीर्थ यात्रा, मूर्ति पूजा, ब्राह्मणों और मालवियों की प्रमुखता और इस्लाम के धर्म कर्मकाण्डों का विरोध किया। कबीर के समान नानक वेदों में विश्वास नहीं करते थे तथा मूर्ति पूजा को भी व्यर्थ समझते थे। मुसलमानों को उन्होंने उपदेश दिया था—"दया को अपनी मस्जिद बना, इंसाफ को अपना कुरान समझ, नेक कार्यों को अपना काबा बना और परोपकार को कलमा तथा खुदा की मर्जी को अपनी तस्बीह मान।" हिन्दुओं से उन्होंने कहा कि 'वही मनुष्य अपने धर्म के प्रति सच्चा है जो भगवान से डरता है और अच्छे काम करता है।"

(5) जाति प्रथा का विरोध—नानक का कहना था कि जाति की उच्चता के आधार पर गर्व करना अपने को ईश्वर से दूर ले जाना है। "याद रखो कि कर्म ही जाति को निश्चित करता है। मनुष्य अपने स्वयं के कार्यों से श्रेष्ठ अथवा पतित बनता है। जाति भेद की चिन्ता न करो। याद रखो कि ईश्वर का प्रकाश सब व्यक्तियों में है और उसके यहाँ जाति भेद नहीं।"

(6) चरित्र एवं हृदय की पवित्रता पर बल—गुरुनानक ने चरित्र निर्माण पर अत्यधिक बल दिया। उनका कथन था—"यदि मनुष्य का चरित्र ठीक नहीं है, तो वह जीवन में कभी सफल नहीं हो सकता। मनुष्य समाज में रहकर अपने कर्त्तव्यों का उचित प्रकार से पालन तभी कर सकता है जबकि उसका चरित्र अच्छा हो। उन्होंने हृदय की पवित्रता पर भी बल दिया।

(7) गुरु का महत्व—नानक ने कहा है "गुरु के मिलने से ही हमें सांसारिक जीवन के अन्त और आध्यात्मिक जीवन के प्रारम्भ का अनुभव होता है, गर्व का नाश होता है, मुक्तावस्था की प्राप्ति होती है और परमात्मा की शरण में स्थान मिलता है। संसार में चाहे जितने भी मित्र या सखा हों, पर गुरु के बिना ईश्वर के अस्तित्व का ज्ञान नहीं होता है।

निष्कर्ष—गुरुनानक हमेशा 'पुण्य की प्रशंसा, और 'पाप की निन्दा' पर बहुत जोर देते थे। इस तरह, गुरुनानक का जीवन एक प्रकाश की भांति तथा नैतिकता और चरित्र की निर्भयता लिए हुए है। उनका जीवन समस्त व्यक्तियों के दिलों में प्रेम, दया और धार्मिक सद्भावना जागृत करने के लिए प्रेरणा का स्रोत है। गुरुनानक के अनुयायी बाद में सिक्ख कहलाये और उन्होंने उनके सिद्धान्तों को ग्रंथ साहब में संग्रहीत किया।

सन्त दादू [1544-1603 ईस्वी]

भक्ति सम्प्रदाय के सन्तों में दादू का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। संत कबीर की तरह दादू ने भी रूढ़िवाद की कटु आलोचना करते हुए हिन्दुओं और मुसलमानों को नजदीक लाने का सफल प्रयत्न किया। इनका जन्म तो अहमदाबाद में हुआ पर इन्होंने अपने जीवन का विशेष समय राजस्थान के नराना और भराना नामक स्थानों में व्यतीत किया। अन्य संतों के समान इन्होंने भी मूर्ति-पूजा, जाति बन्धन, तीर्थ, व्रत, अवतार आदि अन्धविश्वासों के विरुद्ध आवाज उठाई। वे विभिन्न विरोधी सम्प्रदायों को भ्रातृत्व और प्रेम में बांधकर एक करना चाहते थे। अतएव इन्होंने एक अलग पंथ का निर्माण किया जो 'दादू पंथ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वे धार्मिक ग्रंथों की प्रभुता व प्रामाणिकता में विश्वास करने की अपेक्षा ईश्वर के साक्षात्कार में विश्वास करते थे। इसलिए उनका उपदेश था कि हम पूर्ण तया अपने आपको ईश्वर को समर्पित कर दें।

संत दादू के महान् त्याग, ऊँचे प्रेम और अथाह दया ने हजारों को बरबस खींच लिया था। संत दादू का कहना था कि "आत्म ज्ञान, जात पांत की निस्सारता तथा, संयम नियम भावाभिव्यक्ति सच्ची उपासना के ठोस साधन हैं।" उनके अधिकांश अनुयायी गृहस्थ और व्यवसायी थे। इनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्मिलित थे।

चैतन्य [1485-1533 ई०]

भक्ति आंदोलन की कृष्ण भक्ति शाखा आंदोलन के महानप्रवर्तकों में चैतन्य का नाम सबसे ऊपर आता है। बंगाल के नदिया ग्राम में उनका जन्म हुआ था और पच्चीस वर्ष की अवस्था में इन्होंने संन्यास ले लिया था। इन्होंने जाति-प्रथा की घोर निन्दा की। मनुष्य के विश्व-बन्धुत्व की घोषणा की और कर्मकाण्ड की निस्सारता प्रकट की। उनका मत था कि प्रेम और भक्ति, भजन और नृत्य के द्वारा आनन्द और उल्लास की ऐसी दशा उत्पन्न होती है जिसमें ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है।

उन्होंने हरि भक्ति का प्रचार किया एवं प्रेम दया भ्रातृ भाव का उपदेश दिया, संयासी जीवन के व पक्षपाती थे और संकीर्तन प्रथा के वे जनक थे। उन्होंने गोसाइयों के संघ को प्रतिष्ठित किया था। प्रेम इनके सम्प्रदाय की प्रधानता थी। इसने जन साधारण पर अत्यंत ही गहन और विस्तृत प्रभाव डाला। उन्होंने लोगों को कृष्ण भक्ति का मन्त्र दिया। इनका धर्म रस्म रिवाजों तथा आडम्बरों से मुक्त था। उन्होंने ज्ञान के स्थान पर प्रेम और भक्ति को मुख्य बताया।

परन्तु, चैतन्य का प्रभाव केवल धार्मिक क्षेत्र तक ही सीमित था, सामाजिक मामलों में यह परिलक्षित नहीं हुआ। चूंकि चैतन्य समाज सुधारक न थे इसलिए सामाजिक कुप्रथाओं की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। फिर भी, धर्म और ईश्वर की दृष्टि में वे सभी व्यक्तियों को समान मानते थे।

मीराबाई [1498-1546 ई०]

मीराबाई का नाम भक्तकालीन संतों में विशेष श्रद्धा के साथ लिया जाता है। मीराबाई राजस्थान के जोधपुर क्षेत्र के मेड़ता में उत्पन्न हुई थी। यह बाल्यकाल से ही स्वयं पद बनाने लगी थीं। संतों की भक्ति भावना का प्रभाव उन पर पड़ा और उन्होंने मत मत के अनुसार ईश्वर की भक्ति की।

मीरा की उपासना माधुर्य भाव की थी अर्थात वे अपने इष्टदेव श्री कृष्ण की भावना प्रियतम या पति के रूप में करती थीं। उन्होंने अपने भगवान का उल्लेख प्रियतम, योगी, सगुण ब्रह्म प्रणय लीलाकारी आदि रूपों में किया है। अस्तु, मीरा का भगवान प्रियतम पुरुष है, जिनकी दासी मीरा नारी है। मीरा का प्रेम ही उनकी साधना है। मीरा प्रेम योगिनी थी। उनकी प्रणयानुभूति और विरह पीड़ा की अभिव्यक्ति रहस्यवाद की भावना से ओत प्रोत हैं।

डा० ए० एल० श्रीवास्तव के अनुसार मीरा की प्रसिद्धि उनके भजनों के कारण हैं। ये भजन कृष्ण के प्रति प्रेम व भक्ति भावनाओं से ओत प्रोत थे। "मीरा के पद विश्व के भक्ति साहित्य के रत्न है।" मीरा ने शृंगार रस में अपने भावों का प्रकाशन किया है, पर इसमें वासना का सौरभ नहीं मिलता। सारांश में कृष्ण भक्त गायकों में मीरा का स्वर काफी ऊँचा और उनकी पुकार हृदय की सच्ची पुकार लगती थी जिसने कृष्ण भक्तों को अपनी ओर आकर्षित किया। अपने मधुरतम गेय पदों के कारण ही मीराबाई का नाम अमर हो गया।

नामदेव

15वीं शताब्दी में नामदेव ने महाराष्ट्र में भक्ति मार्ग को बहुत लोकप्रिय बनाया। नामदेव अपनी युवावस्था में ही कृष्ण भक्त हो गये और पतृक दर्जी के व्यवसाय के स्थान पर हरि कीर्तन का व्यवसाय अपना लिया। उनका मुख्य केन्द्र पण्डरपुर था। नामदेव ने सभी लोगों को प्रेम व भक्ति का पवित्र उपदेश दिया। वे जाति प्रथा के पक्ष में नहीं थे। उनके शिष्यों में सभी जातियों और

वर्गों के लोग थे। उन्होंने साहसपूर्वक परम्परागत रीति-रिवाजा और जाति-पाति के बंधनो को काटने का सफल प्रयास किया। अन्य मतों की भांति नामदेव भी एकेश्वरवादी थे और मूर्ति पूजा तथा पुरोहितो के नियन्त्रण एवं प्रभुत्व के विरुद्ध थे। उनकी मान्यता थी कि भक्ति के माध्यम से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। नामदेव भी हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक थे। उनके झूठे आडम्बरा के विरुद्ध थे। उनकी वाणी का नमूना प्रस्तुत है

"हिन्दू अन्धा, तुरको काना। दूवों ते ज्ञानी सयाना।"

"हिन्दू पूजे देहरा, मुसलमान मसीद।
नामा सोई सविया, जहाँ देहरा न मसीद।"

□ □ □

8

भारतीय पुनर्जागरण : कारण और परिणाम

I भारतीय पुनर्जागरण या पुनरुत्थान के कारण
II राजा राममोहनराय आधुनिक भारत के जनक !
III ब्रह्म समाज मूलभूत सिद्धान्त और योगदान
IV स्वामी दयानन्द व्यक्तित्व और योगदान
V आर्य समाज पुनर्जागरण मे योगदान
VI रामकृष्ण परमहंस व्यक्तित्व एव योगदान
VII स्वामी विवेकानन्द भारतीय पुनर्जागरण मे योगदान
VIII थियोसोफीकल सोसायटी उद्देश्य एव योगदान
IX मुस्लिम समाज का पुनर्निर्माण अलीगढ आन्दोलन

"बिना पुनर्जागरण के कोई भी सुधार सम्भव नही है।"
—ई० बी० हैवल

भारतीय पुनर्जागरण—19वी शताब्दी, विशेषत इसका उत्तरार्ध, भारतीय इतिहास म एक उन्मेष चेतन और उत्थान का युग था। राजनीतिक कारण सामाजिक चेतना उत्पन्न करते हैं, सामाजिक चेतना राजनीतिक उत्थान का कारण बन जाती है। अस्तु जो कारण राजनीतिक चेतना के लिए उत्तरदायी थे, वे ही सामाजिक पुनरुत्थान के लिए प्रेरक सिद्ध हुए।

पुनर्जागरण शब्द का अर्थ है पुन जागना। इसका शाब्दिक अर्थ है 'पुनर्जीवन'। साधारणतया यह माना जाता है कि जब किसी देश में सामाजिक व धार्मिक क्षेत्रो म अत्य त हीन दशा हो जाती है तो कुछ कारक ऐसे उत्पन्न हो जाते हैं जो धार्मिक और सामाजिक ह्रास को रोककर इन क्षेत्रो म विकास करने का प्रयत्न करते हैं, इसी को पुनर्जागरण कहते हैं। "भारतीय पुनर्जागरण भारतीय सांस्कृतिक जीवन की नवीन यौवनावस्था है जिसने बिना प्राचीन सिद्धातो को तोडे नवीन वेष भूषा धारण करली थी। प्राचीन भारतीय संस्कृति ने ही वह मूलाधार प्रदान किया है जिस पर वतमान नवाभ्युत्थानोन्मुख भारत ने अपने भव्य भवन का

निर्माण किया है।" इस प्रकार भारतीय पुनर्जागरण प्रमुखतः एक भावना का विषय है जिसने राष्ट्र के विकास के साथ साथ धर्म, समाज और संस्कृति में विलक्षण परिवर्तन कर दिए हैं। आधुनिक भारत का विकास उन्नीसवीं सदी के भारतीय पुनर्जागरण का केवल एक अंग मात्र है। इस पुनर्जागरण ने भारतीय आत्मा को उसकी गहराई तक हिला दिया है और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महत्वशाली परिवर्तन उत्पन्न कर दिये हैं। आधुनिक भारत प्रत्येक विषय के लिए इस पुनर्जागरण का ऋणी है।

भारतीय नवाभ्युत्थान प्रारम्भ में एक बौद्धिक पुनर्जागरण था और इसने हमारे साहित्य, शिक्षा, कला और विचारधारा को प्रभावित किया। दूसरी पीढ़ी से यह एक नैतिक शक्ति हो गयी और इसने हमारे समाज व धर्म को सुधारा। तीसरी पीढ़ी में इसने प्रारम्भ में ही भारत का आर्थिक दृष्टि से आधुनिकीकरण करने का प्रयास किया और अन्त में राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त की।

भारत की सभ्यता और संस्कृति श्रेष्ठ है, उसमें प्रगति करने का साहस है और यह पश्चिमी सभ्यता के मुकाबले खड़ी हो सकती है, यह पुनर्जागरण आन्दोलन का आधार था। जीवन के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन और सुधार उसका व्यावहारिक स्वरूप तथा भारत के सामाजिक राजनीतिक आर्थिक, साहित्यिक, धार्मिक और कलात्मक क्षेत्र में एक नवीन चेतना प्रदान करना उसका परिणाम था।

भारत का पश्चिमी सभ्यता का अंग बनाने से रोकना, भारतीयों में आत्म गौरव और आत्म विश्वास उत्पन्न करना, परम्परागत धर्म और समाज में विभिन्न परिवर्तन करना तथा नवीन भारत का निर्माण करना भारतीय पुनरुद्धार आंदोलन की आधुनिक भारत को देन है। आरम्भ में पुनरुद्धार आंदोलन एक बौद्धिक परिवर्तन था, बाद में वह अनेक सामाजिक और धार्मिक सुधारों का आधार बना। अन्त में, उसने भारत के राजनीतिक आन्दोलन को जीवन प्रदान करने में सहयोग दिया। भारतीय जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र बाकी न रहा था जिसपर इस आन्दोलन का प्रभाव न पड़ा हो।

I भारतीय पुनर्जागरण या पुनरुत्थान के कारण

1 पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव—अपनी राजनीतिक सार्वभौमिकता और आर्थिक सत्ता के साथ साथ अंग्रेजों ने भारत में पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति का भी बीजारोपण कर दिया। इससे भारत की लड़खड़ाती हुई व्यवस्था को गहरा आघात लगा। प्राचीनतम विचारधाराएँ, प्रणालियां तथा रूढ़ियाँ विलुप्त होने लगी और नवीन विचारों और प्रथाओं ने उनका स्थान ले लिया। सांस्कृतिक धाराओं का एक नवीन रूप दृष्टिगोचर होने लगा। इसके अतिरिक्त भारत में अंग्रेजों और उनके सुदृढ़ साम्राज्यवाद ने अनेक विरोधी तत्वों के मध्य हम शांति, राजनीतिक एकता और शासकीय सभ्यता दी। इससे राष्ट्रव्यापी पुनर्जागरण का मार्ग सुलभ हो गया।

(2) **विदेशों से सम्पर्क**—अंग्रेजी शासन काल में एक बार फिर भारतीयों का विदेशों से सम्पर्क स्थापित हुआ। यूरोप के विभिन्न राज्यों के अतिरिक्त चीन, अमरीका जापान, रूस आदि राज्यों से भी भारत का सम्पर्क हुआ। इससे भारत को विभिन्न देशों की सामाजिक व्यवस्था शासन, राजनीतिक विचार, आर्थिक व्यवस्था औद्योगीकरण आदि के बारे में जानकारी हुई। इससे भारत में अपने सुधार करने तथा प्रगति करने की भावना आयी।

(3) **अंग्रेजी भाषा की शिक्षा**—भारतीय पुनर्जागरण का एक प्रमुख कारण यहाँ की अंग्रेजी शिक्षा है। भारत में अंग्रेजी शिक्षा का आरम्भ ईसाई पादरियों और स्वयं भारतीयों के प्रयास से हुआ। सन् 1836 में यह भाषा शिक्षा का माध्यम स्वीकार कर ली गई। अनेक भारतीय उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंगलण्ड गये और उन्होंने अन्य यूरोपीय देशों की यात्रा भी की। अंग्रेजी भाषा ने पश्चिमी संस्कृति और सभ्यता के द्वार भारतीयों के लिए खोल दिये। पश्चिम के स्वतन्त्रता, समानता, जनतन्त्र और राष्ट्रीयता के विचारों से भारतीय प्रभावित हुए।

स्कूलों और कालेजों में दी जाने वाली शिक्षा ने लोगों के विचारों और दृष्टिकोण में खूब परिवर्तन कर दिया। इस अंग्रेजी शिक्षण ने भारतीय मस्तिष्क के बौद्धिक पृथक्करण को भंग कर दिया और उसे पाश्चात्य विज्ञान, साहित्य और इतिहास के सम्पर्क में ला दिया। फलस्वरूप, यहाँ ऐसी ही विशाल मानसिक प्रगति हुई जैसी यूरोप के राष्ट्रों में पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में पुनर्जागरण के समय हुई थी। 'हमारे नौजवान विद्यार्थियों के सामने नवीन विचारों का एक संसार खुल गया। धार्मिक व पौराणिक भूगोल काल्पनिक इतिहास और मिथ्या विज्ञान के स्थान पर, जिनसे वे परिचित थे अब पृथ्वी के रूप आकृति के विषय में गंभीर विशुद्ध सत्य, पश्चिम के नवीन विकसित सामाजिक व राजनीतिक विचार राष्ट्रों के उत्थान व पतन एवं प्रकृति के अपरिवर्तनशील नियम उनके ध्यान में आ गये। वस्तुतः भारतीय पुनर्जागरण अंग्रेजी साहित्य, आधुनिक दर्शन और विज्ञान के अध्ययन से आरम्भ होता है।

(4) **प्रारम्भिक ईसाई धर्म प्रचारक**—सन् 1813 के पश्चात् विदेशी ईसाई पादरियों ने काफी बड़ी संख्या में भारत आना शुरू कर दिया था। इन ईसाई धर्म-प्रचारकों ने भारतीय धर्मों का मजाक उड़ाया और भारत में ईसाई धर्म की श्रेष्ठता का प्रचार किया। शिक्षा, दान, अस्पताल, सेवा आदि सभी का उपयोग उन्होंने ईसाई धर्म के प्रचार के लिये किया। भारत सरकार ने भी उनके कार्य में उन्हें सहायता प्रदान की। इन प्रचारकों ने सामाजिक कुरीतियों को धर्म में सम्मिलित करके हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मों पर कठोर प्रहार करना शुरू किया। इस कारण भारतीय, मुख्यतया हिन्दू बहुत बड़ी संख्या में ईसाई धर्म को स्वीकार करने लगे। इस कारण हिन्दू और मुसलमानों को अपने अपने धर्म की रक्षा करने की ओर

सभ्यता की भारत को मूल देन यही थी जिसके द्वारा भारतीयो ने परम्परा और अन्ध विश्वास के आधार पर सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक प्रथाओ को मानने से इन्कार कर दिया तथा उन सभी को तर्क और बुद्धि के आधार पर जाचना शुरू कर दिया। मस्तिष्क की यह स्वतन्त्रता ही भारतीय पुनरुद्धार आन्दोलन का एक मुख्य कारण थी जिससे भारत मे धर्म, समाज, कला, साहित्य, अर्थ व्यवस्था, राजनीति आदि जीवन के सभी क्षेत्रो मे परिवर्तन करने की भावना जागृत हुई और भारतीय जीवन के सभी क्षेत्रो मे परिवर्तन हुए।

निष्कर्ष—उपर्युक्त सभी कारणो ने लोगो को झकझोर दिया और उन्हे युगो की कुम्भकर्णी निद्रा मे जाग्रत कर दिया। यह भारतीय पुनरुत्थान का सूत्रपात था। एक विद्वान के शब्दो मे, 'भूतकाल पर आलोचनात्मक दृष्टिकोण और भविष्य के लिए नवीन महत्वाकाक्षाएँ इस नवीन पुनर्जागरण की विशिष्टताएँ रही। धर्म और विश्वास का स्थान विवेक और न्यायसगत निर्णय ने ले लिया था, अन्धविश्वास ने विज्ञान को आत्म समर्पण कर दिया था, गतिहीनता का स्थान प्रगति ने ले लिया था। निर्दिष्ट दोषो और बुराइयो को दूर कर सुधार करने के तीव्र उत्साह ने युगो की उदासीनता व आलस्य पर विजय प्राप्त कर ली थी। शास्त्रो की परम्परागत अर्थों की समालोचनात्मक दृष्टि से जाच की गयी और नैतिकता तथा धर्म की नवीन धारणाओ ने सनातनी विश्वासो और प्रथाओ के ढाचे को परिवर्तित कर दिया।" नवीन विचार और भावनाएँ पहले तो लोगो के एक छोटे से समुदाय तक ही सीमित रही। धीरे धीरे ये लोगो के विस्तृत क्षेत्र मे प्रसारित हो गयी और अन्त मे उनका प्रभाव जन साधारण तक पहुँच गया।

पुनरुत्थान या पुनर्जागरण के परिणाम

भारतीय पुनरुद्धार आन्दोलन ने न केवल विभिन्न सामाजिक और धार्मिक सुधार आन्दोलनो को भारत मे जन्म दिया बल्कि उसने आर्थिक साहित्यिक, कलात्मक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रो मे भारतीयो को प्रभावित किया और जीवन के सभी अगो मे एक नवीन जागृति को जन्म दिया।

1 **राजनीतिक क्षेत्र**—इस क्षेत्र मे जो जागृति हुई, उससे राष्ट्रीयता की लहर समस्त देश मे फैल गयी और अग्रेजो के विरुद्ध सघर्ष व विद्रोह की भावना का उत्कर्ष हुआ। फलत महात्मा गाधी के नेतृत्व मे अग्रेजो से सघर्ष कर भारत ने अपनी स्वतन्त्रता पुन प्राप्त कर ली। पुनर्जागरण की भावना ने भारतीयो की सास्कृतिक एकता और गौरव का निर्माण किया। 'यह राष्ट्र महान था' की भावना से 'यह राष्ट्र महान है' की भावना को प्रोत्साहन मिला। पुनरुद्धार आन्दोलन के सभी नेता चाहे वे धर्म सुधारक हो या समाज सुधारक, साहित्यकार हो अथवा कलाकार, राष्ट्र प्रेमी भी थे।

2 **सामाजिक क्षेत्र**—इस क्षेत्र मे पुनर्जागरण की जो लहर व्याप्त हुई उसमे समाज की काया पलट हो गयी। इसके फलस्वरूप ही भारतीय समाज मे फैली

ध्यान देना पड़ा । इसी कारण 19वी शताब्दी के आरम्भ म अनेक सामाजिक और धार्मिक आन्दोलनो का भारत म सूत्रपात हुआ ।

(5) भारतीय प्रेस, समाचार पत्र–पत्रिकाएँ और साहित्य—पुनरुत्थान एव धार्मिक व समाज सुधार आन्दोलन के लिए भारतीय छापाखान, समाचार पत्र, पत्रिकाये और साहित्य सशक्त सहायक और उत्तेजक प्रमाणित हुए ।

हमने अपनी प्राचीन सास्कृतिक पतृक सम्पत्ति को उन योरोपीय लोगा के प्रयत्नो से ढूँढ लिया, जिन्होंने भारतीय साहित्य और इतिहास का अध्ययन किया और ग्रन्थो को प्रकाशित किया । विलियम जोन्स और मैक्समूलर जसे अनेक विद्वाना न भारतीय प्राचीन ग्रन्था का अध्ययन किया, अग्रेजी म उनका अनुवाद किया और उन्हे प्रकाशित कर विश्व को प्रकट किया कि ये ग्रन्थ ससार की सभ्यता की अमूल्य निधिया हैं । पश्चिम के विद्वाना ने भारत की अनेक प्राचीन कला कृतियो और सभ्यता के केन्द्रो की खोज की तथा उनसे प्राचीन भारतीय सभ्यता की श्रेष्ठता स्थापित की । उनके अध्ययन से जब भारतीयो को यह पता चला कि पश्चिम के विद्वान भारतीय धम दशन, साहित्य और कला को इतना श्रेष्ठ बताते है तो उन्हे भी अपने आत्म-सम्मान और गौरव का ध्यान आया, अपने धम और सस्कृति म उनका विश्वास उत्पन्न हुआ तथा उन्होने उसकी श्रेष्ठता स्थापित करने का प्रयत्न किया ।

भारत म अनेक पत्र पत्रिकाओ का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । वे भारतीया को बाह्य विश्व के घनिष्ठ सम्पक म ही नही लाये अपितु इन्होने हमारे देश की राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक बुराइया का भी हमारे सामन प्रकट कर दिया । हम अपनी दुदशा का आभास हुआ और इनको दूर करन के लिए हमारे शिक्षित वग न दृढ सकल्प किया ।

(6) पश्चिमी सभ्यता का प्रचार—भारत म पुनर्जागरण का एक मूल कारण भारत में पश्चिमी सभ्यता का प्रचार भी था । भारत मे अनेक व्यक्ति ऐसे हो गये जिनके लिए पश्चिमी सभ्यता आदश बन गयी । पश्चिमी विचार, वेशभूषा, खान पान समाज और धम स वे इतने अधिक प्रभावित हो गय कि वे उसकी नकल करन म अपना गौरव मानन लगे । भारतीय सभ्यता धम और समाज म उनको विश्वास न रहा और एक समय ऐसा आया जबकि यह प्रतीत हुआ कि सम्पूर्ण भारत पश्चिमी सभ्यता का शिकार हो जायगा । परन्तु यह स्थिति अधिक समय तक न रही । अनक भारतीया न पश्चिम की ओर की इस घुड दौड का विरोध किया और अपनी आर सभ्यता और धम म विश्वास करन की प्रेरणा भारतीयो को प्रदान की ।

पश्चिमी सभ्यता न अध विश्वास के स्थान पर तक का श्रेष्ठ बताया । व्यक्ति की भावना का बाह्य बधनो से अधिक महत्त्व दिया और इस प्रकार सामाजिक न्याय और राजनीतिक अधिकारो की नवीन भावना का जन्म दिया । साराश म, पश्चिमी

सभ्यता की भारत को मूल देन यही थी जिसके द्वारा भारतीयो ने परम्परा और अंध विश्वास के आधार पर सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक प्रथाओं को मानने से इन्कार कर दिया तथा उन सभी को तर्क और बुद्धि के आधार पर जाचना शुरू कर दिया। मस्तिष्क की यह स्वतन्त्रता ही भारतीय पुनरुद्धार आन्दोलन का एक मुख्य कारण थी जिससे भारत मे धर्म समाज, कला, साहित्य, अर्थव्यवस्था, राजनीति आदि जीवन के सभी क्षेत्रो मे परिवर्तन करने की भावना जागृत हुई और भारतीय जीवन के सभी क्षेत्रो मे परिवर्तन हुए।

निष्कर्ष—उपर्युक्त सभी कारणो ने लोगो को झकझोर दिया और उन्हे युगो की कुम्भकर्णी निद्रा से जाग्रत कर दिया। यह भारतीय पुनरुत्थान का सूत्रपात था। एक विद्वान के शब्दो मे 'भूतकाल पर आलोचनात्मक दृष्टिकोण और भविष्य के लिए नवीन महत्वाकांक्षाएँ इस नवीन पुनर्जागरण की विशिष्टताएँ रहीं। धर्म और विश्वास का स्थान विवेक और न्यायसंगत निर्णय ने ले लिया था, अंधविश्वास ने विज्ञान को आत्म समर्पण कर दिया था, गतिहीनता का स्थान प्रगति ने ले लिया था। निर्दिष्ट दोषो और बुराइयो को दूर कर सुधार करने के तीव्र उत्साह ने युगो की उदासीनता व आलस्य पर विजय प्राप्त कर ली थी। शास्त्रो की परम्परागत अर्थो की समालोचनात्मक दृष्टि से जांच की गयी और नैतिकता तथा धर्म की नवीन धारणाओ ने सनातनी विश्वासो और प्रथाओ के ढाचे को परिवर्तित कर दिया।" नवीन विचार और भावनाएँ पहले तो लोगो के एक छोटे से समुदाय तक ही सीमित रहीं। धीरे धीरे ये लोगो के विस्तृत क्षेत्र मे प्रसारित हो गयी और अन्त मे उनका प्रभाव जन साधारण तक पहुँच गया।

पुनरुत्थान या पुनर्जागरण के परिणाम

भारतीय पुनरुद्धार आन्दोलन ने न केवल विभिन्न सामाजिक और धार्मिक सुधार आन्दोलनो का भारत मे जन्म दिया बल्कि उसने आर्थिक, साहित्यिक, कलात्मक राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रो मे भारतीयो को प्रभावित किया और जीवन के सभी अंशो मे एक नवीन जागृति को जन्म दिया।

1 राजनीतिक क्षेत्र—इस क्षेत्र मे जो जागृति हुई उसमे राष्ट्रीयता की लहर समस्त देश मे फैल गयी और अंग्रेजो के विरुद्ध संघर्ष व विद्रोह की भावना का उत्कर्ष हुआ। फलत महात्मा गाधी के नेतृत्व मे अंग्रेजो से संघर्ष कर भारत ने अपनी स्वतन्त्रता पुन प्राप्त कर ली। पुनर्जागरण की भावना ने भारतीयो की सांस्कृतिक एकता और गौरव का निर्माण किया। 'यह राष्ट्र महान था' की भावना से 'यह राष्ट्र महान है' की भावना को प्रोत्साहन मिला। पुनरुद्धार आन्दोलन के सभी नेता चाहे वे धर्म सुधारक हो या समाज सुधारक, साहित्यकार हो अथवा कलाकार, राष्ट्र प्रेमी भी थे।

2 सामाजिक क्षेत्र—इस क्षेत्र मे पुनर्जागरण की जो लहर व्याप्त हुई उसमे समाज की काया पलट हो गयी। इसके फलस्वरूप ही भारतीय समाज मे फैली

कुप्रथाओं—सती प्रथा, बाल वध, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, अशिक्षा, छुआ छूत, ऊँच नीच और जटिल जाति प्रथा आदि का निवारण सम्भव हो सका। देश की सामाजिक दशा सुधर गयी। फलत आज भारतीय समाज प्रगतिशील हो रहा है। अब भारतीय समाज के अनेक प्रतिक्रियावादी तत्व समाप्त कर दिये गये हैं।

3 धार्मिक क्षेत्र—पुनरुद्धार आन्दोलन का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव 19वीं सदी के धर्म सुधार आन्दोलन थे। प्राय सभी धर्मों ने एक नवीन चेतना का अनुभव किया। ईसाई, पारसी, इस्लाम और मुख्यत हिन्दू धर्म में जो जागृति की भावना आयी, उसने भारतीय समाज और राष्ट्र को एक नवीन जीवन प्रदान किया। विभिन्न धार्मिक आन्दोलनों ने हिन्दू धर्म को उसके दोषों से मुक्त किया और उसके सत्य सिद्धान्तों की खोज निकाला। अब अध्यात्मवाद भारत की श्रेष्ठता का प्रतीक है।

4 आर्थिक दृष्टिकोण—भारतीय काफी समय से अन्धविश्वासी और परम्परावादी रहे हैं। पश्चिमी सभ्यता, विचारधारा और अंग्रेजी शिक्षा ने उनकी जड़ता को समाप्त कर दिया। तर्क के आधार पर अच्छाई और बुराई का निर्णय करने की भावना को जीवन के सभी क्षेत्रों में विकास करने की प्रेरणा प्रदान की।

5 साहित्यिक क्षेत्र—इस क्षेत्र में जो पुनर्जागरण हुआ। उसके फलस्वरूप पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत का अध्ययन किया, जिससे भारत विषयक अध्ययन का उदय हुआ। भारतीयों को अपने राष्ट्र के विलुप्त यश गौरव और अतीत के स्वर्णिम इतिहास का प्रमाणिक परिचय मिला। भारतीयों में बौद्धिक जागरण हुआ जिसकी विलक्षण अभिव्यक्ति प्रान्तीय भाषाओं के विकास में हुई।

निष्कर्ष—इस प्रकार भारतीय पुनरुद्धार आन्दोलन ने भारतीय जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया। धर्म, समाज, राजनीति कला, साहित्य आदि क्षेत्रों में वह भारतीयों के विकास का आधार बना। उसने उस आधार-शिला का निर्माण किया, जिस पर आधुनिक भारत की नींव है।

II राजा राममोहन राय
आधुनिक भारत के जनक
(Raja Ram Mohan Ray–The father of Modern India)

'भारत नवोत्थान की धारा के क्रम में छोटे बड़े अनेक व्यक्तित्व उत्पन्न हुए हैं। यह धारा अब भी प्रवाह में है और आज भी ऐसे व्यक्तियों का आविर्भाव अवरुद्ध नहीं हुआ है। किन्तु इन सब व्यक्तियों के आध्यात्मिक पिता राममोहन राय हैं।'

—प्रो० एच० सी० जकरिया

भारतीय धार्मिक तथा सामाजिक विकास के क्षेत्र में राजा राममोहन राय का नाम सबसे अग्रणी है। वह ही आधुनिक सामाजिक सुधार आन्दोलन के जनक थे। वह भारतीय पुनरुत्थान के प्रथम और सम्भवत सबसे महान् तपस्वी थे।

डॉ० के० एम० पणिक्कर के शब्दो म, "उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षो मे इस भारत के वक्ष स्थल पर उस मनीषी ने पदार्पण किया जिसे भारतीय पुनरुद्धार का जन्मदाता कहा जा सकता है।"

राममोहन राय एक दूरदर्शी प्रणेता थे। वे आधुनिक युग के प्रथम भारतीय बौद्धिक थे। उन्होने समझ लिया था कि भारत भविष्य म किस दिशा की ओर मुडेगा और बडे साहस से उन्होने यूरोपीय विचार और विज्ञान का स्वागत किया। लेकिन, जहा एक ओर वे अग्रेजी भाषा तथा पाश्चात्य विद्याओ का स्वागत करने को तैयार थे, वही दूसरी ओर वे अपने धर्म, अपनी परम्परा और अपने विश्वासो के प्रति आस्थावान थे। राममोहन राय का दृष्टिकोण समन्वयवादी था। उन्होने भारतीयता और यूरोपीयता के उत्तम तत्वो का समावेश करके आधुनिक भारत के निर्माण का ठोस आधार तैयार किया।

यूरोपीय उदार दृष्टिकोण से अत्यधिक प्रभावित होकर राममोहन राय इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यदि देश की काया पर से नैराश्य की केचुल उतार फेकनी है तो हिन्दू धर्म के सिद्धान्तो म और हिन्दुओ के सामाजिक लोकाचारो मे मौलिक परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

उनका कार्य क्षेत्र बहुत व्यापक था। उन्होने धार्मिक सुधार, सामाजिक जागृति, बौद्धिक कोलाहल और राष्ट्रीय उत्थान के लिए समान दृष्टि से कार्य किया। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी तथा उनके कार्य कलाप से समाज तथा राष्ट्र हर प्रकार से प्रभावित हुआ। इस कारण उनके योगदान की चर्चा करते समय यह जरूरी है कि सभी पहलुओ मे उनके विचारो का अध्ययन किया जाय।

संक्षिप्त जीवन परिचय—राममोहन राय का जन्म 22 मई 1772 ई० म बगाल के एक कुलीन ब्राह्मण परिवार म हुआ था। 12 वर्ष की अवस्था मे यह पटना विद्याध्ययन के लिए भेजे गये। जब वह मुश्किल से 15 वर्ष के थे, तब उन्होने फारसी मे एक छोटी सी पुस्तिका लिखी जिसम उन्होने एकेश्वरवाद की प्रशसा की और मूर्ति पूजा का खडन किया जिसके बारे म उनका कहना था कि वह वेदो म नही है। उन्हे कट्टरपथी परिवार ने घर से बाहर निकाल दिया। कहा जाता है कि वह तिब्बत गए और वहा बौद्ध मत का अध्ययन किया। वह पटना म रहकर अरबी तथा फारसी का अध्ययन कर चुके थे बनारस मे रहकर उन्होने सस्कृत म भी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। कुछ दिन उपरान्त वह कम्पनी सरकार की नौकरी मे आ गये। सन 1805 से 1814 ई० तक उन्होने विभिन्न पदो पर ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी म नौकरी की। वहा रहते हुए उन्होने अग्रेजी म भी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

राममोहन राय के हृदय म मानवता का स्रोत उमड रहा था। उन्हे एक धार्मिक और सामाजिक सुधारक बनना था। उन्होने कम्पनी की सेवा को लात मार दी और सन् 1814 म नौकरी से त्यागपत्र देकर, अपने देश की जनता जनार्दन की सेवा क्षेत्र म कूद पडे। वे कलकत्ता म रहने लगे और अपने धार्मिक विचारो का प्रचार

करन लगे। क्योंकि व संसार के समस्त प्रमुख धर्म ग्रन्थों को मूलरूप में पढ़ने
में समर्थ थे, इस कारण वे संसार के सभी प्रमुख धर्मों की तुलना करने में सक्षम
सन् 1815 में इन्होंने 'आत्मीय सभा' स्थापित की। सन् 1819
'वेदान्त सूत्र' का सार बंगाली और अंग्रेजी में प्रकाशित किया तथा चार
ईश, मुण्डक, कठ और केन का अनुवाद भी प्रकाशित किया। वे हिन्दुत्व को
वेदान्त की ओर ले जाना चाहते थे। सन् 1828 ई० में शुद्ध एकेश्वरवाद का उप...
लिए उन्होंने कलकत्ता में 'ब्रह्म समाज' संस्था की स्थापना की। सन् 1833...
इंग्लैण्ड-प्रवास के दौरान अचानक उनकी मृत्यु हो गई। नताजी सुभाषचन्द्र...
ने कहा है कि, "वे भारतीय पुनर्जागरण के मसीहा थे।"

राममोहन राय द्वारा धार्मिक सुधार

डॉ० के० एम० पणिक्कर ने लिखा है कि, धार्मिक सुधार में राममोहन...
ने जो योगदान किया उसको भारतवासी भूल नहीं सकते। राममोहन...
की धार्मिक विचारधारा बहुत बुद्धिवादी, हिन्दू धर्म की परम्परा से असंबद्ध...
आधुनिक विचारों से इतनी ओत प्रोत थी कि जनता पर समष्टि रूप में उसका...
बड़ा प्रभाव नहीं पड़ा। परन्तु, फिर भी इसने बंगाल के मध्यम वर्ग को उस...
आहार प्रस्तुत किया, जब वे नैराश्य में डूब रहे थे और इस प्रकार हिन्दू धर्म को...
भारी संकट से बचा लिया।

हिन्दू धर्म को रूढ़ियों से मुक्त करके वे उसे एक नया रूप देना चाहते थे...
हिन्दू जनता धर्म के विषय में बिल्कुल पौराणिक संस्कारों से भरी हुई थी।...
चट्टान को तोड़कर वे हिन्दू हृदय को शुद्ध धर्म भावना से भरना चाहते थे।...
रामधारीसिंह 'दिनकर' के अनुसार, "हिन्दुत्व की पवित्रता, इस्लाम की रुचि...
ईसाइयत की सफाई (तक) उन्हें बेहद पसंद थी। एकेश्वरवाद में अटल विश्वास...
मूर्ति-पूजा का विरोध—ये दो बातें वैदिक धर्म में भी थीं और इस्लाम में भी।"

राजा राममोहन राय ने स्वयं लिखा है कि मुझे यह देखकर दुःख होता...
कि हिन्दुओं की धार्मिक व्यवस्था ऐसी है जिससे उनके राजनीतिक हितों की पूर्ति...
सहायता नहीं मिल सकती। उसके असंख्य विभाजन और उप विभाजन को...
देने वाली जाति-प्रथा ने उसको राजनीतिक भावना से बिल्कुल वंचित कर दिया...
और अगणित धार्मिक संस्कारों और सिद्धिकरण के नियमों ने उनको किसी...
कठिन और साहसपूर्ण कार्य को करने के अयोग्य बना दिया है। मेरे विचार में...
जरूरी है कि कम से कम उनके राजनीतिक व सामाजिक कल्याण के लिए...
धर्म में कुछ परिवर्तन होना चाहिए।" इससे स्पष्ट है कि राममोहन राय ने...
धार्मिक सुधारों की मांग की जो राष्ट्रीय हितों की पूर्ति कर सके और साम...
जागृति का माध्यम बन।

राजा राममोहन राय के हृदय में हिन्दुत्व से विशेष प्रेम था। परन्तु,...
18वीं शताब्दी वाले हिन्दुत्व से असन्तोष था। वे उसका परिष्कार करना...
थे। उसके परिष्कृत रूप में उन्हें निम्नांकित तत्व ग्राह्य थे —

कहना अधिक संगत होगा। सती प्रथा के उन्मूलन के लिये उन्होंने 'विधवा विवाह' का समर्थन किया तथा 'बहु-विवाह' का विरोध किया।

राममोहन राय ने स्त्रियों को समाज में उचित स्थान दिलाने के प्रत्येक तरीके को स्वीकार किया। वे स्त्रियों के समान अधिकार के पक्षपाती थे। वे बाल विवाह के भी विरोधी थे। उन्होंने अपनी पौत्री का विवाह 16 वर्ष की अवस्था में किया। उन्होंने दहेज प्रथा व कन्या वध का घोर विरोध किया। दहेज प्रथा के कारण माता पिता अपनी कन्याओं का जन्मते ही गला घोटकर मार देते थे। **"वास्तव में वे भारत में स्त्रियों के पक्ष में आवाज उठाने वाले प्रथम भारतीय थे।"**

राममोहन राय ने यह स्वीकार किया कि शिक्षा द्वारा ही सामाजिक न्याय प्राप्त किया जा सकता था। उनको यह अनुभव हुआ कि पश्चिमी ढंग की वैज्ञानिक शिक्षा और यूरोपीय विचारों से ओत प्रोत वर्ग सामाजिक चेतना और जागरूकता में योगदान देगा। उनका मुख्य अस्त्र तर्क था। हर प्रकार की सामाजिक व्यवस्था *के कारण समझने की उन्होंने कोशिश की और तब उन्हें प्रचलित सामाजिक कुरीतियों* का ज्ञान हुआ और उनका प्रबल विरोध करने में सफलता प्राप्त की। सामाजिक सुधार का औचित्य सिद्ध करते समय राममोहन राय ने शास्त्रों का कुशलतापूर्वक सहारा लिया।

व्यक्तिगत तथा राजनैतिक स्वतन्त्रता—राजा राममोहन राय ने व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य की आवश्यकता पर पूरा बल दिया। स्वतन्त्रता की चर्चा उन्होंने समय समय पर की। राष्ट्र के उत्थान के लिए उन्हें यह एक आवश्यक सिद्धांत दिखाई दिया। यूरोप की यात्रा करने वाले वे पहले प्रमुख भारतीय थे। डॉ० विपिनचन्द्र पाल ने स्वीकार किया है कि **"राजा साहब पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भारत में स्वतन्त्रता का संदेश प्रसारित किया।"** वे ब्रिटेन में प्रचलित राजनीतिक परंपरा से प्रभावित हुए थे। एडम ने ठीक ही लिखा है कि, **"स्वतन्त्रता की लगन उनकी आत्मा की सबसे जोरदार लगन थी और यह प्रबल भावना उनके धार्मिक, सामाजिक राजनीतिक आदि सभी कार्यों में फूट फूटकर निकल पड़ती है।"**

पत्रकारिता की स्वतन्त्रता के पक्षधर—राममोहन राय ने भारतीय पत्रकारिता को अपने पैरों पर खड़ा किया। उनके समय से ही देश में छापेखाने का कार्य शुरू हुआ था। सामाजिक और धार्मिक प्रश्नों पर विवाद करने का अथवा अपना अपना पक्ष प्रस्तुत करने का प्रेस बहुत अच्छा माध्यम था। सुधारवादी विचारों के प्रचार और प्रसार के लिए पत्रकारिता को उन्होंने अपना साधन बनाया। 1821 में उन्होंने 'संवाद कौमुदी' नामक सर्वप्रथम बंगला पत्र और एक वर्ष बाद ही 'मिरातुल अखबार' फारसी में निकाला। इन दोनों अखबारों का स्थापित करके राममोहन राय ने सामाजिक चेतना जगाने का कार्य किया। 'समाचार पत्र अधिनियम,' द्वारा समाचार पत्रों की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति पर रोक लगाने के विरुद्ध उन्होंने प्रबल आन्दोलन भी चलाया था। इस तरह वे वैचारिक स्वतन्त्रता के प्रबल समर्थक थे।

इस प्रकार राममोहन राय के नतृत्व मे ब्रह्म समाज धार्मिक क्षेत्र म बहुदेवतावाद, मूर्ति-पूजा, अ ध विश्वास, जादू-टोना का विरोधी था। वास्तव म, राममोहन राय विश्व-ब धुत्व तथा मानव धम के उपासक थ। उनकी निष्ठा किसी सम्प्रदाय विशेष तक सीमित न थी। वे सब धर्मों की मौलिक एकता व सत्यता म विश्वास करते थे। डा० के० एम० पणिक्कर के शब्दो म, "राममोहन राय ने भारत मे सव प्रथम बार धम निरपेक्ष आ दोलन को ज म दिया।"

राजा राममोहन राय के सामाजिक सुधार

राममोहन राय एक महान् चितक तो थे ही पर इसक साथ ही उ होन सक्रिय ढग मे समाज-सुधार का काय किया। डॉ० एस० शर्मा के मतानुसार, "वे धम के शुद्ध आध्यात्मिक पक्ष की अपक्षा उसके सामाजिक और राजनीतिक पक्ष के प्रति अधिक उत्सुक थे।' वास्तव म, वे सामाजिक जागति के प्र रक थ। सामाजिक सुधार के लिए उनका मत यह था कि इस दिशा म क्रमिक सुधार किया जाय। धीरे-धीरे सामाजिक सुधार की आवश्यकता जब सभी कोई स्वीकार करने लगगा तभी समाज म प्रचलित कुरीतिया और अ ध-विश्वासा को दूर किया जा सकेगा।

राममोहन राय के समय मे भारत की सामाजिक अवस्था बडी शाचनीय थी समाज मे नाना प्रकार की कुरीतिया का प्रचलन था जसे क या-वध, बाल विवाह, बहु विवाह, दहेज प्रथा सती प्रथा आदि। हि दू समाज की दयनीय अवस्था देखकर उम तपस्वी का अन्त करण क्र दन कर उठा। अस्तु, राममोहन राय न समाज म प्रचलित बुराइया को दूर करने का हर सभव प्रयत्न किया। उ होन तत्कालीन समाज म प्रचलित बाल विवाह, बहु विवाह सती प्रथा, शिशु हत्या आदि बुराइया का डटकर विरोध किया। दूसरी ओर उ हाने स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह अ तजातीय विवाह आदि सुधारा का खुलकर समथन किया। उ हान स्त्री और पुरुष दाना की समानता पर जोर दिया।

उ होंने जिस ढ ग से सती प्रथा के विरुद्ध सक्रियता दिखाई उससे उनक साहस का परिचय मिलता है। सती प्रथा के भीषण, बबर और अमानुषिक कृत्या ने उस मनीषी के हृदय को झकझोर दिया। जब उनकी विधवा भावज को सती होन के लिए बाध्य किया गया तो उनका अ त करण द्रवित हो उठा। उ हाने अपनी विद्या और ज्ञान के बल से समस्त भारतीय समाज शास्त्र और धमशास्त्र का म थन कर पौराणिक शास्त्रिया का मु ह ब द कर दिया। उ होने लाड बटिक का प्र रणा दी कि ध नियम हाकर सती प्रथा को अवध घाषित करें। यह राममोहन राय का ही नैतिक बल था जिसका अवलम्ब ग्रहण कर लाड बटिक ने 1829 ई० मे सती प्रथा विरोधी कानून पास किया। आज सती प्रथा की अवधता का महत्त्व उतना नहीं जान पडता परन्तु जि हाने उम भीषण दश्य को देखा है उनकी लेखनी द्वारा उल्लिखित दगान सुनकर बबरता का वह प्रकाण्ड ताण्डव दष्टि पथ के सामने साकार हा जाता ह। न जाने इस सती प्रथा का उद्दात नाम किसने दिया, इस ता विधवा दहन'

कहना अधिक सगत होगा । सती प्रथा के उन्मूलन के लिये उन्होंने 'विधवा विवाह' का समर्थन किया तथा 'बहु-विवाह' का विरोध किया ।

राममोहन राय ने स्त्रियों को समाज मे उचित स्थान दिलाने के प्रत्येक तरीके को स्वीकार किया । वे स्त्रियों के समान अधिकार के पक्षपाती थे । वे बाल विवाह के भी विरोधी थे । उन्होंने अपनी पौत्री का विवाह 16 वर्ष की अवस्था मे किया । उन्होंने दहेज प्रथा व कन्या वध का घोर विरोध किया । दहेज प्रथा के कारण माता पिता अपनी कन्याओं को जन्मते ही गला घोटकर मार देते थे । "वास्तव मे वे भारत मे स्त्रियो के पक्ष मे आवाज उठाने वाले प्रथम भारतीय थे ।"

राममोहन राय ने यह स्वीकार किया कि शिक्षा द्वारा ही सामाजिक न्याय प्राप्त किया जा सकता था । उनको यह अनुभव हुआ कि पश्चिमी ढग की वैज्ञानिक शिक्षा और यूरोपीय विचारो से ओत प्रोत वर्ग सामाजिक चेतना और जागरूकता में योगदान देगा । उनका मुख्य प्रश्न तर्क था । हर प्रकार की सामाजिक व्यवस्था के कारण समझने की उन्होंने कोशिश की और तब उन्हें प्रचलित सामाजिक कुरीतियों का भान हुआ और उनका प्रबल विरोध करने म सफलता प्राप्त की । सामाजिक सुधार का औचित्य सिद्ध करते समय राममोहन राय ने शास्त्रों का कुशलतापूर्वक सहारा लिया ।

व्यक्तिगत तथा राजनैतिक स्वतन्त्रता—राजा राममोहन राय ने व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की आवश्यकता पर पूरा बल दिया । स्वतन्त्रता की चर्चा उन्होंने समय समय पर की । राष्ट्र के उत्थान के लिए उन्हें यह एक आवश्यक सिद्धांत दिखाई दिया । यूरोप की यात्रा करने वाले वे पहले प्रमुख भारतीय थे । डॉ० बिपिनचन्द्र पाल ने स्वीकार किया है कि "राजा साहब पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भारत मे स्वतन्त्रता का संदेश प्रसारित किया ।" वे ब्रिटेन मे प्रचलित राजनीतिक परंपरा मे प्रभावित हुए थे । एडम ने ठीक ही लिखा है कि, "स्वतन्त्रता की लगन उनकी अन्तरात्मा की सबसे जोरदार लगन थी और यह प्रबल भावना उनके धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि सभी कार्यों मे फूट फूटकर निकल पडती है ।"

पत्रकारिता की स्वतन्त्रता के पक्षधर—राममोहन राय ने भारतीय पत्रकारिता को अपने पैरों पर खड़ा किया । उनके समय से ही देश म छापखाने का काम शुरू हुआ था । सामाजिक और धार्मिक प्रश्नो पर विवाद करने का अथवा अपना अपना पक्ष प्रस्तुत करने का प्रेस बहुत अच्छा माध्यम था । सुधारवादी विचारो के प्रचार और प्रसार के लिए पत्रकारिता को उन्होंने अपना साधन बनाया । 1821 म उन्होंने संवाद कौमुदी नामक सर्वप्रथम बंगला पत्र और एक वर्ष बाद ही मिरातुल अखबार फारसी म निकाला । इन दोनों अखबारों को स्थापित करके राममोहन राय ने सामाजिक चेतना जगाने का काम किया । समाचार पत्र अधिनियम द्वारा समाचार पत्रों की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति पर रोक लगाने के विरुद्ध उन्होंने प्रबल आन्दोलन भी चलाया था । इस तरह वे वैचारिक स्वतन्त्रता के प्रबल समर्थक थ ।

इस प्रकार राममोहन राय के नेतृत्व म ब्रह्म समाज धार्मिक क्षेत्र म बहुदवता वाद, मूर्ति-पूजा, अ ध विश्वास जादू-टोना का विरोधी था। वास्तव म, राममोहन राय विश्व-बन्धुत्व तथा मानव धम के उपासक थे। उनकी निष्ठा किसी सम्प्रदाय विशष तक सीमित न थी। वे सब धर्मों की मौलिक एकता व सत्यता म विश्वास करते थे। डॉ० के० एम० पणिक्कर के शब्दो म "राममोहन राय ने भारत मे सव प्रथम बार धम निरपेक्ष आन्दोलन को जन्म दिया।"

राजा राममोहन राय के सामाजिक सुधार

राममोहन राय एक महान् चिंतक तो थे ही पर इसके साथ ही उन्होने सक्रिय ढग मे समाज-सुधार का काय किया। डी० एस० शर्मा के मतानुसार, 'व धम के शुद्ध आध्यात्मिक पक्ष की अपक्षा उसके सामाजिक और राजनीतिक पक्ष के प्रति अधिक उत्सुक थे।" वास्तव म व सामाजिक जागृति के प्रेरक थे। सामाजिक सुधार के लिए उनका मत यह था कि इस दिशा म क्रमिक सुधार किया जाय। धीरे-धीरे सामाजिक सुधार की आवश्यकता जब सभी कोई स्वीकार करने लगेगा तभी समाज म प्रचलित कुरीतियो और अन्ध-विश्वासो को दूर किया जा सकेगा।

राममोहन राय के समय म भारत की सामाजिक अवस्था बडी शोचनीय थी समाज म नाना प्रकार की कुरीतियो का प्रचलन था जसे कन्या-बध, बाल विवाह, बहु विवाह, दहेज प्रथा सती प्रथा आदि। हिन्दू समाज की दयनीय अवस्था देखकर उस तपस्वी का अन्त करण क्रन्दन कर उठा। अस्तु, राममोहन राय न समाज मे प्रचलित बुराइयो को दूर करन का हर सम्भव प्रयत्न किया। उन्होंने तत्कालीन समाज मे प्रचलित बाल विवाह, बहु विवाह, सती प्रथा शिशु हत्या आदि बुराइयो का डटकर विरोध किया। दूसरी ओर उन्होने स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, अन्तर्जातीय विवाह आदि सुधारो का खुलकर समथन किया। उन्होने स्त्री और पुरुष दोनो की समानता पर जोर दिया।

उन्होने जिस ढ ग से सती प्रथा के विरुद्ध सक्रियता दिखाई उससे उनके साहस का परिचय मिलता है। सती प्रथा के भीषण, बबर और अमानुषिक कृत्यो ने उस मनीषी के हृदय को झकझोर दिया। जब उनकी विधवा भावज को सती होने के लिए बाध्य किया गया तो उनका अन्त करण द्रवित हो उठा। उन्होने अपनी विद्या और ज्ञान के बल से समस्त भारतीय समाज शास्त्र और धमशास्त्र का मन्थन कर पौराणिक शास्त्रियों का मुँह बन्द कर दिया। उन्होने लाड बटिक को प्रेरणा दी कि व निभय होकर सती प्रथा को अवैध घोषित करें। यह राममोहन राय का नैतिक बल था जिसका अवलम्ब ग्रहण कर लाड बटिक ने 1829 ई० मे सती विरोधी कानून पास किया। आज सती प्रथा की अवधता का महत्व उतना नहीं जान पडता परन्तु जिन्होने उस भीषण दश्य को देखा है, उनकी लेखनी से उल्लिखित वर्णन सुनकर बबरता का वह प्रकाण्ड ताण्डव दृष्टि पथ मे सामने खडा हो जाता है। न जाने इस सती प्रथा का उद्दात नाम किसने दिया इसे तो विधवा द...

III ब्रह्म समाज मूलभूत सिद्धांत और योगदान
(Brahma Samaj Basic Principles and Contribution)

18 वी सदी मे उच्च वर्ग के हिन्दुओ का धर्म अपने मूलरूप से बिल्कुल बदल गया था। बहुत कम लोग उपनिषदो या दर्शनो का अध्ययन करते थे और जो लोग करते भी थे, वे भी पौराणिक कथाओ और कर्म-काण्डो मे विश्वास करते थे। एकेश्वरवाद की कल्पना एकदम भुला दी गयी थी और बहुदेववाद और मूर्तिपूजा का बोलबाला था। ग्रह नक्षत्रो मे अन्ध विश्वास किया जाता था और कोई भी कार्य करने से पहले ज्योतिषी की राय ली जाती थी। त्यौहारो और तीर्थ यात्राओ का बहुत प्रभाव था। निम्नतर वर्ग भी भयंकर कुसंस्कारो मे डूबा हुआ था। देवता और देवियो के अलावा जड और चेतन पदार्थों, सांपो बंदरो, पेड पौधो, नदियो, पहाडो पत्थरो आदि की पूजा होती थी। जाति-पाति जोरो पर थी और सामाजिक ऊँच नीच का ईश्वरीय पद्धति माना जाता था। सती-दाह, नदियो मे बच्चो को चढाना जगन्नाथ के रथ के पहिया के नीचे पिसकर मर जाना पुण्य कार्य समझे जाते थे। उपर्युक्त शोचनीय परिस्थितियो को बदलने का महान कार्य करने का बीडा राजा राममोहन राय और उनके द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज ने उठाया।

ब्रह्म समाज का विकास काल—विद्वान फरकुहर के अनुसार ब्रह्म समाज के विकास को निम्नलिखित तीन कालो मे विभाजित किया जा सकता है—

प्रथमकाल (1828 से 1842) राजा राममोहन राय

धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रो की बुराइयो को दूर करने के लिए राजा राममोहन राय ने सन 1828 मे कलकत्ता मे 'ब्रह्म समाज' के नाम से एक नई धार्मिक सामाजिक संस्था की स्थापना की। इस संस्था मे वे सब लोग सम्मिलित हो सकते थे जो ईश्वर मे विश्वास रखते हो और मूर्ति पूजा के विरोधी हो। राममोहन राय का मत था कि वैदिक धर्म अत्यन्त पवित्र शुद्ध सरल और अनुकरणीय है और जिसमे मूर्ति पूजा, अन्ध विश्वास आदि को कोई स्थान नही है।

प्रथम काल मे ब्रह्म समाज की प्रतिष्ठा हुई और धीरे धीरे उसका कार्यक्रम निर्धारित हुआ। इस समाज के लिए कलकत्ता मे एक भवन का निर्माण किया गया। जिसका स्वामित्व ट्रस्टियो की एक समिति को सुपुर्द किया गया। सन् 1830 मे इस भवन के विक्रय पत्र को तैयार करते हुए **राममोहन राय** ने उसमे लिखा था कि **नस्ल, जाति व धर्म के भेद भाव रखे बिना सब प्रकार के लोग इस भवन मे आकर एक ईश्वर की उपासना कर सकते है और इस उपासना के लिए किसी प्रतिमा मूर्ति व कर्मकाण्ड का प्रयोग नहीं किया जायेगा।**" राममोहन राय ने यह स्पष्ट कर दिया था कि वे भगवान की एकनिष्ठ पूजा स्थापित करने की ही महत्त्वाकांक्षा रखते हैं। वह हार्दिक पूजा थी हाथ की नही, आत्म बलिदान की थी आत्मा के अधिकार की नही। इसने सब धर्मों तथा धर्म शास्त्रो के प्रति आदर प्रतिष्ठा की। सब धर्मा-

शिक्षा-सुधार अंग्रेजी शिक्षा पद्धति – सन् 1813 मे पौर्वात्य और पाश्चात्य दला के बीच यह संघर्ष मचा हुआ था कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो या संस्कृत राममोहन राय ने अंग्रेजी माध्यम का समर्थन किया। यद्यपि वे अपने युग के सबसे बडे प्राच्य भाषाओ के ज्ञाताओ मे से एक थे, तथापि उनका विश्वास और मन्तव्य था कि भारत की प्रगति केवल उदार शिक्षा के द्वारा होगी। जिसमे पाश्चात्य विद्या तथा ज्ञान की सभी शाखाओ की शिक्षण की व्यवस्था हो। उन्होंने ऐसे लोगो का पूर्ण समर्थन किया जिन्होंने अंग्रेजी भाषा तथा पश्चिमी विज्ञानो के अध्ययन को भारत मे प्रारम्भ किया। कलकत्ता का हिन्दू कालेज उन्हीं के सक्रिय सहयोग से 1817 ई० में खुल सका। *स्मरणीय रहे कि अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार भारतीय* **बुद्धिजीवियो और नवयुवकों मे क्रान्तिकारी विचारो के बीजारोपण का साधन बना।** 1825 मे उन्होने 'वेदान्त कालेज स्थापित किया। इस तरह भारतीय शिक्षा पद्धति को परिवर्तित करने के लिए राममोहनराय ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। वास्तव मे वे एक प्रकाण्ड शिक्षा शास्त्री थे।

मूल्यांकन—राजा राममोहन राय को 'नये युग का अग्रदूत' ठीक ही कहा गया है। वे भारतीय नवोत्थान के एक महान् पथ प्रदर्शक थे। मिस कालेट के शब्दो मे, *'इतिहास मे राममोहन राय का स्थान उस महान सेतु के समान है जिस* **पर चढकर भारतवर्ष अपने अथाह अतीत से अज्ञात भविष्य मे प्रवेश करता है। प्राचीन जाति प्रथा और नवीन मानववाद के बीच जो खाई है अन्ध विश्वास और विज्ञान के बीच जो दूरी है स्वेच्छाचारी राज्य और जनतंत्र के बीच जो अंतराल है तथा बहुदेववाद एवं शुद्ध ईश्वरवाद के बीच मे जो भेद है, उन सारी खाईयो पर पुल बाधकर भारत को प्राचीन से नवीन की ओर भेजने वाले महापुरुष राम मोहन राय हैं।"**

राजा राममोहनराय की भिन्न भिन्न भूमिका के संदर्भ मे यह श्रेय उनको ठीक ही दिया जाता है कि उन्होने आधुनिक भारत के निर्माण मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उनके द्वारा भारतीयता तथा यूरोपीयता के उत्तम तत्वो का समावेश करने का अभियान चलाया गया जिसका परिणाम आधुनिक भारत के रूप मे प्रकट हुआ। रवीन्द्रनाथ टगोर ने ठीक ही कहा है कि राममोहन राय ने भारत मे आधुनिक युग का सूत्रपात किया।' वास्तव मे वे इस भारत देश के सर्व प्रथम आधुनिक पुरुष थे।

अन्त मे, नन्दलाल चटर्जी के शब्दो मे कहा जा सकता है कि ' राजा राम **मोहन राय अवशिष्ट भूतकाल तथा उदित होते हुए भविष्य स्थिर अनुदारता तथा क्रान्तिकारी सुधार अन्ध परम्परागत तथा प्रगतिशील एकता के मध्य मानव-सम्बन्ध स्थापित करने वाले थे। संक्षेप मे, वे प्रतिक्रिया तथा प्रगति के मध्य बिन्दु थे।"**

III ब्रह्म समाज मूलभूत सिद्धांत और योगदान

(Brahma Samaj Basic Principles and Contribution)

18 वीं सदी में उच्च वर्ग के हिन्दुओं का धर्म अपने मूलरूप से बिल्कुल बहक गया था। बहुत कम लोग उपनिषदों या दर्शनों का अध्ययन करते थे और जो लोग करते भी थे, वे भी पौराणिक कथाओं और कर्म-काण्डों में विश्वास करते थे। एकेश्वरवाद की कल्पना एकदम भुला दी गयी थी और बहुदेववाद और मूर्तिपूजा का बोलबाला था। ग्रह नक्षत्रों में अन्ध विश्वास किया जाता था और कोई भी कार्य करने से पहले ज्योतिषी की राय ली जाती थी। त्यौहारों और तीर्थ यात्राओं का बहुत प्रभाव था। निम्नतर वर्ग भी भयंकर कुसंस्कारों में डूबा हुआ था। देवता और देवियों के अलावा जड़ और चेतन पदार्थों, सांपों बंदरों, पेड़ पौधों, नदियों, पहाड़ों, पत्थरों आदि की पूजा होती थी। जाति पांति जोरों पर थी और सामाजिक ऊँच नीच को ईश्वरीय पद्धति माना जाता था। सती-दाह, नदियों में बच्चों को चढाना, जगन्नाथ के रथ के पहियों के नीचे पिसकर मर जाना पुण्य कार्य समझे जाते थे। उपर्युक्त शोचनीय परिस्थितियों को बदलने का महान कार्य करने का बीड़ा राजा राममोहन राय और उनके द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज ने उठाया।

ब्रह्म समाज का विकास काल—विद्वान फरकुहर के अनुसार ब्रह्म समाज के विकास को निम्नलिखित तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है—

प्रथमकाल (1828 से 1842) राजा राममोहन राय

धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों की बुराइयों को दूर करने के लिए राजा राममोहन राय ने सन 1828 में कलकत्ता में ब्रह्म समाज के नाम से एक नई धार्मिक सामाजिक संस्था की स्थापना की। इस संस्था में वे सब लोग सम्मिलित हो सकते थे जो ईश्वर में विश्वास रखते हों और मूर्ति पूजा के विरोधी हों। राममोहन राय का मत था कि वैदिक धर्म अत्यन्त पवित्र शुद्ध सरल और अनुकरणीय है और जिसमें मूर्ति-पूजा, अंध विश्वास आदि का कोई स्थान नहीं है।

प्रथम काल में ब्रह्म समाज की प्रतिष्ठा हुई और धीरे धीरे उसका कार्यक्रम निर्धारित हुआ। इस समाज के लिए कलकत्ता में एक भवन का निर्माण किया गया। जिसका स्वामित्व ट्रस्टियों की एक समिति को सुपुर्द किया गया। सन् 1830 में इस भवन के विक्रय पत्र को तैयार करते हुए राममोहन राय ने उसमें लिखा था कि **नस्ल जाति व धर्म के भेद भाव रखे बिना सब प्रकार के लोग इस भवन में आकर एक ईश्वर की उपासना कर सकते हैं और इस उपासना के लिए किसी प्रतिमा मूर्ति व कर्मकाण्ड का प्रयोग नहीं किया जायेगा।**" राममोहन राय ने यह स्पष्ट कर दिया था कि वे भगवान की एकनिष्ठ पूजा स्थापित करने की ही महत्त्वाकांक्षा रखते हैं। वह हार्दिक पूजा थी हाथ की नहीं, आत्म बलिदान की थी आत्मा के अधिकार की नहीं। इसने सब धर्मों तथा धर्म शास्त्रों के प्रति आदर प्रतिष्ठा की। सब धर्मा-

वनभियो को उस प्रार्थना भवन में भ्रातृत्व भावना से पूजा इबादत करने का निमन्त्रण दिया गया।

राममोहन राय के नेतृत्व में ब्रह्म समाज में प्रतिपादित किया कि ईश्वर एक है। वह सब गुण सम्पन्न है। वही ससार का पालक, सृष्टा और रक्षक है। अत उसी की भक्ति करनी चाहिए। मानव मात्र को धार्मिक व सामाजिक बन्धनों को तोड़कर बिना किसी भेद भाव के ईश्वराधना करनी चाहिए। आध्यात्मिक उन्नति हेतु प्रार्थना, भक्ति सुकर्म सद व्यवहार तथा भगवान के प्रति समर्पण जरूरी है।

ब्रह्म समाज के मूलभूत सिद्धात—ब्रह्म समाज मूलत भारतीय था और इसका आधार उपनिषदों का अद्वैतवाद था। सक्षेप में, ब्रह्म समज के मूलभूत सिद्धात निम्नानुसार थे —

(1) **निर्गुण निराकार ब्रह्म का ध्यान व उपासना करना**—वही ससार का कर्ता धर्ता है। किसी प्रकार की मूर्ति, शिल्प, चित्र या किसी व्यक्ति या वस्तु का चित्र इस सभा के अहाते के अन्दर नहीं रखा जा सकता।

(2) ससार के सब मनुष्य चाहे वे किसी भी जाति अथवा धर्म के क्यों न हो, भाई भाई हैं और ईश्वर सबका पिता है। **छूआ छूत मानवता के नाम पर कलक है।**

(3) **अवतारवाद मिथ्या है**—ईश्वर अजन्मा है। वह न कभी पैदा होता है और न कभी ससार में उत्पन्न हुआ है।

(4) **सभी धर्म मौलिक रूप से एक हैं**—इस समाज में दूसरे धर्मों के प्रति गाली गलोज या उनका अपमान नहीं किया जा सकता। वहा केवल ऐसी प्रार्थना व कथाओं की अनुमति थी जो मानव को भगवद भक्ति की ओर आकर्षित करें। **सभी धर्मों के प्रति सदभावना रखनी चाहिए।**

(5) पाप का प्रायश्चित तथा निरोध ही दैवी क्षमा और मुक्ति का मार्ग है। मनुष्य को पाप का त्याग कर शुद्ध आचरण और परोपकार का मार्ग अपनाना चाहिए।

(6) कोई शास्त्र धर्म ग्रन्थ दैवीय नहीं है, प्रत्येक में कोई न कोई त्रुटि है।

ब्रह्म समाज के सिद्धात बड़े ही उदार व तर्क सगत थे। बुद्धिवाद की कसौटी पर कसा जाने वाला सिद्धात ही राममोहन राय को मान्य थे। वे तो मानव मात्र के प्रेम पुजारी थे। ब्रह्म समाज ने धार्मिक अन्ध विश्वासों एव सामाजिक कुरीतियों को कम करने में पूरा योगदान दिया। इस तरह प्रथमकाल में राममोहन राय ने मध्यकालीन कुरीतियों और आडम्बरों को हटाकर, उपनिषदों और वेदात के एकेश्वरवाद की स्थापना का प्रभाव पूर्ण प्रयास किया। डॉ० ताराचन्द के शब्दों में, 'इससे हिन्दुओं के धार्मिक इतिहास में एक अपूर्व क्रान्ति आयी।"

द्वितीयकाल (1842 से 1856 ई०) देवेन्द्र नाथ टैगोर

ब्रह्म समाज के दूसरे काल में देवेन्द्रनाथ ठाकुर (रवि द्रनाथ टैगोर के पिता) राजा राममोहन राय के स्थानापन्न आचार्य हुए। देवेन्द्रनाथ का परिवार बगाल का

बहुत ही सम्पन्न सुसस्कृत और प्रभावशाली परिवार था। वे स्वय बडे प्रतिभावान व्यक्ति थे। 1843 ई० मे ब्रह्म समाज का नेतृत्व सभालकर उन्होने इस सगठन को नयी दिशा दी। उनके प्रभाव के कारण समाज के अन्य लोग भी ब्रह्म समाज की ओर आकृष्ट हुए।

देवेन्द्रनाथ के प्रयत्नो से इस आन्दोलन ने एक पृथक समाज व सम्प्रदाय का रूप धारण कर लिया। उन्होने 'तत्वबोधिनी पत्रिका' के नाम से एक नवीन पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया और 'महानिर्वाणतत्र' के आधार पर एक नई दीक्षा विधि का सूत्रपात किया, जिसके अनुसार ब्रह्म समाज के सदस्यो को दीक्षा दी जानी शुरू की गयी। उन्होने 'तत्वबोधिनी पाठशाला' की भी स्थापना की। इनका उद्देश्य ईसाईयत की बाढ को रोकना था।

1743 ई० मे देवेन्द्रनाथ ने ब्रह्म समाज मे प्रवेश के पूर्व शपथ का विधान स्थापित किया। उसके अनुसार प्रत्येक ब्रह्म समाजी को मूर्ति पूजा का निषेध, ईश्वरोपासना तथा ईश्वर के प्रार्थनार्थ आचरण की शपथ लेनी पडती थी। वे सदव ईश्वर के ध्यान और उपासना मे निरत रहते थे। उन्होने उपनिषदो से सामग्री एकत्रित कर 'ब्रह्म धर्म' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा जिसमे ब्रह्म समाजियो की उपासना के नियम है। इस तरह देवेन्द्रनाथ टैगोर ने ब्रह्म समाज मे नयी जान डाली, उस सगठन को शक्तिशाली बनाया और उसकी विचार धाराओ, सस्कारो और सिद्धातो की पुन व्याख्या की।

तृतीय काल (1865–1878) केशव चन्द्र सेन

सन् 1857 के बाद ब्रह्म समाज मे एक नवीन परिवर्तन हुआ। इसी समय अग्रेजी शिक्षा एव पाश्चात्य सभ्यता के रग मे रगे हुए व्यक्ति केशव चन्द्र सेन ने ब्रह्म समाज मे प्रवेश किया। केशव चन्द्र सेन का जन्म 1838 मे बगाल के एक प्रतिष्ठित और सम्पन्न परिवार मे हुआ था। केशव चन्द्र कुशाग्र बुद्धि के थे और इन्हे आधुनिक शिक्षा भी मिली थी। उनके प्रवेश से ब्रह्म समाज मे नवीन स्फूर्ति और उत्साह का सचार हुआ।

केशव चन्द्र अत्यन्त उदार व्यक्ति थे। वे प्राचीन रूढियो एव व्यर्थ के धार्मिक बन्धनो के विरुद्ध थे। सन् 1861 मे 'इण्डियन मिरर' नामक समाचार पत्र के माध्यम से उन्होने अपनी मान्यताओ को जन साधरण के सामने रखा। केशवचन्द्र सेन जाति प्रथा का उन्मूलन चाहते थे। वे समाज सुधार के प्रबल समर्थक थे। वे धर्म के नैतिक पक्ष पर अधिक बल देते थे। 1862 मे केशव चन्द्र सेन ब्रह्म समाज के प्रधान आचार्य पद पर सुशोभित किये गये। ब्रह्म समाज के इतिहास मे पहली बार पुरोहिती कार्य करने का उत्तरदायित्व एक ऐसे व्यक्ति को मिला जो ब्राह्मण नही था। जाति प्रथा के बन्धनो को अस्वीकार करके ब्रह्म समाज ने एक साहसपूर्ण कार्य किया।

ब्रह्म समाज का विस्तार एवं सामाजिक सुधार—केशव चन्द्र की प्रेरणा से बहुत से एसे लाग ब्रह्म समाज मे शामिल हुए, जिन्होने कि सासारिक उत्कर्ष व सुख को लात मार कर अपने समाज के सिद्धाता के प्रचार म ही अपने जीवन का लगा देने का सकल्प कर लिया था। सामाजिक सुधार का प्रतिपादन करते हुए केशव चन्द्र न केवल बगाल क समाज तक ही अपना ध्यान सीमित नही रखा। वे सम्पूर्ण देश को सामाजिक विकास की परिधि म लाने के लिए आगे बढे। वे पहले प्रमुख व्यक्ति थे, जिन्हाने व्यापक भारतीय सुधार आन्दोलन को नई दिशा दी। उन्हाने स्त्री शिक्षा और विधवा विवाह का उत्साह से समथन किया तथा बाल विवाह बहु विवाह तथा पर्दा प्रथा का विरोध किया। सन् 1864 म केशवचन्द्र न उत्तर भारत का दौरा किया और बम्बई व मद्रास म ब्रह्म समाज की शाखाओ की स्थापना के लिए पृष्ठभूमि तयार की। 1870 ई० म वे यूरोप की यात्रा पर भी गये।

इग्लण्ड स वापस लौटकर केशव चन्द्र सेन न 'भारतीय सुधार समिति' की स्थापना की। इस सस्था न स्त्रियो की स्थिति म सुधार मजदूर वग की शिक्षा, सस्ते साहित्य का निर्माण नशाबन्दी आदि समाज सुधार के कायक्रम को अपनाया। अपने इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये, एक साप्ताहिक समाचार पत्र 'सुलभ समाचार' को केशव चन्द्र ने शुरू किया। स्त्रियो को उनके घरो पर शिक्षा देने के लिए एक उत्साही समुदाय बनाया। कुछ बुद्धिजीवी लोग सस्ती और उपयोगी पुस्तको के प्रकाशन म लग गय। उन्हान अन्तराजीय विवाह का जोरदार समथन किया, जिसके परिणामस्वरूप 1872 ई० मे सरकार न ब्रह्म समाजियो के अन्तजातीय विवाह को कानूनी मानन के लिए 'सिविल मैरिज एक्ट' पारित किया, जिसम कन्या (वधु) की अवस्था 14 वर्ष तथा लडके (वर) की अवस्था 18 वष कम से कम निश्चित की गई थी।

भारतीय पुनर्जागरण मे ब्रह्म समाज का महत्व

इस तथ्य से सभी विद्वान सहमत हैं कि ब्रह्म समाज ने समाज सुधार धम सुधार और आधुनिक भारत के निर्माण मे महत्त्वपूर्ण योग दिया। उसन पहली बार भारतीय समाज की आवश्यकताओ और समस्याओ का भारतीयो के सम्मुख रखा तथा बौद्धिक जागृति की ओर एक साहसी कदम उठाया, जिससे आगे आने वाल सुधारको को सहायता प्राप्त हुई। डा० एच० सी० जकरिया के शब्दो म कहा जा सकता है कि **"राममोहन राय और उनका ब्रह्म समाज हिन्दू धम, समाज और राजनीति मे उन सभी सुधार आन्दोलनों को आरम्भ करने वाले थे, जिन्होन पिछले 100 वर्षों म भारत मे उत्तेजना पैदा की और जिन्होने हमारे समय मे उसके अद्वितीय पुनर्जागरण को जन्म दिया।"**

ब्रह्म समाज एक सक्रिय सुधारवादी आन्दोलन था। शुरू म बगाल क सनातनी हिन्दुओ न ब्रह्म समाज क कार्यों का बहुत विरोध किया। व इस समाज के सदस्यो का विधर्मी और विजातीय समझन लगे। पर धीरे धीरे उनकी मनोवृत्ति म

अन्तर आने लगा। शिक्षा के प्रचार के साथ साथ अन्य हिन्दुओं ने भी अनुभव किया कि बाल विवाह बुरी बात है और स्त्री शिक्षा व विधवा विवाह सामाजिक उन्नति के के लिए उपयोगी है। 19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध मे ब्रह्म समाज के मन्तव्य बहुत क्रांतिकारी माने जाते थे। पर 20 वीं सदी म हिन्दू धर्म के प्राय सभी प्रगतिशील लोग उनका समर्थन करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि सुशिक्षित हिन्दुओं और ब्रह्म समाजियों म मत भेद कम होता चला गया। सारांश म, ब्रह्म समाज के आन्दोलन से हिन्दू धर्म व समाज म सुधार की प्रक्रिया को बहुत बल मिला।

पुनर्जागरण मे ब्रह्म समाज की देन

(1) ब्रह्म समाज ने कुछ ऐसे सिद्धान्त निकाले, जो हिन्दुत्व तथा इस्लाम व ईसाईयत तीनों में शामिल थे। इसी कारण बंगाल म ईसाईयत की बाढ रुक सकी।

(2) इसके द्वारा प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृतियों म समन्वय स्थापित हो सका।

3) भारतीय समाज म अनेक सामाजिक सुधार सम्भव हो सके जैसे सती प्रथा उन्मूलन स्त्री शिक्षा तथा स्त्री पद म सुधार, बाल विवाह निषेध आदि। भारतीय संविधान ने जिन कुरीतियों को अवैध घोषित कर दिया है, उनके विरुद्ध संघर्ष आरम्भ ब्रह्म समाज ने ही किया था।

(4) देश मे अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार हुआ। अनेक ब्रह्म समाजियों ने विदेश यात्रा की। वहा की संस्थाओं का स्थानीय संचालन देखकर वे प्रभावित हुए और उनको अपने देश म क्रियान्वित करने के लिए तत्पर हुए।

(5) अपने धार्मिक और सामाजिक विचारों को फैलाने के लिए ब्रह्म समाज ने आधुनिक काल के सभी माध्यमों साधनों का प्रयोग किया। इस हेतु इन्होंने विभिन्न संस्थाओं की स्थापना के साथ ही समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, स्कूल और कालेज आदि की स्थापना की जिससे समाज मे जागृति उत्पन्न होने म सहायता मिली।

(6) जहा प्राचीन साहित्य का पुनरुद्धार हुआ वहा नवीन साहित्य का सृजन भी हुआ। इनके द्वारा रचित साहित्य म प्राचीनता की प्रेरणा और भविष्य का संदेश था।

(7) ब्रह्म समाज के द्वारा भारती उदारवाद को प्रश्रय मिला और देश म राष्ट्रीयता की भावना को बल प्राप्त हुआ।

(8) इनके द्वारा विदेश म भारतीय संस्कृति की नवीन व्याख्या संभव हो सकी और पाश्चात्यों की भ्रांति का बहुत कुछ निराकरण हो सका।

निष्कर्ष—ब्रह्म समाज भारत के महत्वपूर्ण सांस्कृतिक आन्दोलनों म प्रमुख स्थान रखता है। यूरोप की प्रगतिशील विचारधारा ने आरम्भ म ब्रह्म समाज के माध्यम से ही हिन्दू समाज म प्रवेश किया। इसने उनके जीवन म बुद्धिवाद तथा व्यक्ति अन्तःकरण की स्वतन्त्रता की प्रतिष्ठा की। ब्रह्म समाज ने राष्ट्रीय आन्दोलन की दिशा मे महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इसने राष्ट्रीय चेतना की भूमिका तैयार की। यह

स्वाभाविक ही था कि ब्रह्म समाज के कई नेता आगे चलकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रमुख नेता बने और इसी के प्रभाव के कारण बंगाल में राजनीतिक जागरूकता अन्य प्रदेशों की तुलना में अधिक थी। सारांश में, भारतीय पुनर्जागरण का सूत्रपात करने और विकसित करने का श्रेय इसी संस्था और इसके प्रतिभाशाली उन्नायकों, विशेषतः राजा राममोहन राय को देना चाहिए। इसके विश्व धर्म तथा पूर्व व पश्चिम की विचार धाराओं के समन्वय के सिद्धांत ने भारत के बुद्धिजीवी वर्ग और बहुत से सामान्य लोगों पर गहरी छाप छोड़ी है।

IV स्वामी दयानन्द : व्यक्तित्व और योगदान

यह बिल्कुल सही बात है कि शंकराचार्य के बाद से भारत में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ जो स्वामी दयानन्द से बड़ा संस्कृतज्ञ, उससे बड़ा दार्शनिक, उनसे अधिक तेजस्वी वक्ता तथा कुरीतियों पर टूट पड़ने में उनसे अधिक निर्मम [हा हो।"

—मादाम ब्लेवट्स्की

प्राचीन हिन्दू धर्म में नवजीवन का संचार करने और हिन्दू जाति की सामाजिक दशा में सुधार करने के लिये उन्नीसवीं शताब्दी में जिन विविध आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ, उनमें आर्य समाज का स्थान सबसे अधिक महत्त्व का है। जो कार्य बंगाल में राजा राममोहन राय (1772–1833 ई०) ने किया वही उत्तर भारत में स्वामी दयानन्द (1824–1883 ई०) ने किया।

ब्रह्म समाज की तरह आर्य समाज की प्रेरणा पश्चिमी विचारधारा से नहीं आयी। इसका मूलाधार वैदिक परम्परा थी। स्वामी दयानन्द ने हिन्दुओं का ध्यान हिन्दुत्व की बुनियादी शक्ति की ओर आकृष्ट किया। उन्होंने वैदिक संस्कृति के पुनरुद्धार का दृढ़ संकल्प कर अथक प्रयास किया। स्वामी दयानन्द ने न तो अंग्रेजी पढ़ी और न ही पाश्चात्य सभ्यता का ही अध्ययन किया। पर उस समय चारों ओर पश्चिमीय सभ्यता की गौरव गाथा का जय घोष हो रहा था। भारतीय सभ्यता अन्धकार में पड़ी थी। स्वामीजी की धारणा थी कि यदि हिन्दुत्व पर जमी हुई काई को खुरच कर साफ कर दिया जाय तो द्वादश वर्ण के स्वर्ण के समान वह चमकने लगेगी और उसकी नैसर्गिक कान्ति में पश्चिम की चमक फीकी पड़ जायगी।

दयानन्द का संक्षिप्त जीवन वृत – दयानन्द का जन्म सन् 1824 ई० में काठियावाड़ के मोरवी नगर में हुआ था। उनका बचपन का नाम मूलशंकर था। 1845 ई० में अपने विवाह के पूर्व ही घर से इन्होंने पलायन कर दिया और एक ब्रह्मचारी साधु के रूप में भारत के विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते रहे। अल्पावस्था में ही मूर्ति पूजा पर से इनका विश्वास हट गया था। सन् 1861 में मथुरा के स्वामी विरजानन्द को अपना गुरु मानकर उनसे वेदों का अध्ययन किया। अपनी शिक्षा की समाप्ति पर उन्होंने शपथ ली कि वे देश में वेदों के ज्ञान को फैलायेंगे।

ग्रस्तु ग्रपने गुरु से ग्रलग होकर इन्होंने वैदिक हिन्दू धर्म, सभ्यता और संस्कृति के प्रचार का कार्य आरम्भ किया। वे स्थान स्थान पर घूमे और लोगों को अपने विचारों का बनाया। उनके अंतिम दिन राजस्थान में व्यतीत हुए जहाँ अनेक प्रभावशाली व्यक्ति उनके शिष्य बने। 30 अक्टूबर 1883 ई० को किसी के द्वारा धोखे से विष दिये जाने से स्वामीजी की अजमेर में मृत्यु हो गयी।

दयानन्द के धार्मिक विचार एवं धर्म सुधार—वे अंग्रेजी शिक्षा से शिक्षित न थे, किन्तु वे संस्कृत के महान् विद्वान थे। उनका पुराणों में विश्वास न था तथा उन्होंने उसे स्वार्थी अज्ञानी तथा कुबुद्धि व्यक्तियों की कृति बताया। उन्होंने मूर्ति-पूजा तथा यज्ञों मे पशु बलि का खण्डन किया। उन्होंने जन्मजात जाति पाति का भी विरोध किया।

श्री अरविन्द—ने लिखा है कि "राममोहन राय उपनिषदों पर ही ठहर गये थे, किन्तु दयानन्द ने उपनिषदों से भी आगे देखा और यह जाना कि हमारी संस्कृति का मूल, वेदों में है।" स्वामीजी की मान्यता थी कि हिन्दू समाज का उद्धार वैदिक विचारधारा को पूर्णरूप से जीवित करके ही किया जा सकता है। उन्होंने हिन्दुओं को 'वेदों की ओर मुड़ने का आह्वान किया।' उन्होंने बताया कि हिन्दुओं के लिए वेद उतने ही पवित्र प्रामाणिक हैं जितना 'कुरान मुसलमानों के लिए और 'बाईबल' ईसाइयों के लिए। उनके अनुसार, ' सब तरह का ज्ञान वेदों में है।"

सामाजिक सुधार—दयानन्द ने धर्म-सुधार का ही बीड़ा नहीं उठाया बल्कि राममोहन राय की भांति इन्होंने भी हिन्दू समाज में फैली हुई कुरीतियों और बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने हिन्दू समाज में क्रांतिकारी सुधारों की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने बाल विवाह, बहु विवाह तथा पर्दा प्रथा का खण्डन किया और अंतर्जातीय विवाह एवं विधवा विवाह का समर्थन किया। स्वामीजी ने स्त्री शिक्षा पर जोर दिया। उन्होंने जन्म या वंश की परम्परा पर आधारित वर्ण-व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने जन्म के स्थान पर कर्म व चरित्र को वर्ण का आधार माना। उन्होंने ब्राह्मणों के शास्त्रों पर एकाधिकार को नहीं माना और वेद तथा धर्म-ग्रन्थ पढ़ने का अधिकार सब को दिया। वे हर प्रकार की अस्पृश्यता (छुआ छूत) के भी विरोधी थे। उन्होंने कर्म और व्यवसाय के आधार पर जाति को मान्यता दी। उन्होंने सारे देश में घूम-घूमकर मानवता की समानता का प्रचार किया और सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध वातावरण बनाया। स्वामीजी ने सती प्रथा को क्रूरता तथा घोर पाप की संज्ञा प्रदान की और इस प्रथा को समाप्त करने हेतु अथक प्रयास किया। आर्य समाज द्वारा हजारों विधवा स्त्रियों की शादी प्रति वर्ष वैदिक रीति से होने लगी क्योंकि स्वामीजी ने विधवा विवाह का जोरदार शब्दों में समर्थन किया था। स्वामीजी की प्रेरणा से अ.प सनातन अनाथ बच्चों के जीवन यापन और निवाह आदि के लिए अनाथालयों की भी स्थापना

स्वाभाविक ही था कि ब्रह्म समाज के कई नेता आगे चलकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रमुख नेता बने और इसी के प्रभाव के कारण बंगाल में राजनीतिक जागरूकता अन्य प्रदेशों की तुलना में अधिक थी। साराश में, भारतीय पुनर्जागरण का सूत्रपात करने और विकसित करने का श्रेय इसी संस्था और इसके प्रतिभाशाली उन्नायकों, विशेषत राजा राममोहन राय को देना चाहिए। इसके विश्व धर्म तथा पूर्व व पश्चिम की विचार धाराओं के समन्वय के सिद्धांत ने भारत के बुद्धिजीवी वर्ग और बहुत से सामान्य लोगों पर गहरी छाप छोड़ी है।

IV स्वामी दयानन्द व्यक्तित्व और योगदान

"यह बिल्कुल सही बात है कि शंकराचार्य के बाद से भारत में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ जो स्वामी दयानन्द से बड़ा संस्कृतज्ञ, उनसे बड़ा दार्शनिक, उनसे अधिक तेजस्वी वक्ता तथा कुरीतियों पर टूट पड़ने में उनसे अधिक निर्मम रहा हो।"

—मादाम ब्लेवट्स्की

प्राचीन हिन्दू धर्म में नवजीवन का संचार करने और हिन्दू जाति की सामाजिक दशा में सुधार करने के लिये उन्नीसवीं शताब्दी में जिन विविध आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ, उनमें आर्य समाज का स्थान सबसे अधिक महत्त्व का है। जो कार्य बंगाल में राजा राममोहन राय (1772–1833 ई०) ने किया, वही उत्तर भारत में स्वामी दयानन्द (1824–1883 ई०) ने किया।

ब्रह्म समाज की तरह आर्य समाज की प्रेरणा पश्चिमी विचारधारा से नहीं आयी। इसका मूलाधार वैदिक परम्परा थी। स्वामी दयानन्द ने हिन्दुओं का ध्यान हिन्दुत्व की बुनियादी शक्ति की ओर आकृष्ट किया। उन्होंने वैदिक संस्कृति के पुनरुद्धार का दृढ़ संकल्प कर अथक प्रयास किया। स्वामी दयानन्द ने न तो अंग्रेजी पढ़ी और न ही पाश्चात्य सभ्यता का ही अध्ययन किया। पर उस समय चारों ओर पश्चिमीय सभ्यता की गौरव-गाथा का जय घोष हो रहा था। भारतीय सभ्यता अन्धकार में पड़ी थी। स्वामीजी की धारणा थी कि यदि हिन्दुत्व पर जमी हुई काई को खुरच कर साफ कर दिया जाय, तो द्वादश वर्ण के स्वर्ण के समान वह चमकने लगेगी और उसकी नैसर्गिक कांति में पश्चिम की चमक फीकी पड़ जायेगी।

दयानन्द का संक्षिप्त जीवन वृत—दयानन्द का जन्म सन् 1824 ई० में काठियावाड़ के मोरवी नगर में हुआ था। उनका बचपन का नाम मूलशंकर था। 1845 ई० में अपने विवाह के पूर्व ही घर से इन्होंने पलायन कर दिया और एक ब्रह्मचारी साधु के रूप में भारत के विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते रहे। अल्पावस्था में ही मूर्ति पूजा पर से इनका विश्वास हट गया था। सन् 1851 में मथुरा के स्वामी विरजानन्द को अपना गुरु मानकर उनसे वेदों का अध्ययन किया। अपनी शिक्षा की समाप्ति पर उन्होंने शपथ ली कि वे देश में वेदों के ज्ञान को फैलायेंगे।

अस्तु अपने गुरु से अलग होकर इन्होंने वैदिक हिन्दू धर्म, सभ्यता और संस्कृति के प्रचार का कार्य आरम्भ किया। वे स्थान स्थान पर घूमे और लोगों को अपने विचारों का बनाया। उनके अंतिम दिन राजस्थान में व्यतीत हुए जहाँ अनेक प्रभावशाली व्यक्ति उनके शिष्य बने। 30 अक्टूबर, 1883 ई० को किसी के द्वारा धोखे से विष दिये जाने से स्वामीजी की अजमेर में मृत्यु हो गयी।

दयानन्द के धार्मिक विचार एवं धर्म सुधार—वे अंग्रेजी शिक्षा से शिक्षित न थे, किन्तु वे संस्कृत के महान् विद्वान थे। उनका पुराणों में विश्वास न था तथा उन्होंने उस स्वार्थी, अज्ञानी तथा कुबुद्धि व्यक्तियों की कृति बताया। उन्होंने मूर्ति-पूजा तथा यज्ञों में पशु बलि का खण्डन किया। उन्होंने जन्म-जात जाति पाँति का भी विरोध किया।

श्री अरविन्द—ने लिखा है कि "राममोहन राय उपनिषदों पर ही ठहर गये थे, किन्तु दयानन्द ने उपनिषदों से भी आगे देखा और यह जाना कि हमारी संस्कृति का मूल, वेदों में है।" स्वामीजी की मान्यता थी कि हिन्दू समाज का उद्धार वैदिक विचारधारा को पूर्णरूप से जीवित करके ही किया जा सकता है। उन्होंने हिन्दुओं को 'वेदों की ओर मुड़ने' का आह्वान किया। उन्होंने बताया कि हिन्दुओं के लिए वेद उतने ही पवित्र प्रामाणिक हैं जितना कुरान मुसलमानों के लिए और 'बाईबल' ईसाइयों के लिए। उनके अनुसार, 'सब तरह का ज्ञान वेदों में है।"

सामाजिक सुधार—दयानन्द ने धर्म-सुधार का ही बीड़ा नहीं उठाया बल्कि राममोहन राय की भाँति इन्होंने भी हिन्दू समाज में फैली हुई कुरीतियों और बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने हिन्दू समाज में क्रान्तिकारी सुधारों की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने बाल विवाह, बहु विवाह तथा पर्दा प्रथा का खण्डन किया और अन्तर्जातीय विवाह एवं विधवा विवाह का समर्थन किया। स्वामीजी ने स्त्री शिक्षा पर जोर दिया। उन्होंने जन्म या वंश की परम्परा पर आधारित वर्ण-व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने जन्म के स्थान पर कर्म व चरित्र को वर्ण का आधार माना। उन्होंने ब्राह्मणों के शास्त्रों पर एकाधिकार को नहीं माना और वेद तथा धर्म-ग्रन्थ पढ़ने का अधिकार सब को दिया। वे हर प्रकार की अस्पृश्यता (छुआ छूत) के भी विरोधी थे। उन्होंने कर्म और व्यवसाय के आधार पर जाति को मान्यता दी। उन्होंने सारे देश में घूम घूमकर मानवता की समानता का प्रचार किया और सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध वातावरण बनाया। स्वामीजी ने सती प्रथा को क्रूरता तथा घोर पाप की संज्ञा प्रदान की और इस प्रथा को समाप्त करने हेतु अथक प्रयास किया। आर्य समाज द्वारा हजारों विधवा स्त्रियों की शादी प्रति वर्ष वैदिक रीति से होने लगी क्योंकि स्वामीजी ने विधवा विवाह का जोरदार शब्दों में समर्थन किया था। स्वामीजी की प्रेरणा से आर्य समाज ने अनाथ बच्चों के जीवन यापन और निर्वाह आदि के लिए अनाथालयों की भी स्थापना

की। उन्होंने भारतीयों को अध्ययन तथा यात्रा के लिए विदेशों की यात्रा करने की प्रेरणा दी।

डॉ० रामधारीसिंह 'दिनकर' ने लिखा है कि दयानन्द के अन्य समकालीन सुधारक केवल सुधारक मात्र थे, किन्तु दयानन्द क्रान्ति के वेग में आये और उन्होंने निश्छल भाव से घोषणा कर दी थी कि हिन्दू धर्म ग्रन्थों में केवल वेद ही मान्य हैं, अन्य शास्त्रों और पुराणों की बातें बुद्धि की कसौटी पर कसे बिना नहीं मानी जानी चाहिए। वास्तव में, दयानन्द ने बुद्धिवाद की जो मशाल जलायी थी। उसका कोई जवाब नहीं था।

स्वामीजी द्वारा आर्य समाज की स्थापना—स्वामी दयानन्द सन् 1874 में 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ समाप्त कर प्रयाग से बम्बई पहुँचे और वहाँ पर 'प्रार्थना-समाज' के अधिकारियों से मिले। वहाँ उनके व्याख्यानों का बड़ा प्रभाव पड़ा। परन्तु स्वामीजी ने अनुभव किया कि सामाजिक धार्मिक पुनरुत्थान केवल व्यक्तिगत संघर्ष से नहीं किया जा सकता था, बल्कि इसके लिए किसी ऐसे संगठन की आवश्यकता थी जो किन्हीं निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अनवरत कोशिश करता रहे। व्यक्तिगत प्रयास के अलावा सामूहिक और संगठित प्रयास को भी उन्होंने आवश्यक समझा। इसी उद्देश्य से उनके द्वारा सन् 1875 में बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की गई। कुछ समय के भीतर ही आर्य समाज की शाखाएँ देश के विभिन्न नगरों में स्थापित हो गईं। पंजाब में स्वामी जी को बड़ी सफलता मिली और थोड़े दिनों में ही सन् 1877 में लाहौर आर्य समाज का केन्द्र बन गया। फलस्वरूप पंजाब के सभी प्रसिद्ध नगरों में आर्य समाज की शाखाएँ खुल गईं।

दयानन्द द्वारा प्रतिपादित आर्य समाज के दस सिद्धान्त

1 वेद ईश्वरीय ज्ञान है। इनमें त्रुटि का स्थान नहीं है। ये स्वतः प्रमाण हैं।

2 ईश्वर सत् चित् आनन्द है। आत्मा-परमात्मा से भिन्न होते हुए भी पृथक नहीं है। इन दोनों के बीच व्यापक और व्याप्य का सम्बन्ध है। प्रकृति सृष्टि का कारण है। परमात्मा, आत्मा तथा प्रकृति अनादि हैं।

3 न्याय तथा मानवीय भावना, करुणा, सत्य का आचरण ही धर्म है। न्याय से अर्जित सम्पत्ति ही धन है, अन्याय की कमाई पाप है। ईमानदारी व न्याय पूर्वक की गई कमाई की सम्पत्ति से उचित कामनाओं का उपभोग ही काम है। गुणों के द्वारा ही किसी व्यक्ति की जाति और आश्रम निर्धारित करना उचित है।

4 मोक्ष प्राप्ति का साधन ईश्वरोपासना, सत्कर्म, ब्रह्मचर्य व्रत के द्वारा सत् ज्ञान का अर्जन करना एवं विचार शक्ति है।

5 संस्कार वे कर्म व रिवाज हैं जिनके द्वारा मनुष्य का शारीरिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक परिष्कार होता है। इनकी संख्या 16 है। मृत्यु के बाद संस्कार नहीं करना चाहिए।

6 अविद्या का नाश और ज्ञान की प्राप्ति मानव का ध्येय हो और विद्या समाज के सभी प्राणियो को प्राप्त होनी चाहिए। नारी शिक्षा भी महत्त्वपूर्ण अग है।

7 व्यक्ति के साथ ही समाज की सर्वांगीण उन्नति आवश्यक है, तभी राष्ट्र की उन्नति सम्भव होगी।

8 जाति व्यक्ति के कम और गुण पर आधारित है ज म पर नही।

9 मनु य का विकास उसकी शारीरिक, आध्यात्मिक और सामाजिक प्रगति पर निभर करता है। प्रत्येक भारतीय को शारीरिक व मानसिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

10 प्रत्येक काय करने से पूव उसके उचित तथा अनुचित पक्ष पर विचार करना चाहिए।

मूल्याकन—पडित चमूपति—के अनुसार, आय समाज के ज म के समय हि दू कोरा फुसफुसिया जीव था। उसक मेरुदण्ड की हड्डी थी ही नही। चाहे कोई उसे गाली दे उसकी हँसी उडाय, उसके देवताओ की भत्सना करे या उसके धम पर कीचड उछाले जिसे वह सदियो से मानता आ रहा है, फिर भी इन सारे अपमाना क सामने वह दात निपोड कर रह जाता है। पर तु दयान द के आय समाज न हि दुत्व के सरक्षण का प्रबल बीडा उठाया। यद्यपि आय समाज ने पौराणिक कुरीतियो तथा अ ध विश्वासो का खण्डन किया पर वह हि दुत्व से पृथक नही हुआ।

स्वामीजी की मत्यु पर दि थ्योसोफिस्ट' पत्रिका ने उनकी प्रशस्ति म एक सम्पादकीय लेख लिखा था, 'उ हाने माना पतित हि दुत्व के गतिहीन जन समूह म बम फेंक दी हो और उनकी वक्तृतता का प्रभाव जिन पर पड जाता, उनके हृदया पर ऋषियो के उपदेश के प्रति प्रेम तथा वदिक ज्ञान की अमिट छाप लग जाती।'

साराश म स्वामी दयानन्द ने सुधरे हुए उग्र हि दू धम का उपदेश दिया। उ हाने आय समाज की स्थापना की और लूथर के समान धम म प्रविष्ट हुए दोष का दूर करने का बीडा उठाया एव उपनिषदो एव वदा की प्रारम्भिक सादगी को धमम पुन स्थापित करने का प्रयास किया। उ होन केवल वद का प्रमाण माना और उसके अध्ययन का द्वार जाति पाँति का विचार छोड सबके लिए खोल दिया। उ हान अनेकेश्वरवाद मूर्ति पूजा, अवतारवाद एव श्रद्धा का विरोध किया तथा सवव्यापी, सवशक्तिमान एक ईश्वर की आराधना व उपासन का उपदश दिया। उ हान जाति के प्रतिब धो बाल विवाह अ धरूढिवादिता, अशिक्षा पर्दा प्रथा, छुआ छूत तथा समुद्र यात्रा निषेध क विरुद्ध आवाज बुल द की एव विधवा विवाह तथा स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित किया। उ हाने बडी दृढता से हि दुओ को अपन प्राचीन धम, गौरव, सभ्यता और आदश का स्मरण कराकर उ ह स्वावलम्बी बनान की चेष्टा की। उ हाने विविध राष्ट्र हितमूलक सुधारो का प्रचार कर भारतीय हि दू समाज को एक ही सूत्र

म सगठित कर, उसे अ धश्ढिवादिता के जजाल से मुक्ति दिलायी। इस तरह सांस्कृतिक पुनर्जागरण के महायज्ञ म उन्होंने महत्त्वशाली भाग लिया।

दयानन्द ने अपने ग्रन्थ हिन्दी मे लिखकर राष्ट्रभाषा के हेतु रचनात्मक प्रयास के रूप म ठोस कदम बढाया। इसके अतिरिक्त उनकी 'स्वधम', 'स्वभाषा' और 'स्वदेश की आवाज ने कालान्तर मे इस देश मे 'स्वराज्य की आवाज बुलन्द करने म बहुमूल्य योग दिया। योगिराज अरविन्द के शब्दो म "दयानन्द सरस्वती परमात्मा की इस विचित्र सष्टि के एक अद्वितीय योद्धा तथा मनुष्य और मानवीय सस्थाओं का सस्कार करने वाले एक अदभुत शिल्पी थे।" डॉ दिनकर के मतानुसार, 'रणारूढ हिन्दुत्व के निर्भीक नेता जसे स्वामी दयानन्द हुए वसा कोई नहीं हुआ।"

V आर्य समाज पुनर्जागरण मे योगदान

'आय-समाज शुद्धि-सस्कार का प्रबल सम्प्रदाय है और वह सामाजिक सेवा की पगडडी का अविश्रान्त पथिक है। उत्तर भारत मे हिन्दू पुनरुत्थान के चरण म आय समाज का नाम अमिट अक्षरो मे लिखा जायेगा।'

—डॉ० के० एम० पणिक्कर

सन् 1877 ई० मे आय समाज की स्थापना कर उसके प्रचार मे स्वामी दयानन्द न देश के धम-आगन म एक व्यापक क्रान्ति का सूत्रपात किया, जिसने कालान्तर में हमारे जीवन के अन्य अगो को हिलाने म सहायता दी। आय सभाज के दिव्य धार्मिक सामाजिक, राजनतिक और शिक्षण सम्बन्धी कार्यों न भारत के राष्ट्रीय जीवन के निमाण म बहुत योग दिया है। इसन हिन्दुओ के धार्मिक और सामाजिक जीवन को स्वस्थ करने के लिए निरन्तर सघष किया और हिन्दू जाति का सबल व क्रियाशील बनाया।

धम तथा सामाजिक सुधार के क्षेत्र म आय समाज न जो काय किया, उसका *भारत के नवजागरण मे बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। दयानन्द क ओजस्वी विचारो ने* हिन्दू जाति म अपूर्व उत्साह उत्पन्न किया और वे अपनी कुरीतियो को दूर करने व उन्नति पथ पर आरूढ होने के लिए उद्यत हो गए।

धार्मिक क्षेत्र मे आर्य समाज के कार्य—धार्मिक क्षेत्र म आय समाज न मूर्ति पूजा कम काण्ड बलि प्रथा, स्वग और नक की कल्पना तथा भाग्य म विश्वास का विरोध किया। उसने वेदो की श्रेष्ठता का दावा किया और उसी आधार पर उसन मन्त्र पाठ हवन यज्ञ कम आदि पर बल दिया। आय समाज ने हिन्दू धम को सरल बनाया और उसकी श्रेष्ठता मे विश्वास उत्पन्न किया। वेदो की व्याख्या उसने इस प्रकार की जिसम वेद अनक वज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सिद्धान्तो के स्रोत माने जा सकते हैं। कोई भी ऐसा ज्ञान नहीं है जिसे हम वेदो म प्राप्त नहीं कर सकते, यह उसका विश्वास था। हिन्दू केवल अपन सत्य ज्ञान को भूल गय हैं और यदि व वेदो का अध्ययन करगे तो उन्ह ससार का सम्पूर्ण ज्ञान वेदो म ही प्राप्त हो जायगा।

इस कारण हिन्दुओं को धर्म के विषय में ही नहीं बल्कि राजनीतिक, आर्थिक और वैज्ञानिक धारणाओं के लिए भी इस्लाम और ईसाई धर्म या सभ्यता की ओर देखने की आवश्यकता नहीं है। यह विश्वास तथा हिन्दू धर्म और वेदों की श्रेष्ठता के आधार को लेकर आर्य समाज ने हिन्दू धर्म को इस्लाम और ईसाई धर्म के आक्रमण से बचाने में सफलता पायी। आर्य समाज संग्रामी प्रवृत्ति वाले हिन्दू धर्म का प्रतीक है। राष्ट्रीयता के अंग के रूप में तथा इस्लाम व ईसाई धर्म के सिद्धान्तों के प्रतिरोध के रूप में आर्य समाज का अत्यन्त महत्त्वशाली भाग रहा है। आर्य समाज ने इस्लाम और ईसाई धर्म प्रचार पर जो हिन्दू धर्म का मजाक उड़ाते थे कठोरता से आक्रमण किया।

1877 में आर्य समाज ने जिन दस सिद्धान्तों को निश्चित किया, उनमें हिन्दू धर्म को सुधारने की ओर विशेष जोर दिया गया था। मूर्ति पूजा का खण्डन, तीर्थ यात्रा और अवतारवाद का विरोध, बहुदेव उपासना का खण्डन तथा एक ईश्वर में विश्वास करने पर जोर दिया गया। सारांश में, आर्य समाज के वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार से हिन्दुओं में आत्म विश्वास व स्वाभिमान का विकास हुआ।

आर्य समाज द्वारा सामाजिक सुधार के कार्य—सामाजिक क्षेत्र में भी आर्य समाज का कार्य बहुत सफल रहा। उसने बाल विवाह, बहु विवाह पर्दा प्रथा, जाति प्रथा, सती प्रथा आदि सभी हिन्दू सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया। स्त्री शिक्षा जाति-समानता और अछूतों के उद्धार के लिए उन्होंने निरन्तर प्रयत्न किया। अन्तर्जातीय खान पान और विवाह तथा पारस्परिक सम्पर्क आर्य समाज के जीवन की दिन चर्या बन गया। परन्तु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य आर्य समाज ने शुद्धि आन्दोलन प्रारम्भ करके किया। इसके अन्तर्गत जो भी धर्म परिवर्तन हिन्दू ईसाई या इस्लाम धर्म को छोड़कर पुनः हिन्दू धर्म स्वीकार करना चाहता था, वह पुनः हिन्दू धर्म में शामिल हो सकता था। सामाजिक सेवाओं और सुधारों पर अधिक जोर देने के कारण आर्य समाज उत्तर भारत में हिन्दू-पुनर्जागरण के क्षेत्र में आज भी एक महत्त्वशाली तत्व है। आर्य समाज देश व जाति के लिए सबल मंच बन गया। इस विशाल संस्था की लगभग डेढ़ हजार विविध शाखाएँ आज भी विभिन्न स्थानों में प्रस्थापित हैं जिनके द्वारा जातिभेद उच्छेद विधवा विवाह अछूतोद्धार शुद्धि-संस्कार, नारी सेवा आदि के रूप में निरन्तर सुधार संगठन का न्यूनाधिक क्रम जारी है।

समाज सेवा के क्षेत्र में आर्य समाज का योगदान काफी महत्त्वपूर्ण है। विधवा और भूली भटकी स्त्रियों का संरक्षण और उद्धार करने के लिए आर्य समाज ने यत्र तत्र विधवा आश्रम और महिला आश्रम स्थापित किये। अनाथ बच्चों की रक्षा करने के लिए कई अनाथालय खोले, जिनमें बालकों का रक्षण, पोषण और शिक्षण किया गया और उन्हें भारत का उपयोगी नागरिक बनाया। असंख्य लोगों की सेवा के लिए कई औषधालय खोले जा चुके हैं चलाए गये और जिनमें लोगों की निःशुल्क चिकित्सा की गई। दलित और अछूत जातियों के उद्धार के लिए आर्य समाज ने बहुत काम

किया गया। इनके लिए पाठशालाएँ खोली, छात्र वृत्तिया जारी की, छात्रावास चलाये और समानता क व्यवहार का प्रचार किया।

आर्य समाज द्वारा शक्षणिक काय—आय समाज आन्दोलन के फलस्वरूप राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति की प्रतिष्ठा हुई। लाहौर मे दयानन्द एग्लोवदिक (डी० ए० वी०) कॉलेज की स्थापना हुई। डी० ए० वी० कालेज का उद्देश्य सस्कृत, अग्रेजी साहित्य, पश्चिमीय विज्ञान, वेदों का अध्ययन तथा टैक्निकल शिक्षा का प्रचार करना था। इस सस्था को काफी सफलता मिली। कालान्तर म इसी प्रकार के अनेक (डी० ए० वी०) कालेज भारत के अन्य नगरो म भी खोले गये। इन कालेजो मे विद्यार्थिया का रहन सहन आय समाज के आदर्शों के अनुसार होता था। नवीन ज्ञान-विज्ञान के साथ साथ उन्ह वैदिक धम की शिक्षा भी दी जाती थी।

इस शिक्षा पद्धति स आय समाजियो का एक दल सतुष्ट न हुआ। इसलिए, सन् 1803 म हरिद्वार के निकट 'गुरुकुलकागडी' की स्थापना की गई। इसम प्राचीन वदो शास्त्रो को प्रमुख स्थान दिया गया, पर आधुनिक ज्ञान विज्ञान की उपक्षा नही की गई। इसम हिन्दी भाषा के माध्यम से समस्त विषयो की पढाई की व्यवस्था की गई। अग्रेजी किन्ही कक्षाओ म अनिवाय नही थी। वस सस्कृत पर अधिक जोर दिया जाता था। लडकियो की उच्च शिक्षा क लिए भी जालन्धर म एक कन्या गुरुकुल विद्यालय स्थापित किया गया।

आय समाज द्वारा स्थापित इन शिक्षण सस्थाओ की शिक्षा म महत्त्व की एक बात यह थी कि गणित, रसायनशास्त्र आदि आधुनिक विज्ञाना की शिक्षा भी हिन्दी के माध्यम द्वारा दी जाती थी, इस तरह आय समाज ने शिक्षा क्षेत्र म महत्त्वपूर्ण भाग लिया तथा अब भी ले रहा है देश मे राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति का श्री गणेश करने का श्रेय आय समाज को ही है, जिसने अनक राष्ट्रवादी नेताओ को उत्पन्न किया—उदाहरणतया स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपत राय आदि।

राजनीतिक क्षेत्र मे—राजनीतिक जागृति म भी आय-समाज का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वामी दयानन्द का मुख्य लक्ष्य राजनीतिक स्वतन्त्रता था। वह पहले व्यक्ति थ जिन्होने 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया। वह प्रथम व्यक्ति जिन्होने विदशी वस्तुओ का बहिष्कार करना तथा स्वदेशी वस्तुओ का उपयोग करना सिखाया। वह पहले व्यक्ति थे, जिन्होने हिन्दी को राष्ट्र भाषा स्वीकार किया।' आय समाज ने अनक ऐसे कट्टर व्यक्तियो के निमाण म सहयोग दिया जो कट्टर हिन्दू धम की भावना को लेकर भारतीय राष्ट्रीयता के समथक बनी काग्रेस म उग्रवाद, की भावना क आरम्भ होने का कारण हिन्दू धम म आय समाज द्वारा प्रज्वलित उग्र भावना भी थी और इसम स देह नही कि आय समाज न उस भावना के निमाण में सहयोग प्रदान किया। आय समाज न भारतीय उदारवाद तथा राष्ट्रीयता का सद च प्रबल समथन किया।

निष्कर्ष समालोचना—इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आर्य समाज ने भारत को धर्म, समाज, शिक्षा और राजनीतिक चेतना के क्षेत्र में बहुत कुछ प्रदान किया है। धर्म तथा सामाजिक सुधार के क्षेत्र में आर्य समाज ने जो कार्य किया, उसका भारत के नवजागरण में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'आर्य समाज ने हिन्दुत्व की गरिमा को पुनः स्थापित करने का सफल प्रयत्न किया। यह पश्चिम की आँधी से इतना प्रभावित नहीं हुआ। इसने हिन्दुत्व के प्रच्छन्न रत्नों को साफ कर हिन्दुओं के सामने रखा।

यह हिन्दू समाज का संघर्षक दल है। इसने स्वयं का कठिनाइयाँ सहन कर हिन्दुत्व को अन्य धर्मों के प्रबल आघातों से बचाया। परन्तु, डा० रामधारी सिंह 'दिनकर' का मत है कि, आर्य समाज ने अधिक पुनरुत्थानवादी नीति अपनाई है—उसने वेदान्ती और पौराणिक तत्वों को निरसित करके और पाश्चात्य एवं मुस्लिम संस्कृतियों का एकदम अस्वीकार करके हिन्दू जाति को वैदिक युग की प्राक्कालीन सरलता में लौटा ले जाने का प्रयत्न किया।' स्वामीजी ने कहा कि वेदों में केवल धर्म की ही बातें नहीं है, उसमें विज्ञान की भी सारी बातें प्रच्छन्न हैं। इससे लोगों के ज्ञानोन्मेष में बाधा पड़ी। आधुनिक ज्ञान विज्ञान से दूर रहने का एक ही परिणाम हो सकता है कि प्रगति की दौड़ में हम सबसे पीछे रह जायं। अस्तु, कट्टरता से दूर रहकर। आधुनिक सत्य को अपनाकर ही आर्य समाज एक जीवित आन्दोलन बना रह सकता है।

VI रामकृष्ण परमहंस व्यक्तित्व एवं योगदान

'सच्चे अर्थों में धार्मिक जागरण के—जिसका स्रोत विशुद्ध धार्मिक अनुभूति और परम तत्व के निकट एवं प्रत्यक्ष साक्षात्कार में होता है—अग्रदूत थे श्री रामकृष्ण परमहंस और उनके उत्तराधिकारी स्वामी विवेकानन्द।'

डॉ० आबिद हुसैन

ब्रह्म समाज और आर्य समाज बड़े ही प्रखर सांस्कृतिक आन्दोलन थे किन्तु उनमें भी अपनी कमजोरियाँ थीं। आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द बाल ब्रह्मचारी, निरीह संन्यासी, प्रचण्ड तार्किक और उद्भट विद्वान थे किन्तु संतों की नम्रता और निरहंकारिता उनमें नहीं थी। ब्रह्म समाज में तार्किकता तो अधिक नहीं थी किन्तु ब्रह्म समाजी लोग अपने को जितना भक्ति विह्वल दिखलाना चाहते थे, वस्तुतः उतनी भक्ति विह्वलता उनमें थी नहीं। राममोहन राय दयानन्द व एनी-बेसेंट के प्रचार से यह तो सिद्ध हो गया कि हिन्दू धर्म निन्दनीय नहीं वरन् है, किन्तु जनता तो यह देखना चाहती थी कि धर्म का जीता जागता रूप कैसा होता है। धर्म का यह जीता जागता रूप उन्हें तब दिखाई पड़ा जब रामकृष्ण परमहंस का आविर्भाव हुआ।

रामकृष्ण परमहंस जीवनवृत्त एवं शिक्षाएँ—जिस समय स्वामी दयानन्द उत्तरी भारत में हिन्दू जाति में नवजीवन का संचार करने के लिये ।

धम के जीते-जागते स्वरूप परमहस रामकृष्ण

परमहस रामकृष्ण राजा राममोहन राय या स्वामी दयान्द के समान विद्वान नही थ । फिर भी, वे एक उच्चकोटि के सत थे जिन्होंने महान् आध्यात्मिक उपलब्धिया अर्जित की । रामकृष्ण ने वेदान्त की बहुत ही सुदर व्याख्या की और उसका जीवन मे व्यावहारिक प्रयाग कर दिखाया । धम के गहन तत्व को उन्होने सीधेसाधे वाक्या म दष्टात देकर लोगो को समझाया । रामकृष्ण न सभी धर्मो की सत्यता म विश्व स प्रकट किया । उनकी मान्यता थी कि **'विभिन्न धम ईश्वर तक पहुचने के विभिन्न माग हैं ।** ईश्वर एक है लेकिन विभिन्न कालो और विभिन्न देशो म भिन्न भिन्न नामा और भिन्न भावा से पूजा जाता है । इसलिए धर्मो की अनन्तता दखने का मिलती है । **रामकृष्ण परमहस ने सदैव मानवता की एकता का** स्वप्न देखा । उन्होने कहा कि **' सब धम समन्वय के आदश द्वारा ही वह स्वप्न पूरा हो सकता है ।'**

जब सभी धर्मो के लोग-हिन्दू, ईसाई और मुसलमान आपस म इस प्रश्न पर लड रहे थे कि किस का धम ठीक है और किसका नही, तब परमहस रामकृष्ण ने सभी धर्मो के मूल तत्व को अपने जीवन म साकार करके माना सारे विश्व को यह सदश दिया कि **धम को शास्त्राथ का विषय मत बनाओ, हो सके तो उसकी सीधी अनुभूति के लिए प्रयास करो । सभी धम एक ही ईश्वर की ओर ले जाने वाले अनेक माग हैं ।''** रामकृष्ण उस ऊँचाई के मनुष्य थे जहा से सभी धम सत्य और सवत्र सब समान दीखते है । आजीवन व बालको की तरह सरल और निश्चल रहे । हिन्दू धम मे जो गहराई और माधुय है रामकृष्ण उसकी प्रतिमा है ।

रामकृष्ण परमहस न अपने आचरण से हिन्दुत्व के उस उदार भाव का उदाहरण प्रस्तुत किया जो हिन्दू सस्कृति की, आदिकाल मे विशेषता रही है । मनुष्य की सेवा म वे पीडित, जीवित, प्रेमालु मानवता के सम्पक म आते थे । वे प्राथना मे कहते थे, **"मा ! मुझे दासानुदास बना ।'** **स्वामी विवेकानन्द** के शब्दा म **' बाहर से वह भक्त थे भीतर से वह ज्ञानी थे ।"**

रामकृष्ण की शिक्षायें—रामकृष्ण यद्यपि उच्च शिक्षित विद्वान नही थे, मगर उन्होन वदान्त के मूल्या की अति सुन्दर ढग म व्याख्या की । उनकी शिक्षाओ व उपदेशो का साराश निम्नानुसार है —

1 ईश्वर साक्षात्कार ही मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है ।
2 मन को कचन और कामिनी स हटाकर ईश्वर की ओर लगाओ ।
3 शरीर और आत्मा दो भिन्न वस्तुऐं है । कामिनी-कचन की आसक्ति यदि पूणरूप स नष्ट हो जाय तो शरीर अलग है और आत्मा अलग है, यह स्पष्ट रूप से दीखने लगता है ।
4 ईश्वर शास्त्राथ की शक्ति स परे है । बगीचो मे तुम आम खान जात हो, न कि पडो के पत्ते गिनन ।

5 मनुष्य-मनुष्य मे कोई भेद नही करना चाहिए ।

6 विद्वता और पाण्डित्य के साथ मनुष्य म शील और सदाचार भी होना चाहिए ।

7 सभी धम एक ही ईश्वर तक पहुँचने के भिन्न भिन्न माग हैं ।

रामकृष्ण का पुनर्जागरण मे योगदान

स्वामी रामकृष्ण ने न कोई धम चलाया, न मठ बनाये और न नवीन धार्मिक सिद्धान्तो को जन्म दिया । वह साधारण तरीके स उपदेश दिया करते थे और उन्ही म उनके धार्मिक विचारो का पता लगता है उन्होने वेदो का अध्ययन नही किया था लेकिन उनके विचार उन्ही पर आधारित थे । उनका कहना था कि मनुष्य का मूल लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति होना चाहिए, जो अध्यात्मवाद के द्वारा ही सम्भव है । इसके लिए वे ससार का त्यागना आवश्यक नही मानते थे और न ही वे इच्छाओ के दमन म विश्वास करते थे । उनका कहना था **"ससार मे रहो, कार्य करो और इच्छाओ का दमन करने के स्थान पर उनको ईश्वर प्राप्ति मे लगाओ ।"** वे ज्ञान से अधिक चरित्र निर्माण पर बल देते थे । उनका कहना था कि, **"बिना स्पष्ट और विकार रहित बुद्धि के धम शास्त्रों का ज्ञान और पवित्र पुस्तको का अध्ययन बेकार है । विवेक और वैराग्य के बिना कोई भी आध्यात्मिक प्रगति सम्भव नहीं है ।"**

प्रमुख देन (1) ससार के लिए रामकृष्ण की सबसे बडी देन अध्यात्मवाद है। अपने सरल उपदेशों और जीवन के उदाहरण से उन्होने वेदो और उपनिषदो के जटिल ज्ञान को साधारण व्यक्ति के निकट पहुँचा दिया और हिन्दुओं म अपने प्राचीन ज्ञान के प्रति श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न किया ।

(2) रामकृष्ण की दूसरी महत्वपूर्ण देन, सभी धर्मो की एकता मे विश्वास जाग्रत करना था । अपने उपदेशो स ही नही बल्कि अपने जीवन के उदाहरण से भी उन्होने यह स्पष्ट किया कि सभी धम समान ह, सभी धम ईश्वर प्राप्ति के विभिन्न माग है और किसी भी माग का सही अनुकरण करने से ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। उनका कहना था कि **"ईश्वर को जिस शक्ल और नाम से तुम पुकारोगे। उसी नाम और स्वरूप मे तुम उसे देखोगे ।**

(3) मनुष्य मात्र की सेवा और भलाई को धम बताना रामकृष्ण की ससार को तीसरी महत्वपूर्ण देन थी । उनका कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति भगवान् का स्वरूप है और इस कारण मनुष्य की सेवा करने से एक व्यक्ति ईश्वर को प्राप्त कर सकता है ।

निष्कर्ष—इस प्रकार हम देखते ह कि स्वामी रामकृष्ण परमहस ने अपने व्यवहार और कम स उपनिषदो और वेदो के मूल विचारो को स्पष्ट करके हिन्दू पुनरुद्धार आन्दोलन को उसकी श्रेष्ठता पर पहुँचा दिया । यही नही बल्कि उन्होने मानव मात्र को यह सन्देश भी दिया कि व धम और संस्कृति के विभेदो को भूलकर

मानव मात्र की भलाई का प्रयत्न करें। भौतिकवाद, संघर्ष और घृणा के इस युग में उन्होंने संसार को अध्यात्मवाद का उपदेश देकर संसार को एकता, प्रेम और सहयोग का मार्ग बताया।

महात्मा गांधी ने स्वामी रामकृष्ण परमहंस के बारे में लिखा है कि "रामकृष्ण परमहंस के जीवन की कहानी व्यावहारिक धर्म है। उनका जीवन हमें ईश्वर को हमारे समक्ष दिखाता है।"

सारांश में कहा जा सकता है कि स्वामी रामकृष्ण परमहंस एक महान् विभूति थे जिन्होंने अन्य सुधारकों के समान किसी समाज या संस्था की स्थापना नहीं की। उन्होंने अपनी इष्ट देवी काली की भक्ति, ध्यान और योग से यह अनुभव कर लिया कि सब धर्म एक ही सनातन धर्म के अंश और अंग हैं। उन्होंने सभी मत मतान्तरों की साधना प्रणालियों से ईश्वर का साक्षात्कार किया। उन्होंने देश को फिर से सब धर्मों की मूलभूत एकता ईश्वर की लौकिक सत्ता एवं आध्यात्मिक जीवन की महत्ता में विश्वास जमाने की सबल प्रेरणा दी एवं निर्गुण सगुण, एक अनेक, द्वैत अद्वैत साकार निराकार सबका मूल्य बताकर सुन्दर समन्वय किया। वे पूर्व और पाश्चात्य संस्कृतियों के समन्वय का स्वप्न साकार करने के लिए इस युग में अवतीर्ण हुए थे। डा० सिल्वेन लिवी के शब्दों में, **"क्योंकि रामकृष्ण का हृदय और मस्तिष्क सभी देशों के लिए था इसलिए उनका नाम सम्पूर्ण मानव मात्र की सम्पत्ति है।"**

VII स्वामी विवेकानन्द भारतीय पुनर्जागरण में योगदान
(Vivekanand's Role in Indian Renaissance)

'वर्तमान भारत जिस ध्येय को लेकर उठा है, उसका सारा आख्यान विवेकानन्द कर चुके थे। बाद के महात्मा और नेता उस ध्येय को कार्य रूप देने का प्रयास करते रहे हैं। जिस स्वप्न के कवि विवेकानन्द थे, गांधी और जवाहरलाल उसके इंजिनियर हैं।

डा० रामधारी सिंह 'दिनकर

परमहंस रामकृष्ण ने साधनापूर्वक धर्म की जो अनुभूतियाँ प्राप्त की थीं, स्वामी विवेकानन्द ने उनसे व्यावहारिक सिद्धान्त निकाले। जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है कि विवेकानन्द एक ओजस्वी वक्ता थे और बंगला गद्य और पद्य के सफल लेखक थे। वह एक सुन्दर और रोबीले आदमी थे और उनमें शान तथा गंभीरता भरी हुई थी। उनको अपने में और अपने मिशन में पूरा भरोसा था, साथ ही वह सक्रिय और तीव्र शक्ति से भरपूर थे और भारत को आगे बढ़ाने की उनमें गहरी लगन थी।"

विवेकानन्द के बचपन का नाम था नरेन्द्र दत्त, जिनका जन्म 12 जनवरी, 1863 ई० को हुआ। वह बड़े योग्य और मेधावी छात्र थे। अपने कालेज के प्रिंसिपल महोदय से परमहंस रामकृष्ण की अपूर्व प्रशंसा सुनकर वह उनके समीप

पहुँचे। जाते ही उन्होंने रामकृष्ण से प्रश्न किया, "क्या आपने ईश्वर का दर्शन किया है?" उन्होंने उत्तर दिया, "मैं ईश्वर को ऐसे देखता हूँ, जस मैं तुमको देख रहा हूँ।" इसी उत्तर को सुन कर वह बहुत प्रभावित हुए और परमहंस के शिष्य हो गये। गुरु की कृपा से उन्हें धर्म में प्रतीति बढ़ी और उन्हें आध्यात्मिक साक्षात्कार हुआ। रामकृष्ण ने नरेन्द्रनाथ के जीवन को नई दिशा दी। गुरु की प्रेरणा के कारण ही वह धार्मिक सामाजिक चेतना के कार्य में जुट गये। रामकृष्ण परमहंस के सन् 1886 इ० में देहावसान के पश्चात वह उनके उत्तराधिकारी बने तथा उन्होंने संन्यास धारण करने के साथ अपना नाम विवेकानन्द रख लिया। उन्होंने उस समय यह प्रण लिया कि **मैं अपना जीवन रामकृष्ण के संदेश के प्रचार व प्रसार में लगा दूँगा।"** रामकृष्ण के मानववाद को उनके प्रिय शिष्य विवेकानन्द के रूप में एक शक्तिशाली प्रचारक प्राप्त हुआ।

विवेकानन्द द्वारा भारत भ्रमण—विवेकानन्द अब भारतीय समाज को जागृत करने में जुट गये। गुरु ने जिस समय परम गति पाई उस समय स्वामी विवेकानन्द की अवस्था केवल तेईस वर्ष की थी। पांच वर्ष तक तीर्थाटन एवं भारत-दर्शन के उद्देश्य से उन्होंने समूचे देश का भ्रमण किया। इस भ्रमण में देशवासियों के घोर अज्ञान और बेहद गरीबी का अनुभव कर उनका दिल भर आया। कन्याकुमारी अन्तरीप के पवित्र मंदिर में देशगोपरान्त हिंद महासागर के तट पर एक चट्टान पर खड़े होकर उन्होंने प्रतिज्ञा की कि **वे अपना जीवन निर्धनता के मारे लाखों करोड़ों भारतीयों की भौतिक समृद्धि और आध्यात्मिक उन्नयन एवं उनकी शिक्षा के लिए होम देंगे।**"

स्वामी विवेकानन्द का व्यक्तित्व अनुपम था उनकी विद्वता अगाध थी और उनमें तेजस्विता विद्यमान थी, जो आध्यात्मिक शक्ति के कारण उत्पन्न होती है। इस तरह रामकृष्ण अनुभूति थे और विवेकानन्द उसके व्याख्याकार बनकर आये। रामकृष्ण दर्शन थे विवेकानन्द ने उसके क्रिया पक्ष का आख्यान किया।

शिकागो सर्व धर्म सम्मेलन में—स्वामी विवेकानन्द के हृदय में एक आंधी उफन रही थी और उनकी आत्मा में एक अग्नि प्रज्वलित थी। इस हालत में उन्होंने यह निश्चय किया कि संसार के सामने भारतीय अध्यात्म का संदेश प्रस्तुत किया जाए। अस्तु सन् 1893 में वह अमरीका गए और शिकागो में उन्होंने धर्म के विश्व सम्मेलन के सामने अपना प्रसिद्ध भाषण दिया। उनका भाषण भारत की सार्वदेशिकता और [illegible] हृदयता में ओत प्रोत था। वहाँ उपस्थित सभी श्रोता उनकी वाणी सुनकर मन्त्र मुग्ध हो गए।

भारतीय आत्म ज्ञान पर उनका जो व्याख्यान हुआ उसे सुनकर लोग चकित रह गये। स्वामी विवेकानन्द ने उनसे कहा, '**जिस प्रकार सारी धाराएं अपने जल को ले जाकर सागर में मिला देती हैं उसी प्रकार मनुष्य के सारे धर्म ईश्वर की ओर ले जाते हैं।"** वहाँ अपने प्रेम और आस्था के सन्देश का अच्छा स्वागत हुआ देखकर

उन्होंने पूरे संयुक्त राज्य अमेरिका का दौरा किया जिसमें उन्होंने जगह जगह व्याख्यान दिये, वेदान्त दर्शन समझाने के लिए गोष्ठियाँ की । 'राजयोग' नाम से एक ग्रंथ लिखा और न्यूयार्क में एक वेदान्त समाज की स्थापना की ।

उनके वहाँ दिये गये भाषणों से प्रभावित होकर 'द न्यूयार्क हेराल्ड' समाचार पत्र ने लिखा कि "उनका भाषण सुन लेने पर अनायास यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि ऐसे ज्ञानी देश को सुधारने के लिए (ईसाई) धर्म प्रचारक भेजना कितनी बेवकूफी की बात है ।" इसी पत्र की रिपोर्ट के अनुसार, विवेकानन्द निश्चित रूप से विश्व धर्म संसद के सबसे प्रमुख व्यक्तित्व थे । 'वे दिव्य शक्ति के वक्ता थे ।' उनकी ओजस्वी मधुर ज्ञानमयी वाणी, गेरुआ वेश और बुद्धि दीप्त मुख मण्डल ने श्रोताओं को अत्यन्त प्रभावित किया । यह पहला अवसर था जब कि पाश्चात्य देशों की जनता को भारतीय धर्म की महत्ता ज्ञात हुई । इस तरह शिकागो के विश्व धर्म-सम्मेलन के पश्चात् ही भारतीय धर्म व संस्कृति का महत्त्व यूरोपीय देशों में बढ़ा । उनमें इनके प्रति आकर्षण और सम्मान बढ़ गया । इस तरह भारत में ही नहीं अपितु पाश्चात्य देशों में भी विवेकानन्द ने उपनिषदों के वेदान्त दर्शन एवं प्राचीन आत्म ज्ञान का सन्देश गुंजा दिया ।

विश्व के सम्मुख भारतीय सभ्यता और संस्कृति की श्रेष्ठता और सर्वोपरिता की साहस पूर्ण घोषणा करने से उन हिन्दुओं में नवीन प्रेरणा व शक्ति का संचार हुआ जो यूरोपीय संस्कृति व सभ्यता के सम्मुख अपने को हेय समझते थे । इससे भारतीयों के मन में आत्म गौरव का एक सशक्त भाव उत्पन्न हुआ जिससे राष्ट्रीय पुनरुत्थान के मार्ग को प्रशस्त होने में निश्चित सहायता प्राप्त हुई ।

विवेकानन्द द्वारा रामकृष्ण मिशन की स्थापना उद्देश्य

सन् 1897 में, यूरोप व अमेरिका भ्रमण से लौटने पर स्वामी विवेकानन्द का देशवासियों ने भव्य स्वागत किया । कुमारी अन्तरीप (कन्याकुमारी) से लेकर कलकत्ता तक उनकी यात्रा एक विजय यात्रा रही क्योंकि वह प्रथम भारतीय थे जिसने पाश्चात्य की श्रेष्ठता को चुनौती दी थी । स्वामी विवेकानन्द ने देश भर का एक और दौरा किया । इस बार उन्होंने हिन्दू जाति को चुनौती दी कि पश्चिम की भांति व्यवस्थित और सुसंगठित ढंग से समाज सेवा और सुधार का कार्य करें विशेष रूप से स्त्री शिक्षा और उत्थान का कार्य ।

अस्तु 1897 ई० में उन्होंने इस संगठन के आदेश के रूप में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की । इस मिशन का उद्देश्य परमहंस रामकृष्ण की शिक्षाओं के अनुसार जन-समाज की सेवा करना था और इसमें किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता नहीं थी । कुछ समय में ही भारत तथा विदेशों में उसकी अनेक स्थानों पर शाखाएँ कायम हो गयीं । 'इस मिशन को भारत की प्राचीन संस्कृति से प्रेरणा प्राप्त हुई । यह धार्मिक तथा सामाजिक सुधार का समर्थन करता है । विशुद्ध वेदान्त सिद्धान्त इसके आदर्श हैं और मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिकता का विकास करना इसका

लक्ष्य है। भारत मे विभिन्न स्थानो मे अपनी शाखाओ द्वारा यह मिशन परोप कारिता के दिव्य काय और देश हितकारी साधनो से समाज सेवा कर रहा है। अस्पताल खोलकर रोगियो की सहायता व सेवा सुश्रुषा करना, अनाथालयो और आश्रमो द्वारा दीन-दुखियो की सेवा करना तथा विद्यालयो व वाचनालयो द्वारा ज्ञान व शिक्षा का प्रचार करना, आजकल इस मिशन का विशेष काय है। इस मिशन ने नयी परिस्थितियो के अनुरूप हिन्दुत्व की नयी अभिव्यक्ति के लिए असाधारण काय किया।'

स्वामी विवेकानन्द ने अपने शेष जीवन काल का बहुत जोर शोर से मिशन को सगठित करने म लगाया। वे अतिम क्षण तक तन्मयता स अपने वेदान्ती विचार द्वारा देश को ऊँचा उठाने मे लगे रहे। उन्होने मिशन के दो प्रधान केन्द्र स्थापित किए एक कलकत्ता के पास वलूर म और दूसरा अल्मोडा के पास मायावती म। इन केन्द्रो मे रामकृष्ण मिशन म शामिल होने वाले नवयुवको को सन्यासी के रूप म धार्मिक और समाज कल्याण सम्बन्धी कार्यो की दीक्षा दी जाती थी। सन् 1902 म 39 वष की अल्पावस्था मे ही विवेकानन्द का देहात हो गया।

विवेकानन्द एव रामकृष्ण मिशन का योगदान—परमहस रामकृष्ण व स्वामी विवेकानन्द ने अपने आचरण स हिन्दुत्व के उदार भाव का उदाहरण प्रस्तुत किया। उन्हे हिन्दू मुसलमान ईसाई किसी म भेद नही जान पडता था। जातिगत ऊँच नीच व छुआ छूत का भी उन्होने प्रबल विरोध किया। हिन्दुत्व के प्रबल समथक होने पर भी उनका इस्लाम के प्रति कोई द्वेष नही था। रामकृष्ण ने तो छ महीनो तक विविवत मुसलमान रहकर इस्लाम की साधना भी की थी। उनकी कल्पना थी कि इस्लाम की व्यावहारिकता का आत्मसात किये बिना वदात के सिद्धात जनता के लिए उपयोगी नही हो सकत। स्वामी विवेकानन्द का कथन है कि **हमारी जन्म भूमि का कल्याण तो इसमे है कि उसके दो महान धम—हिन्दुत्व और इस्लाम मिलकर एक हो जाये। वेदान्ती मस्तिष्क और इस्लामी शरीर क सयोग से जो धम खडा होगा वही भारत की आशा है।"**

(1) स्वामी विवेकानन्द के नतृत्व म रामकृष्ण मिशन ने प्रचार किया कि सभी धम सच्चे और सुन्दर है। प्रत्यक धम को चाहिए कि वह अपने म अन्य धर्मों की एकता का आत्मसात कर ले।

(2) पश्चिमीय सभ्यता भौतिकवादी स्वार्थी एव विलासपूण है। इन दोषो स प्रत्येक हिन्दू को अपने धम व संस्कृति की रक्षा करना चाहिए। परन्तु देश की उन्नति के लिए पश्चिमीय काय प्रणाली तथा शिक्षा की आवश्यकता है।

(3) विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन के सन्यासी एक नये तरीके मे समाज की सक्रिय सेवा म - दुर्भिक्ष पीडितो का दुख दूर करन म रोगियो की चिकित्सा म अनाथो के पालन पोषण म लगाये गये। उन्होने शिक्षा प्रसार हेतु अनेक विद्यालय खोले और सेवा केन्द्र स्थापित किए। अनेक स्थानो पर मठो की स्थापना

भी की। बिना किसी भेद भाव के मिशन आज भी सेवा कार्य में जुटा हुआ है जो श्लाघनीय है।

(4) रामकृष्ण और विवेकानन्द की अनुभूति आचरण अभ्यास, लगन और निष्ठा के द्वारा पथ भ्रष्ट पश्चिमी सभ्यता के अंधे अनुयायी हिन्दुओं को सच्चे हिन्दुत्व की ओर आकर्षित किया गया।

स्वामी विवेकानन्द के कार्यों का मूल्यांकन— स्वामी विवेकानन्द के धर्म में मानव-समाज की सेवा का महत्त्वपूर्ण स्थान था। वे शिक्षा स्त्री पुनरुद्धार और आर्थिक प्रगति के पक्ष में थे। निर्धनता अशिक्षा अंध-विश्वास और रूढ़िवादिता पर उन्होंने कठोरतम प्रहार किये। उनका कथन है **निर्धन, अनजान अशिक्षित और असहाय को अपना ईश्वर बनाओ। इनकी सेवा करना ही महान धर्म है।'** उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि "**जब तक करोड़ों व्यक्ति भूखे और अज्ञानी हैं, तब तक मैं हर उस व्यक्ति को देश द्रोही मानता हूँ जो उन्हीं के खर्चे पर शिक्षा प्राप्त करता है और उनकी बिल्कुल परवाह नहीं करता।'**

विवेकानन्द धर्म के उस स्वरूप को प्रस्तुत कर रहे थे जो मानव कल्याण में सहायक हो। उन्होंने कहा कि **वे ऐसे धर्म पर विश्वास नहीं करते जो विधवा के आंसू न पोंछ सके अथवा अनाथ के मुंह में रोटी का टुकड़ा न ला सके।'** उनके मतानुसार गिरे हुए की सेवा करना ही सबसे बड़ा धर्म है।

स्वामी विवेकानन्द सभी धर्मों की मूलभूत एकता में विश्वास करते थे, और उन्होंने सर्वदा धार्मिक उदारता, समानता और सहयोग पर बल दिया। उन्होंने कहा था कि "**सहायता करो लड़ो नहीं, एक-दूसरे से ग्रहण करो, विनाश नहीं मेल और शान्ति, मतभेद नहीं।**" विवेकानन्द ने धर्म के संकुचित स्वरूप को कभी नहीं माना। धर्मान्धता रूढ़िवाद और मिथ्या विश्वासों को दूर करने पर उन्होंने जोर दिया। **डॉ० हेनसथ के शब्दों में, "वर्तमान युग में भारतीयों के भौतिक कष्टों और मिथ्या विश्वासों की सम्भवत सबसे अधिक तीखी जोरदार और कटु भर्त्सना विवेकानन्द ने की।**

डॉ० के० एम० पणिक्कर के मतानुसार, "उनमें सबसे विलक्षण बात यह थी कि उनके हृदय में देश भक्ति की ज्वाला धधक रही थी। और वह हिन्दू धर्म और मातृ भूमि के अतीत गौरव के पुनरुद्धार के लिए बेचैन थे।"

स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों के फलस्वरूप भारतीयों में शारीरिक उन्नति, मानस, सेवा और कर्म की महत्ता का सम्मान और प्रचार बढ़ गया। विवेकानन्द ने अनेकों बार कहा है **भारत का कल्याण शक्ति के साधनों में है। जन जन में जो शक्ति छिपी हुई है हमें उसे साकार करना है। जन जन में जो साहस और जो विवेक प्रच्छन्न है उसे हम बाहर लाना है।**

विवेकानन्द नारी शिक्षा और उनके उन्नयन के प्रबल समर्थक थे। नारियों के प्रति उनमें असीम उदारता थी। उन्होंने कहा है **'संसार की स्त्री जातियों**

नारियों का समुचित सम्मान करके ही महान हुई हैं। जो जाति नारियों का सम्मान करना नहीं जानती वह न तो अतीत में उन्नति कर सकी और न आगे उन्नति कर सकेगी।"

निर्धनता, पुरोहितवाद और धार्मिक अत्याचार सिखाने वाले दर्शनों के स्वामी विवेकानन्द प्रचण्ड विरोधी थे। जैसे-तैसे धन सग्रह करने वाले धनवानों के प्रति भी उनमें आदर भाव नहीं था। उन्होंने कहा है, "भारत की एक मात्र आशा उसकी जनता है ऊँची श्रेणी के लोग तो शरीर और नैतिकता, दोनों ही दृष्टियों से मर चुके हैं।"

इस तरह, हम देखते हैं कि समाज का नव निर्माण और सेवा ही विवेकानन्द का प्रथम धर्म था। एक आधुनिक इतिहासकार ने 'भारतीय राष्ट्रीयता' के निर्माण में उनके योगदान के बारे में लिखा है कि **स्वामी विवेकानन्द को आधुनिक भारतीय राष्ट्रीयता का पिता पुकारा जा सकता है बहुत कुछ अंशों में उन्होंने उसका निर्माण किया और साथ ही अपने जीवन में उसके श्रेष्ठतम और ऊँचे आदर्शों को सम्मिलित किया।**

सारांश में स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों ने राष्ट्रीयता, भारतीय सभ्यता व संस्कृति की शक्ति में वृद्धि की। उन्होंने भारतीयों को नवयुग की प्रेरणा दी। उनका नमो में जागरण का नूतन स्वर भर हमारी आध्यात्मिक और नैतिक भित्ति का पुनः दृढ़ बनाकर हमारे उत्थान की एक विशाल पृष्ठ भूमि तैयार कर दी। इस तरह विवेकानन्द की वाणी में ही सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का जन्म हुआ एवं भारतीयों में अपने उज्ज्वल भविष्य के प्रति उज्ज्वल आशा का संचार हुआ।

VIII थियोसोफिकल सोसायटी उद्देश्य एवं योगदान
(Theosophical Society Aims and Contribution)

ब्रह्म समाज की भांति एक और उदारवादी आन्दोलन भारत में चला जिसकी प्रेरणा विदेशीय थी। परन्तु विकास क्षेत्र भारत था। उसकी धार्मिक नीति भारत के तत्कालीन वातावरण के अनुकूल थी। इस कारण उसके प्रचार व प्रसार में यहां उसे अनुकूलता मिल सकी। यह आन्दोलन थियोसोफी' अथवा 'ईश्वर का ज्ञान' था। यह मत अथवा संगठन भी नवोत्थान का द्योतक है। इसकी विशेषता अन्तर्राष्ट्रीयता और विश्वास सृष्टि व्यापी है। 'थियोसाफी शब्द का निर्माण यूनानी भाषा के दो शब्दों— 'Theos =ईश्वर + 'Sophia =ज्ञान—से मिलकर बना जिसका अर्थ "ईश्वर का ज्ञान' है। संस्कृत में इसके लिए 'ब्रह्म विद्या शब्द का प्रयोग होता है।

स्थापना—सन् 1875 में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के न्यूयार्क नगर में एक रूसी महिला मैडम हेलन पेट्रोवना ब्लेवटस्की और कर्नल एच एस आलकाट ने थियोसाफिकल सोसायटी अथवा ब्रह्म विद्या मण्डल की स्थापना की थी। सोसायटी की स्थापना के चार वर्ष बाद ये दोनों भारत आये तथा यहां प्रचार कार्य आरम्भ किया। 1882 ई में इस संस्था का अन्तर्राष्ट्रीय प्रमुख केन्द्र अड्यार (मद्रास) हो गया और तब भारत से ही

इसका प्रचार भारत के विभिन्न प्रान्तो एव अन्य देशा मे होन लगा । सन् 1907 म श्रीमती एनीबीसेन्ट इस सस्था की अध्यक्षा बनी और मृत्युपर्यन्त (सन् 1937 ई०) इस पद पर आसीन रही ।

प्रमुख उद्देश्य—इस सस्था के उद्देश्यो की व्याख्या करते हुए सस्थापक कर्नल ऑलकॉट ने बम्बई मे घोषणा की थी, "उनका लक्ष्य भारतीयो को उनके प्राचीन गौरव और महानता की याद दिलाना है ताकि भारत अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुन प्राप्त कर सके।" बस इस सस्था का मुख्य उद्देश्य सृष्टि के अधिशासी नियमो का अनुसधान तथा प्रचार करना था । आगे चलकर इनका विस्तार हो गया, जैसे सर्वोच्च नतिकता और धार्मिक आकाक्षाओ का चरित्र द्वारा जीता-जागता उदाहरण प्रस्तुत करना, पाश्चात्य राष्ट्रो म पूर्वीय धार्मिक दशना तथा ज्ञान की विविध शाखाओ का प्रचार करना मानव मात्र मे भ्रातृत्व भाव उत्पन्न करना तथा सभी धर्मों के लोगो को एक समान समझना । साराश म, "यह कोई साम्प्रदायिक सस्था व आन्दोलन नहीं है । इसका प्रमुख उद्देश्य समस्त धर्मों की मूलभूत एकता, आध्यात्मिक जीवन का महत्त्व और विश्व-बन्धुत्व का प्रचार करना है ।"

दशन एव प्रमुख सिद्धान्त—थियोसोफिकल समाज ने प्रकृति के नियमो को खोजना और मनुष्य की दवी शक्तियो के विकास की निम्नलिखित मुख्य बातें बतायी हैं

1 ब्रह्म की कल्पना, जिससे सभी व्यक्तियो की उत्पत्ति होती है और जो सभी मनुष्यो मे निवास करता है ।

2 धम के विभिन्न स्वरूप हैं, परन्तु व सभी ब्रह्म के अग हैं ।

3 ब्रह्म की देख भाल मे 'उसके बडे बच्चे' जिन्हे सन्त, दार्शनिक, महात्मा दवता आदि पुकारते हैं, ससार का माग दशन करते हैं ।

4 मनुष्य अपने कम के अनुसार धीरे धीरे प्रयत्न करत हुए 'निर्वाण' प्राप्त कर सकता है ।

5 सभी धर्मों का महत्त्व है क्योकि प्रत्येक धम किसी न किसी प्रकार मनुष्य को निर्वाण प्राप्त करने का माग बताता है ।

6 स्त्री और पुरुष समान हैं क्योकि आत्मा कभी पुरुष शरीर म जन्म ले सकती तो कभी स्त्री शरीर म ।

महत्त्व एव योगदान—भारत मे यह सस्था डा० एनीबीसन्ट के सभापतित्व म एक अनुपम शक्ति हो गयी इसने विश्व का तथा विशेषकर भारतीयो का भारतीय संस्कृति की उत्कृष्टता की ओर ध्यान आकर्षित कर, धार्मिक सहिष्णुता पर अधिक जोर दिया । इसने शिक्षा तथा समाज सुधार के अनेक काय किये । इसने बनारस मद्रास, मदनपल्ली आदि स्थानो म साधारण व उच्च शिक्षा के साथ साथ वैज्ञानिक हिन्दू धम के अध्ययन का भी सफल प्रयत्न किया । इस सस्था द्वारा स्थापित किया

बनारस का सेन्ट्रल हिन्दू कालेज' ही आगे चलकर 'बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी' में परिवर्तित हो गया। इसी संस्था ने सर्वप्रथम अछूतों के लिए पाठशालाएँ निर्माण कर राष्ट्रीय कार्य की ओर ठोस कदम बढ़ाया।

सारांश में, 'थियोसोफिकल समाज' ने भारतीयों में नवीन प्रेरणा शक्ति, अतीत में श्रद्धा भविष्य में विश्वास व आशा उत्पन्न की एवं हिन्दू मस्तिष्क में धार्मिक हीनता की भावना को दूर कर आत्म गौरव की भावना का संचार किया। इसने प्राचीन भारतीय आदर्शों और परम्पराओं को पुनर्जीवित करने में सहयोग दिया। इस तरह इस संस्था का भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

एनीबीसेन्ट भारतीय पुनरुत्थान में योगदान

डा० रामधारीसिंह 'दिनकर' का कथन है कि थियोसोफिकल समाज का नाम विदेशी है और यह संस्था भी विदेश में ही जन्मी थी। इसके सदस्यों की संख्या भी कभी इतनी नहीं हुई कि इसकी गिनती भारत के महान् सांस्कृतिक आन्दोलनों में की जा सके। किन्तु फिर भी इस संस्था की एक सभानेत्री श्रीमती एनीबीसेन्ट ने हिन्दुत्व के नवोत्थान एवं भारतीय राष्ट्रीयता के विकास के लिए इतना कुछ किया कि उनकी सेवा भुलाई नहीं जा सकती। उनके जीवन का सबसे बड़ा काम यह रहा कि उन्होंने ऊँघते-हुए हिन्दुओं में आत्माभिमान भर दिया एवं जब ईसाई मिशनरी भारत के बाहर भारत के विषय में कुप्रचार करके यहां के लोगों को ईसाई बना रहे थे तब इस ईसाई महिला ने खुलकर भारत और हिन्दुत्व का पक्ष लिया।

श्रीमती एनीबीसेन्ट 16 नवम्बर, 1893 ई० के भारत आयीं तब उनकी अवस्था 46 वर्ष की थी। इंगलण्ड में भारत आते ही, वे भारत के सांस्कृतिक आन्दोलन में कूद पड़ी और भारत के साथ थियोसाफिकल समाज का नाम भी बहुत ऊँचा कर दिया। इंगलैण्ड में वे 'फैबीयन सोसायटी' में काम करती थी, जहां उसके सहकर्मी विश्व विख्यात साहित्यकार जार्ज बर्नार्ड शॉ थे। शॉ ने लिखा है कि 'उस समय इंगलैण्ड में उनके समान ओजस्वी भाषण देने वाला कोई व्यक्ति नहीं था। *अंग्रेजी भाषा पर उनका असाधारण प्रभुत्व था।"*

) **हिन्दू धर्म के प्रति सेवाएँ**—भारत और हिन्दुत्व को श्रीमती एनीबीसेन्ट एक दूसरे का पर्याय मानती थीं। वे मानती थीं कि पूर्व जन्म में वे हिन्दू थीं। हिन्दू धर्म को वे विश्व के धर्मों में सबसे प्राचीन ही नहीं, सबसे श्रेष्ठ मानती थीं। सन् 1914 में एनीबीसेन्ट ने एक भाषण में कहा था 'विश्व के अनेक धर्मों के 40 वर्ष के अध्ययन के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि मुझे हिन्दुत्व के समान कोई धर्म इतना पूर्ण, वैज्ञानिक दार्शनिक और आध्यात्मिक नहीं जँचता। जितना अधिक तुमको इसका *भान होगा उतना ही अधिक तुम इससे प्रेम रखोगे।'*

श्रीमती एनीबीसेन्ट का व्यक्तित्व अद्भुत था उनकी वाक्पटुता, कर्तव्यशक्ति तत्परता और अदम्य उत्साह, ज्ञान भण्डार, सम्यक व्यक्तित्व सभी का प्रयोग हिन्दुत्व

क परिवार मे हुआ। डॉ० श्री प्रकाश के मतानुसार, "श्रीमती एनीबीसेन्ट को ही इस बात का श्रेय है कि उन्होने एक उदासीन और सोती हुई जाति को नीन्द से जगा दिया, उसके अपन आत्म-सम्मान और गौरव को पुनर्जीवित कर दिया। भारतीयो को विवश कर दिया कि वे अपने कदम टेक सके और ससार के राष्ट्रो म अपना स्थान ले सके।'

राजनीतिक क्षेत्र मे सेवाएँ भारत भक्ति—भारत की निन्दा करने वाले यूरोपियनो और भारतवासियो को जसा मुँह-तोड जवाब श्रीमती एनीबीसेन्ट ने दिया वैसा किसी और से न दिया जा सका। एनीबीसेन्ट और मैक्समूलर जैसे लोगो की ही निष्पक्षता और उदारता का परिणाम था कि ईसाई मिशनरियो के दभ म कमी आयी और ससार भारत के सात्विक रूप को पहचानने म समथ हुआ।

सन् 1914 स श्रीमती एनीबीसन्ट ने देश की राजनीति म प्रवश किया। लोकमान्य बालगगाधर तिलक द्वारा चलाय हुए 'होम रूल आन्दोलन का उन्होने बडे जोर के साथ समथन किया। 1917 म उन्ह भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस का सभापति चुना गया। वहा उन्होने बडी योग्यता से जिम्मेदारी को निभाया। कुछ वर्षा तक उन्होन देश म राजनीतिक चेतना जगान की दिशा म उल्लेखनीय काय किया। इस सम्बन्ध म महात्मा गाधी ने लिखा है कि "जब तक भारतवष जीवित है, एनीबीसेन्ट की सेवाएँ भी जीवित रहेगी, जो उन्होन इस देश के लिए की थी।"

निष्कष थियोसोफी धम नहीं, धम की सजीवनी—थियोसोफी सभी धर्मो का समन्वय चाहती है। थियोसोफिस्ट प्रत्यक धम म जो उसका असली तत्व है, उसे अपने विश्वास का उपकरण मानते है। सारांश मे, विश्व बन्धुत्व तुलनात्मक धम और परलोक विद्या का अनुसधान थियोसोफी के ये तीन प्रमुख उद्देश्य है। इस तरह थियोसोफी वह असली गहराई है जिसमे से सभी धर्म निकले है उन्ह लेकर सभी धर्मों के बीच एकता स्थापित की जा सकती है।"

IX मुस्लिम समाज का पुनर्जागरण अलीगढ आन्दोलन
[Renconstruction of Muslim Society Aligarh Movement]

19वी सदी म धम और समाज सुधार की जो लहर भारत म उठी उसस मुसलमान सम्प्रदाय भी मुक्त न रहा। उसमे भी विभिन्न धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन हुए। मुस्लिम समाज म भी अनेक कुरीतियो का समावेश हो चुका था। अन्धविश्वास, पाखण्ड और रूढिवादिता धर्म पर बुरी तरह स छा चुकी थी।

बहाबी आन्दोलन धार्मिक सुधार—उन्नीसवी सदी के शुरू मे मुसलमानो म अपूव जागृति आरम्भ हुई। अरब देश मे 'बहाबी आन्दोलन चला। जिसका मुख्य उद्देश्य था—इस्लाम को परिमार्जित और परिशुद्ध करना। उसी समय मुस्लिम भारतीय समाज म व्याप्त निराशाजनक वातावरण म सौभाग्य से मुहम्मद शाह वली उल्लाह (दिल्ली) जस उच्च धार्मिक नता का अविभाव हुआ। उन्ही के एक शागिद

(शिष्य) अहमद शाह (रायबरेली) ने भारत म 'वहावी सम्प्रदाय और आन्दोलन' को जन्म दिया। इसका उद्देश्य भारतीय मुस्लिम समाज म विशुद्धता लाना और इस्लामी धार्मिक विचारधारा और आचरण म घुस आयी दुर्बलताओ को निकाल बाहर करना था। सयद अहमद बरलवी ने पाश्चात्य सभ्यता के विरोध म कट्टर इस्लामी सिद्धातो का प्रचार किया। वे अग्रेजो को मुसलमानो का सबस बडा दुश्मन समझते थे। डॉ० के० एम० पणिक्कर ने लिखा है कि "यद्यपि वहावी आन्दोलन की पृष्ठभूमि आमूल परिवतनवादी थी फिर भी वह एक धार्मिक पुनरुत्थान का निमित्त बनकर रह गया। किन्तु वह किसी प्रकार से हिन्दू विरोधी नही था। उसकी शत्रुता तो अग्रेजी सत्ता से थी जिसने कठोर हाथो मे उनका दमन किया था।"

सर सय्यद अहमद खाँ मुस्लिम समाज का पुर्निर्माण

सैयद अहमद खाँ का जन्म सन् 1817 ई० मे दिल्ली म हुआ था। हिन्दू पुन जागरण म जो काय राजा राममोहन राय ने किया, वही काय मुस्लिम पुनर्जागरण म सयद अहमद खाँ न किया। वे मुस्लिम समाज व धम मे घुस आयी बुराईयो को दूर करना चाहते थे। वे मुसलमानो को पाश्चात्य एव आधुनिक रीति नीति म शिक्षित करना चाहते थे। उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि भारत के मुसलमान इस्लामी धार्मिक शिक्षा के साथ साथ पाश्चात्य अग्रेजी शिक्षा के भी महत्त्वपूण विषयो का अध्ययन करे।

मुस्लिमों की शोचनीय दशा—1857 के गदर के बाद अग्रेज सरकारी अधिकारी मुसलमानो के प्रति खुली शत्रुता ही नही निभा रहे थे, उनके कार्यों को बहुत सदह की दृष्टि से देखते थे। तत्कालीन परिस्थितियो मे उनको किसी तरह तरजीह मिलना कठिन था, क्योकि वे नूतन शिक्षा पश्चिमी विद्या उपाजन के क्षेत्र मे नही उतरे थे। अब अग्रेजी भाषा न राजकीय भाषा के रूप मे फारसी भाषा का स्थान ग्रहण कर लिया था और मुसलमानो ने अग्रेज दुश्मनी के कारण अग्रेजी शिक्षा की ओर उपेक्षापूवक ध्यान नही दिया था।

इस सम्बन्ध म डा० के० एम० पणिक्कर न लिखा है "सबसे बडी बात यह थी कि वे देश म अल्प सख्यक थे और यदि वे समय रहते भली भाति आख खोलकर ठीक ढग से सही स्थिति को पहचानने या अपने ह्रास को रोकने म सक्षम न थे तो सचमुच उनके सामन सवनाश का सकट मुँह फलाये खडा था। अब या तो इस्लाम का किसी नयी नीति का सहारा पकडना था या उसको विनाश के गत म चले जाना था।"

जब भारतीय मुस्लिम समाज इस सघन अधकार मे भटक रहा था तब उसे सौभाग्यवश सय्यद अहमद खाँ नामक मुगल दरबार के अमीर का नेतृत्व मिला। सय्यद अहमद खाँ के पिता को मुगल दरबार मे कोर नाम का एक उच्च पद प्राप्त था। यद्यपि सय्यद अहमद खाँ को भी अपने पिता की इस उपाधि

और पद का लालच दिया गया था फिर भी उन्होने इसकी अपेक्षा कम्पनी के अन्तर्गत एक न्यायाधीय (Judicial) पद पर सेवा करना बेहतर समझा।

सय्यद अहमद और अंग्रेजी शासन—जब भारत में इस्लाम का अध पतन बड़ी तेजी से हो रहा था। तब उन्होने उन अपेक्षाकृत नरम तत्वो का नेतृत्व ग्रहण किया जो इस मत के समर्थक थे कि भारत में अंग्रेजी सत्ता का सहयोग करके ही मुसलमानो के भविष्य की रक्षा की जा सकती है। उनका कहना था कि मुसलमानो का एक जाति के रूप में सगठन किया जाय और इस अवधि में इसके निमित्त अंग्रेजो से सहयोग रखा जाय ताकि वे उनकी मदद से अपनी खोयी हुई प्रतिष्ठा फिर प्राप्त कर लें। साथ ही उन्हे अंग्रेजी शिक्षा की ओर भी मुडना चाहिए। अस्तु सय्यद अहमद ने अंग्रेजी शासको की कृपा-दृष्टि प्राप्त करने की मन मे ठान ली।

अंग्रेजो के विरुद्ध जब सन् 1857 में प्रथम बगावत की गयी थी तब प्रमुख मुस्लिम धार्मिक गुरूओ (मुल्लाओ) ने फतवा (धार्मिक आदेश) जारी किया था कि यह मुसलमानो का धार्मिक कर्तव्य है कि वे अंग्रेजो का डटकर प्रतिरोध करें। उस कारण अंग्रेज मुसलमानो से सख्त नाराज थे। किन्तु सय्यद अहमद की प्रेरणा से जौनपुर के मौलवी करामत अली ने घोषणा की कि अंग्रेजो का विरोध करने के लिए इस्लाम बाध्य नही करता है। इधर अंग्रेज सरकार भी अपनी नीति मे परिवर्तन करने के लिए तयार थी। सन् 1872 में **सर विलियम हंटर** ने अंग्रेजी शासन को परामर्श दिया कि इस्लाम के दृष्टिकोण का बेहतर तरीके से समझने और उसके प्रति समझौता करने की ओर ध्यान दिया जाए। इस परिस्थिति में सरकारी क्षेत्रों में सय्यद अहमद खा की जोरदार पूछ होने लगी।

मुस्लिमो मे शिक्षा प्रसार

सय्यद अहमद खा के जीवन का प्रमुख उद्देश्य मुसलमानो मे आधुनिक शिक्षा का प्रसार करना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सय्यद अहमद खा ने सवप्रथम 1864 ई० में गाजीपुर में एक अंग्रेजी शिक्षा का स्कूल स्थापित किया। एक वर्ष बाद अंग्रेजी की पुस्तको का उर्दू मे अनुवाद करने के लिए एक **विज्ञान समाज** (Scientific Society) की स्थापना की। 1869 ई० मे वे लन्दन-यात्रा पर गये और वहाँ शिक्षा जगत में हो रही प्रगति का अध्ययन किया। 1876 ई में वे राजकीय सेवा को त्यागकर मुसलमानो की सेवा में जुट गये। 1877 ई० मे उन्होंने अलीगढ में **'मुहम्मडन एग्लो ओरिएण्टल कालेज'** की स्थापना की जो आगे चलकर **मुस्लिम विश्व-विद्यालय'** कहलाया और **अलीगढ आंदोलन'** का केन्द्र-बिन्दु बना। सर सय्यद अहमद खाँ ने मुसलमानो की शैक्षणिक समस्याओ के समाधान के लिए एक **मुस्लिम शिक्षण समिति'** (Muhammadan Educational Conference) की भी स्थापना की। उन्होंने इस समिति के द्वारा अनेक ऐसे मुसलमानो का सहयोग प्राप्त कर लिया, जो मुसलमानो को अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क मे लाने के लिए

उत्सुक थे और उसके लिए प्रयत्न करने के लिए तैयार थे। इन सबके फलस्वरूप अंग्रेजी के अनेक उपयोगी ग्रंथों के अनुवाद द्वारा उर्दू-साहित्य सम्पन्न हुआ।

सर सैय्यद अहमद और सामाजिक सुधार—सर सैयद ने मुस्लिमों में प्रचलित पर्दा प्रथा का विरोध किया। उन्होंने नारी शिक्षा का प्रबल समर्थन किया। उन्होंने बाल विवाह को रोकने का प्रयास किया। तथा मुस्लिम समाज में प्रचलित पद्धति का विरोध किया। उन्होंने इन सुधारों के पक्ष में जनमत तैयार करने के लिए *'तहजीब उल अखलाक' नामक पत्रिका भी प्रारम्भ की थी। सर सय्यद अहमद* का दृष्टिकोण लौकिक था। व 'अम्ल ए सालेह (सद् कार्यों) का अर्थ संसार में रहकर अच्छे काम करना समझते थे। निरी मुक्ति व परलोक की चर्चा उन्हें अखरती थी। उन्होंने पवित्र 'कुरान' का उर्दू भाषा में भाष्य भी लिखा जिसमें नवीन विचारों के आधार पर कुरान का सही तात्पर्य स्पष्ट किया।

'अलीगढ़ आन्दोलन' का इतिहास व महत्व

डॉ० के० एम० पणिक्कर—ने लिखा है कि आरम्भ ही से अलीगढ़ आन्दोलन को अंग्रेजों का समर्थन मिल गया। सर सैय्यद ने ताड़ लिया कि अब समय उनके अनुकूल है और वह अपने साथ सहानुभूति रखने वाले अंग्रेजों की मदद से एक विद्यालय की संस्थापना करने में जुट गये जहाँ शिक्षा पाकर मुस्लिमों में 'मिल्लत का जज्बा' (विशेष बिरादरी की भावना) पैदा हो सके।

सौभाग्यवश उन्हें प्रिंसिपल थ्योडोर बैंक जैसा सहायक मिल गया जिसने उनके आदर्शों के प्रति सहानुभूति दिखायी और जी जान से उनके कामों में जुट गया। उन्होंने अलीगढ़ में तबलीग (धर्म-प्रचार) व सामाजिक सुधार की भावना उत्पन्न कर दी। सर सैय्यद के नेतृत्व में इससे दो बातें पूरी हो सकीं। **इसने आने वाली पीढ़ी में आंग्ल मुस्लिम सहयोग की भावना कूट-कूटकर भर दी। जिससे दोनों पक्षों ने तत्काल लाभ उठाया, और उसने अलीगढ़ को पढ़े-लिखे मुस्लिम लोगों का एक उद्भमस्थल बना दिया। उन्होंने आगे मैदान में आकर इस्लाम और मुस्लिम समाज के संगठन का मुस्तैदी से काम किया।**

'अलीगढ़ आन्दोलन' भारत में इस्लाम के पुनरुत्थान का मूल कारण माना जा सकता है। इसके दो मुख्य महत्वपूर्ण परिणाम सामने देखने में आये। पहला यह भारतीय इस्लाम के समेकन की दिशा में पहला कदम साबित हुआ। भारत के विभिन्न भागों में बिखरी मुस्लिम जनसंख्या के लिए उसने एक केन्द्रिय संस्था का काम किया जहां उसे एक सामान्य बौद्धिक पृष्ठभूमि और सामान्य विचारधारा से परिचित होने का अवसर मिल गया। यह अलीगढ़ का ही आदमी था। जिसने भारत के कोने-कोने में मुस्लिम आन्दोलन का पथ प्रदर्शन और नेतृत्व किया। दूसरा, अलीगढ़ ने उर्दू को भारतीय इस्लाम की राष्ट्र भाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया। उर्दू तीन सौ वर्षों से भी अधिक काल तक यहां के सरकारी वर्गों की, चाहे वे हिन्दू हों, चाहे मुस्लिम, एक सामान्य भाषा बनी रही।

अलीगढ आन्दोलन का प्रतिबिंब शीघ्र ही सभी प्रान्तों और देशी रियासतो
ड़ने लगा। हैदराबाद (दक्खिन), भोपाल और अन्य मुस्लिम रियासतें अपनी
रियां म मुस्लिम आग्ल ओरियटल कालेज के स्नातको को भरती करने लगी।
नेक नगर मे अजमुने (सस्थायें) स्थापित हुई जहा अलीगढ के सिद्धातो का प्रचार
और उर्दू को प्रोत्साहन मिलने लगा। इसी समय भारत म मुस्लिम समाचार
की, विशेषकर उर्दू मे, वृद्धि हो चली।

इस तरह 'अलीगढ आन्दोलन, ने भारतीय मुसलमाना की शिक्षा, सामाजिक
आर्थिक प्रगति और आधुनीकीकरण के लिए महत्त्वपूर्ण काय किया। धीरे धीरे भार-
य मुसलमान भी उस प्रगति के माग पर अग्रसर हुए जिसका अनुकरण हिन्दू पहने
कर रहे थे। जो कार्य भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और हिन्दू सामाजिक तथा
मिक आन्दोलनो ने हिन्दुओं के लिए किया वही कार्य अलीगढ आन्दोलन ने
रतीय मुसलमानो के लिए किया। इस आन्दोलन ने मुस्लिम सम्प्रदाय को अकम
ता और निराशा से बचाया तथा उसे मध्य युग से आधुनिक युग मे लाने मे
फलता दिलायी।

सैय्यद अहमद के कार्यों का मूल्याकन—इस सभी विद्वान स्वीकार करते हैं कि
स्लिम जाति की शिक्षा, समाज सुधार और जागृति के लिए जो काय सर
य्यद अहमद खा ने किया वह अभी तक किसी भी अन्य भारतीय मुसलमान ने
ीं किया था। उन्हाने मुस्लिम समाज और धम म सुधार करके उन्हे आधुनिक
रिस्थितिया के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया। उन्हाने ही मुसलमानो को पश्चिमी
क्षा और सभ्यता के सम्पक म लाकर उन्हे प्रगतिशील बनाने का प्रयत्न किया।
ने इस लक्ष्य मे उन्होने सफलता भी प्राप्त की।

डा० के० एम० पणिक्कर के शब्दा मे, "वास्तव म, इस बात का श्रेय सर
यद खाँ को दिया जाएगा कि उन्हाने भारतीय इस्लाम को विघटन ही से नही
ाया प्रत्युत उसे एक पीढी के भीतर ऊँचा उठाकर एक महत्त्वपूर्ण आसन पर बठा
या और उसे असदिग्ध रूप स प्रभावशाली बना दिया।" सर सय्यद के विचारो
र अलीगढ आन्दोलन के फलस्वरूप ही भारतीय मुसलमाना की नीद टूटी और
मे नई जागृति और आशा की किरण उत्पन्न हुई। इस तरह बीसवीं शताब्दी के
म, मुस्लिम समाज में सामाजिक व राजनतिक चेतना का उदय हो गया और
भी अन्य देशवासियो के साथ प्रगति के पथ पर आगे बढ चला।

———

9

तिलक और टैगोर का सामाजिक और सास्कृतिक महत्त्व

(Social and Cultural Significance of Tilak and Tagore)

I बाल गगाधर तिलक का राष्ट्रीय आन्दोलन मे योगदान

" वे बहुत ही बुद्धिमान और दृढ विश्वासो के व्यक्ति थे। उन्हें स्वतन्त्रता सब बातो से अधिक प्यारी थी। वे अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए सब कुछ बलिदान करने को तैयार थे। मुझे इस बात मे सन्देह नही कि इतिहास मे उनको आधुनिक भारत के महान् राजनीतिज्ञ के रूप मे स्थान दिया जायेगा ।

रेम्जे मेकडोनल्ड

(1920 मे ब्रिटेन के प्रधानमंत्री

बाल गंगाधर तिलक ने भारत मे राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने तथा स्वतन्त्रता सघर्ष सचालन मे निर्भय होकर नेतृत्व दिया, वह स्मरणीय है। भारत की जनता पर, उनके समय मे जितना प्रभाव तिलक का था उतना किसी भी अन्य राजनेता का न था।

सक्षिप्त जीवन परिचय—बाल गगाधर तिलक का जन्म 23 जुलाई, 1856 ई० को महाराष्ट्र के चिरवल ग्राम मे हुआ था। प्रारम्भ म ही बाल गगाधर का जीवन उदीयमान रहा और उन्होने गणित के क्षेत्र मे अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया। उन्होने बी ए की परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीण कर अपने मेघावी छात्र होने का परिचय दिया। सन 1879 म उन्होन एल एल बी की कानूनी डिग्री प्राप्त की। उन्होने सन् 1880 म सावजनिक जीवन मे प्रवेश किया और अतिम क्षण (1920 ई० म अपनी मृत्यु) तक वह सावजनिक क्षेत्र म सक्रिय रहे। इस 40 वष क सावजनिक जीवन म इन्होने राष्ट्रीय-उत्थान के लिए विभिन्न काय किए जिनके फलस्वरूप इनका नाम भारतीय इतिहास मे सदैव स्मरण किया जायेगा।

तिलक की उग्र-राष्ट्रवादी विचार धारा—तिलक उग्र राष्ट्रवाद के समर्थक थे उनका राष्ट्रवाद अकर्मण्यवादिता का राष्ट्रवाद नही था। वे तो स्वय कर्म म विश्वास करते थे और साथ ही राष्ट्र को काय करने को प्रेरित करते रहते थे उनकी वाणी म बहुत अधिक असर था। व केवल बात करना नही, काय करना जानते थे व राष्ट्र का निर्माण एव शक्तिशाली तथा सगठित देखना चाहत थे। व काग्रेस की तत्कालीन नरम विचारधारा के विरोधी थे और यह मानत थे कि केवल प्रस्तावो को पारित करने मे देश को स्वतन्त्रता प्राप्त नही होगी। केवल धारा सभाओ म चुने जाकर तथा वहाँ विरोध करते रहना सही माग नही है। उनकी मान्यता थी कि अग्रेजी सरकार भारत की जनता के साथ कभी न्याय नही कर सकती। अस्तु, वह चाहते थे कि भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस को और अधिक वास्तविक नीति अपनानी चाहिए और उसे वैधानिक जन आन्दोलन शुरू करना चाहिए।

तिलक की यह मान्यता थी कि भारतवर्ष एक महान राष्ट्र है। उसका अतीत गौरवमय है, परन्तु ऐसे देश पर अग्रेजी शासन का कुप्रभाव है। अत वे सघर्ष करके स्वराज्य प्राप्त करना चाहते थे। उनका मूल मत्र स्वावलम्बन ही था। उनकी मान्यता थी कि स्वतन्त्रता अपने आप नही आ सकती बल्कि उसे अग्रेजो से घोर सघर्ष करके प्राप्त करना होगा। इसलिए, लोकमान्य तिलक ने ही सर्वप्रथम सार्वजनिक रूप से यह उद्घोष किया था कि— स्वराज्य **हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है और** हम उसे प्राप्त करके रहेगे।"

तिलक द्वारा काग्रेस सगठन मे जाग्रति—1900 के बाद तिलक न भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस म सक्रिय रूप से भाग लेना शुरू किया। उन्होंन वहाँ काय करते हुए उसके स्वरुप और ध्येय को बदलने का प्रयास किया। उस समय काग्रेस मे उदार वादी-नरमदली भारतीय नताओ की प्रधानता थी। उनको अग्रेज शासको की न्याय प्रियता म विश्वास था और वे सोचते थे कि यदि वे प्राथना पत्रो के रुप म अपनी माँग सरकार के सामने पेश करेंगे तो व उन्हे अवश्य स्वीकार करगे इन उदार नताओ म फिरोजशाह मेहता, गोपाल कृष्ण गोखले, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी दादाभाई नौरोजी, और रास बिहारी घोष प्रमुख थे। उनकी यह मान्यता थी कि समय आने पर जब भारतवासी स्वराज्य को पाने योग्य हो जायेंगे तब अग्रेज शासक स्वत उन्हें स्वतन्त्रता प्रदान करके यहाँ से लौट जायेगे परन्तु काग्रेस की प्राथना पत्रो की नीति से अग्रेज सरकार पर कोई विशेष प्रभाव नही पडा और व पहिले की तरह शासन म मनमानी करते रहे। इसके प्रतिक्रिया स्वरूप भारत मे इस भावना का जन्म हुआ कि स्वराज्य मागने से नही बल्कि सघर्ष से प्राप्त होगा। सवैधानिक आन्दोलन से भारत के जागरुक नागरिको का विश्वास उठ गया। सघर्ष द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करने की भावना को प्रोत्साहित करने वाला म लोकमान्य तिलक प्रमुख व्यक्ति थे।

लोकमान्य तिलक कांग्रेस के नरमदली नेताओं की नीति से असन्तुष्ट थे। उन का तो स्पष्ट लक्ष्य भारत में राजनीतिक स्वराज्य की प्राप्ति था। उसे प्राप्त करने के लिए वे संघर्ष, त्याग व बलिदान का मार्ग अपनाना चाहते थे अतएव तिलक ने 1905 में पंजाब के लाला लाजपतराय तथा बंगाल के विपिन चन्द्रपाल जैसे मुखर और साहसी नेताओं के सहयोग से कांग्रेस में एक उग्र विचारों वाला दल संगठित किया इस गरम दल का कार्यक्रम अंग्रेजी सरकार से संघर्ष करने का था। तिलक अपने समाचार पत्र 'केसरी तथा मराठा और विपिनचन्द्र अपने समाचार पत्र में न्यू इण्डिया के द्वारा निरन्तर इसी प्रकार के विचारों का प्रचार कर रहे थे। नरम दल की तरह उनका लक्ष्य अंग्रेजी की आधीनता में स्वशासन प्राप्ति न था बल्कि वे 'पूर्ण स्वराज्य' को अपना लक्ष्य मानते थे। परन्तु तब भी गरम दल का तरीका हिंसात्मक न था। वे सरकार से अहिंसात्मक विरोध करना चाहते थे।

उग्र-दल और कांग्रेस का सूरत-विभाजन —(1907 ई०) कांग्रेस में नरम दल और गरम दल के नेताओं के मतभेद बढ़ते ही गये। सन 1906 में कांग्रेस सभापति दादाभाई नौरोजी की कुशलता के कारण दोनों दलों में उस वर्ष सीधा संघर्ष होने से रुक गया। लेकिन 1907 के सूरत अधिवेशन के अवसर पर दोनों दलों में खुला संघर्ष हो गया। उस वर्ष सभापति के पद के लिए रासबिहारी बोस चुने गये जबकि गरम दल वाले बाल गंगाधर तिलक को सभापति बनाना चाहते थे। इसी कारण दोनों में खुला संघर्ष हो गया। इस पर तिलक तथा उनके साथी कांग्रेस से अलग हो गये। परन्तु कांग्रेस से अलग हो जाने पर भी तिलक का सम्मान पूर्ववत् रहा और वे निरंतर अपने संघर्षवादी विचारों का प्रचार करते रहे।

तिलक को राज द्रोह में कारावास, - सन् 1905 में बंगाल के विभाजन कर दिये जाने के विरोध में, देश भर में आन्दोलन किया गया। तिलक के प्रयत्नों से राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ और बंगाल में 7 अगस्त को अंग्रेजी शासन नीति विरोध दिवस मनाया गया। शीघ्र ही उग्र विचार धारा देश की प्राण बन गयी। युवकों में असंतोष की अग्नि भड़क रही थी। अंग्रेज अधिकारियों की हत्याओं का ताता लग गया। खुदीराम बोस ने मुजफ्फरपुर के अंग्रेज सेशन जज पर बम फेंक कर हत्या कर दी तो एक अन्य क्रान्तिकारी युवक ने ढाका के अंग्रेज कलक्टर को मौत के घाट उतार दिया।

ऐसे समय महाराष्ट्र में लोकमान्य तिलक के संपादन में अंग्रेजी दैनिक समाचार पत्र मराठा और मराठी दैनिक केशरी ब्रिटिश शासन के अन्यायों के विरोध में आग उगल रहे थे। परेशान व भयभीत होकर अंत में अंग्रेज सरकार ने राजद्रोह का अपराध लगाकर तिलक को गिरफ्तार कर लिया अंग्रेज न्यायाधीश ने उन्हें राजद्रोह फैलाने के अपराध में छह वर्ष की सजा सुना दी। इसके कारण लोकमान्य तिलक को सन 1908 से 1914 तक बर्मा के माण्डले कारावास में रहना पड़ा जेल में ही तिलक को सूचना मिली कि उनकी पत्नी का देहांत हो गया। परन्तु उस महान आत्मा ने कभी दीनता की भावना प्रदर्शित करके क्षमा मांगने का प्रयत्न नहीं किया।

होम-रूल-लीग की स्थापना - 1914 म तिलक जेल मे छूटकर वापस आ गये। उन्होने पुन राष्ट्रीय जीवन मे सक्रिय भाग लेने का निश्चय किया और होम रूल-लीग' की स्थापना की। उसी प्रकार श्रीमती एनीबेसेन्ट न भी एक 'होम रूल लाग' की स्थापना की। बाद मे ये दोनो सस्थाए मिलाकर एक करदी गयी। इस लीग का उद्देश्य आयरलैंड की भाति भारत के लिए स्वशासन प्राप्त करना था। 1916 म एनीबेसेन्ट के प्रयत्नो स काग्रेस के दोनो दला गम दल और नम दल को मिलान का प्रयत्न किया गया। और उन्हे इस काम मे सफलता प्राप्त हुई। 1916 लखनऊ काग्रेस अधिवेशन म श्री तिलक ने भाग लिया। इस अधिवेशन में गम व नम दोना गुटो ने मिलकर भारत के लिए स्वायत्त शासन की माग की उसी समय स काग्रेस म गम दल वाला का प्रभाव बढ़ता गया।

काग्रेस व मुस्लिम लीग को निकट लाना—सन 1916 के लखनऊ काग्रेस अधिवेशन म काग्रेस और मुस्लिम लीग क बीच समझौता कराने म श्री तिलक ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। इसीसे उनके असाम्प्रदायिक एव हिन्दू मुस्लिम एकता क सच्चे स्वरूप को जाना जा सकता है। यह लखनऊ समझौता' के नाम मे विख्यात है।

राष्ट्रीय आन्दोलन मे तिलक के अतिम वर्ष—सन 1919 के सुधार अधिनियम के सबध म लोकमान्य तिलक न इगलण्ड जाने वाले काग्रेस प्रतिनिधि मण्डल का नतृत्व किया। प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद होन वाले पेरिस शाति सम्मेलन म तिलक न एक स्मरण-पत्र भेजकर भारत के लिए आत्म निर्णय की माग की थी। इधर भारत म अग्रेजी शासन के निरन्तर प्रयत्नो के बावजूद भी क्रातिकारी आन्दोलन समाप्त न हो सका था। इस कारण भारतीय नागरिको को सन्तुष्ट रखना अत्यन्त आवश्यक समझा गया और इस आशय स भारत मन्त्री मोंटेग्यू ने ब्रिटिश ससद म एक घोषणा की कि "सम्राट की सरकार की नीति है कि शासन के प्रत्येक भाग म भारतीयो से अधिकाधिक सहयोग लिया जाय और भारत म ब्रिटिश स्वशासित सस्थाओ का क्रमिक विकास किया गया" परन्तु यह सब शब्द-जाल ही सिद्ध हुआ।

अस्तु अग्रेजी शासन पर दबाव डालने के लिए तिलक न काग्रेस के सामने विदेशी वस्तुओ के बहिष्कार, सरकारी नौकरियो तथा उपाधियो के त्याग करने आदि के कार्य क्रमो को रखा जिससे स्वराज्य आन्दोलन एक जन आन्दोलन का रूप धारण कर सका। सन 1920 म लोकमान्य तिलक का असामयिक स्वर्गवास हो गया। इस तरह लोकमान्य तिलक ने अपने 40 वर्ष के सार्वजनिक जीवन म समस्त क्षेत्रो म विशेषत स्वतन्त्रता सघर्ष म महत्त्वपूर्ण कार्य किये। महात्मा गाधी भी तिलक के सम्पर्क म आये तथा उन्होने ही तिलक को सर्व प्रथम बार 'लोकमान्य' कहकर अपना सम्मान प्रकट किया था।

निष्कर्ष तिलक का राजनैतिक दर्शन—लोक मान्य तिलक कार्य करने म विश्वास रखते थे। गीता का कर्मवाद उन्होने अपने जीवन म पूरी तरह उतार लिया

पत्रकार के रूप मे योगदान—यद्यपि बाल गगाधर तिलक न अपना सार्वजनिक जीवन एक अध्यापक एव शिक्षाविद के रूप म प्रारम्भ किया था, परन्तु वे शीघ्र हा पत्रकारिता के क्षेत्र म कूद पडे। वास्तव मे, तिलक की प्रतिभा सर्वतोमुखी था। वे भारत मे जन जागृति के विभिन्न साधनो को विकसित करना चाहते थे। अस्तु, उन्हाने उनम एक साधन पत्रकारिता को भी चुना। उन्हान अपने क्रान्तिकारी विचारों को जन साधारण तक पहुँचाने के लिए अग्रेजी भाषा म 'मराठा' और मराठी भाषा मे 'केसरी' नामक समाचार पत्रा का सम्पादन आरम्भ किया। 'मराठा' का प्रथम अक 2 जनवरी, 1881 ई० को तथा 'केसरी का 4 जनवरी 1881 को प्रकाशित हुआ।

श्री तिलक ने अपने स्पष्ट एव उग्रलेखा द्वारा जन साधारण को स्वावलम्बन का पाठ पढाया, जनता मे आत्मविश्वास, बहादुरी और साहस की भावना का अभूतपूर्व सचार किया। इन समाचार-पत्रो म प्रकाशित त्वे लाग एव देशभक्ति-पूर्ण लेखो से लोकमान्य तिलक अग्रेज सरकार की आखो मे खटकने लगे। अगले वर्ष 1882 म ही एक मानहानि के मुकद्दमे म उन्हे फसाकर चार माह की सजा दे दी गई। परन्तु इस जेल-यात्रा से श्री तिलक की ख्याति दूर-दूर तक फल गयी। अब उनकी वाणी और लेखा में और अधिक तीखापन पदा हो गया। उन्होने अग्रेजी सरकार की पूरी तरह से खबर लेना शुरू कर दिया। उनकी उग्रता बढती ही चली गयी और शीघ्र ही व देश की उग्रवादी-क्रातिकारी विचारधारा के अगुआ माने जाने लगे अब अग्रेजी शासन बेचन हो गया। सन 1908 मे जब श्री तिलक सरकार के अन्यायपूर्ण कारनामा के विरोध म अपने सपादकीय मे आग उगल रहे थे, उन्हे राजद्रोह के आरोप म गिरफ्तार कर लिया गया। उनपर राजद्रोह का मुकद्दमा चलाने का नाटक कर उन्हे अग्रेज जज ने 6 वर्ष की सजा सुना दी जिसके कारण सन 1908 से 1914 तक वर्मा के माण्डले जेल मे श्री तिलक को रहना पडा। फिर भी तिलक झुके नही।

समाज सेवी के रूप मे योगदान—1886 97 ई० म दक्षिण भारत म एक भीषण अकाल पडा। अग्रेजी राज्य सरकार ने इस भयकर सकट के समय कोई विशेष सहायता न की, जिससे हजारा लोग मौत के शिकार हो गए। ऐसे समय, श्री तिलक न सभी समाज सेविया के सहयोग मे दु खी जनता की भरसक सहायता की। उन्हान अपन समाचार पत्रो— केसरी' और मराठा' म अग्रेजी सरकार क निष्क्रिय प्रशासन की कटु आलोचना की। सन् 1897 म पूना म भयकर प्लेग फल गया जिमस हजारा लोगा की मृत्यु हा गई। सरकारी उपक्षा और चिकित्सा कुव्यवस्था की आलोचना करत हुए श्री तिलक न आम जनता और किसानोको निडरतापूवक कार्य करन की सलाह दी। अपन जीवन की परवाह न करके उन्हान घर-घर जाकर जिस प्रकार स प्लेग से ग्रस्त रोगियो की सेवा की तथा अनाज एकत्रित करके अकाल पीडित भूखा की भोजन-व्यवस्था की वह सभी के लिए एक आदर्श वस्तु है।

समाज-सुधारक के रूप मे योगदान—समाज सुधार के सम्बन्ध म श्री तिलक की मान्यता थी कि समाज म वही सुधार करना चाहिए जो अधिक व्यावहारिक हो। व इन सुधारों को अंग्रेजी सरकार के माध्यम स न कराकर समाज के लोगो स ही करवाना चाहते थ। इसलिए, उन्होंने समाज म क्रमश सुधार करने पर बल दिया। उनका विचार था कि समाज म शिक्षा और ज्ञान क प्रसार क साथ यह सुधार स्वाभाविक रूप से पनपन लगेंगे और समाज म उत्पन्न बुराइयाँ अपने आप दम तोड देंगी। तिलक देश म सामाजिक सुधारो स पहले राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीय जागृति को आवश्यक मानते थे।

समाज सुधार के क्षेत्र म श्री तिलक के निम्नलिखित प्रयास उल्लेखनीय हैं

(1) बाल विवाह का विरोध—तिलक बाल विवाह को पसद नहीं करते थे। उन्होंने माग की थी कि विवाह की उपयुक्त अवस्था कन्या के लिए 16 वर्ष तथा लडके के लिए 20 वर्ष रखी जानी चाहिए। (2) दहेज प्रथा की निन्दा—उन्होंने हिन्दू समाज मे व्याप्त दहेज की कुप्रथा की कटु निन्दा करते हुए उसे समाप्त करने की माग की (3) विधवा विवाह का समर्थन— तिलक तत्कालीन समाज में विधवाओ की दयनीय अवस्था से क्षुब्ध थे। उनकी मान्यता थी कि 40 वर्ष की अवस्था से अधिक अवस्था के पुरुष पुनर्विवाह नहीं करें और यदि वे विवाह करना चाहें तो केवल विधवाओ से करें। विधवा स्त्रियों के मुडन की प्रथा समाप्त की जाय तथा शुभ अवसरो पर विधवा स्त्रियों को हेय दृष्टि से न देखा जाय। (4) अछूतोद्धार— व छूत छात के खिलाफ और अछूतोद्धार के पक्ष म थे। उनका कहना था कि समस्त भारतीय एक भारत माता की सतान हैं।

एक विद्वान के रूप मे योगदान

श्री तिलक एक ख्याति प्राप्त उच्चकोटि के विद्वान थ। उन्होंने अपने जीवन काल म निम्नलिखित उच्चकोटि की रचनायें की (1) ओरियन–इस ग्रथ मे उन्होंने आर्य सभ्यता का वर्णन किया है। उनके अनुसार ऋग्वेद की कथाएँ 4000 ईसा पूर्व के समय का सकेत करती हैं। (2) आर्कटिक होम इन वेदाज–इस विद्वता पूर्ण ग्रथ म तिलक न आर्यों का मूल स्थान उत्तरी ध्रुव बताया है। (3) गीता रहस्य लोकमान्य तिलक की यह सबसे महत्त्वपूर्ण एव सबसे प्रसिद्ध रचना है जिसे उन्होंने अपने छ वर्ष के कारावास काल (1908 14) मे बर्मा क माडले जेल म लिखा था। यह ग्रथ मूल रूप स मराठी भाषा मे लिखा गया था। इस ग्रथ मे उन्होंने कर्म को सबसे ज्यादा प्रमुख स्थान दिया है। उनका कथन था कि मनुष्य चाहे पूर्णत्व के किसी भी स्तर पर पहुँच जावे वह कर्म स छुटकारा नही पा सकता यथा– गीता ससार मे ज्ञान व भक्ति द्वारा ईश्वर से पूर्ण एकात्म होने के उपरान्त भी कर्म करने को प्रेरित करती है।' गीता के कर्मयोग विषय मे उनका कथन था कि देश मे स्वराज्य' भी इसी पर अमल करने से प्राप्त हो सकता है।

सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के विकास में योगदान

श्री बालगंगाधर तिलक पहले भारतीय राजनीतिज्ञ थे जिन्होंने देश में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के विचार का प्रवर्तन किया। तिलक राष्ट्र को शक्तिशाली और संगठित देखना चाहते थे। वे प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा व गर्व की भावना को भारतीय राष्ट्रीयता का प्रमुख आधार बनाना चाहते थे। उनके द्वारा गणपति एवं शिवाजी उत्सवों को प्रोत्साहन देना इसी दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम था।

(1) गणपति उत्सव लक्ष्य—श्री तिलक ने सामंतों द्वारा प्रचलित परम्परा को जन साधारण का उत्सव बनाने का सफल प्रयास किया। इस उत्सव को राजनीतिक रंग देकर उन्होंने राष्ट्रीय उत्सव का रूप प्रदान किया। विभिन्न नगरों व ग्रामों में गणपति संस्थाएँ शुरू की गईं जहाँ शारीरिक व्यायाम की व्यवस्था होती थी। गणपति के उत्सव पर जलूस भाषण व सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन होता था। तिलक के अनुसार इसका प्रमुख उद्देश्य लोगों में वीरता तथा अनुशासन की भावना तथा मातृ भूमि के प्रति प्रेम व संगठन को बढ़ावा देना था। धीरे धीरे यह महोत्सव महाराष्ट्र भर में लोकप्रिय हो गया और इसमें सभी वर्गों के लोग सम्मिलित होने लगे।

(2) शिवाजी-उत्सव उद्देश्य—श्री तिलक छत्रपति शिवाजी की गौरव गाथा तथा ऐतिहासिक पृष्ठि भूमि से अत्यधिक प्रभावित थे। वे शिवाजी को गीता के सन्देश के अनुरूप, एक महान विभूति समझते थे। अस्तु सन 1895 में रायगढ़ में शिवाजी के जन्म के उपलक्ष्य में वार्षिक उत्सव श्री तिलक की अध्यक्षता में मनाया गया। उन्होंने शिवाजी को राष्ट्रीयता का प्रतीक बताया। इस उत्सव के आयोजन के पीछे तिलक का प्रमुख उद्देश्य भारतवासियों में देश भक्ति एवं राष्ट्रीयता की प्रबल भावना का प्रसार करना था। श्री तिलक ने कहा था। "भाट की तरह गुणगान करने से स्वतन्त्रता नहीं मिल जायगी। स्वतन्त्रता के लिए शिवाजी व बाजीराव की भांति साहसी कार्य करने पड़ेंगे।'

क्या तिलक साम्प्रदायिकता वादी थे?—तिलक के कुछ आलोचकों ने उपर्युक्त दोनों उत्सवों को लेकर उनकी कटु आलोचना की है। विरोधियों ने तिलक को विशुद्ध हिन्दू साम्प्रदायिक राजनीतिज्ञ तथा मुस्लिम विरोधी के रूप में जनता के सामने प्रचारित किया। परन्तु विरोधियों का ऐसा आरोप लगाना सत्य से परे है। वास्तव में लोकमान्य तिलक असाम्प्रदायिक एवं महान राष्ट्रवादी थे। वे तो भारत में बसने वाले सभी धर्मों के लोगों का 'स्वराज्य' चाहते थे। सन 1919 में भारतीय मुसलमानों द्वारा चलाये गये खिलाफत आन्दोलन को तिलक का हार्दिक समर्थन प्राप्त था। खिलाफत के शीर्ष नेता अली बन्धुओं की रिहाई का प्रस्ताव कांग्रेस सम्मेलन में भी तिलक ने ही प्रस्तुत किया था। उनके अनेक मुस्लिम अनुयायी और समर्थक थे। तिलक तो हिन्दू व मुसलमानों दोनों का ही समान रूप से हीत चाहते थे। सभी ने तिलक की देश भक्ति एवं राष्ट्रीय विचारों की प्रशंसा की है।

तिलक का राष्ट्रीय आन्दोलन मे महान् योगदान

भारत म लोकमान्य तिलक ही वह नेता थे जिन्होने राष्ट्रीय आन्दोलन के समय भारत को राष्ट्रवाद का सही सिद्धात सुझाया। "जब भारत में वास्तविक राजनीतिक जागृति हुई, तो सव प्रथम बाल गगाधर तिलक ने ही स्वराज्य की आवश्यकता एव उसके लाभो की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया। श्री तिलक ने ही सव प्रथम विदशी वस्तुओ के बहिष्कार स्वदेशी वस्तुओ के प्रति अनुराग, राष्ट्रीय शिक्षा, जन प्रिय सयु क्त राजनीतिक मोर्चे आदि के सशक्त आन्दोलन के तरीकों की खोज की। बाद मे इन्ही के द्वारा स्वराज्य के लक्ष्य को प्राप्त करने म महत्वपूर्ण सहायता मिली वस्तुत स्वातन्त्र्य आन्दोलन को आधार शिला रखने का श्रेय तिलक को ही है।

निष्कर्ष—इस तरह तिलक का सभी क्षेत्रो म महान् योगदान रहा। वास्तव म, देश तिलक जसे महान नेता को पाकर धन्य हो गया।

डॉ आर सी मजूमदार ने लिखा है, "अपने देश प्रेम तथा अथक प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप बाल गगाधर तिलक 'लोकमान्य' कहलाये जाने लगे और उनकी एक देवता के समान पूजा होने लगी। वह जहाँ भी जाते थे, उनका राजकीय सम्मान तथा स्वागत किया जाता था'। सी आई चिन्तामणि, के अनुसार स्वतन्त्रता प्राप्ति तिलक के जीवन का चरम लक्ष्य था, जब कभी वे किसी बात पर तत्पर हो जाते थे, तो फिर पीछे हटना उनके लिए असम्भव था। उन्होंने अपने विचारो और कार्यों के लिए समकालीन राजनीतिज्ञों में सबसे अधिक कष्ट सहन किये।" राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार करने म उनके समान योग्यता उस समय के किसी भी राजनीतिज्ञ मे दिखाई नही देती। वेलन्टाईल शिरोल ने ठीक ही लिखा है कि 'यदि कोई व्यक्ति 'भारतीय चेतना का जनक होने का दावा कर सकता है। तो वह बाल गंगाधर तिलक है।' अत मे, श्री अरविन्द के शब्दा म कहा जा सकता है "श्री तिलक का नाम राष्ट्र निर्माता के रूप म आधी दजन महानतम राजनीतिक पुरुषो, स्मरणीय व्यक्तियो, भारतीय इतिहास के इस सकटमय काल मे राष्ट्र क प्रतिनिधि व्यक्तिया मे होने के नाते सदा अमर रहेगा। और इसे लोग तब तक कृतज्ञता पूवक स्मरण रखेंगे, जब तक कि देश मे अपने भूतकाल पर अभिमान और भविष्य के लिए आशा बनी रहेगी।"

रवीन्द्रनाथ टैगोर [1861-1941 ई०]

का

सास्कृतिक एव सामाजिक महत्व

"बुद्ध, व्यास, बाल्मीकि, अश्वघोष, कालिदास आदि के रूप म जो भारतीय प्रतिमा समय समय पर प्रस्फुटित होती रही हैं, वही जाज्वल्यमान भारतीय प्रतिभा रवीन्द्रनाथ के रूप म प्रकट हुई।"

—प्रो० सिल्वन लेवी

टगोर का साहित्य न केवल भारत का किन्तु विश्व का अमूल्य भण्डार बना टगोर भारतीय साहित्य की लगभग पूरी एक शताब्दी का प्रतिनिधित्व करते है अपना विविध रचनाओ म उन्होने अपने युग की समस्त प्रवृत्तिया तथा शलिया का समावश किया है। डॉ० श्रीकुमार बनर्जी ने लिखा है कि, 'कवि क रूप मे व भारतीय सस्कृति के कदाचित् अन्तिम प्रतिनिधि हैं। कवीन्द्र रवीन्द्र एकाधार म दार्शनिक, वक्ता, लेखक, उपन्यासकार, नाटयकार, सुकवि और अच्छे अध्यापक हुए हैं। आप अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा को जब जिस ओर लगाते, वहीं वह अपना कमाल दिखा देती थी।

संक्षिप्त जीवन परिचय—रवीन्द्रनाथ टगोर का जन्म 6 मई 1861 इ० को कलकत्ता म, बगाल क एक सभ्रान्त ब्राह्मण परिवार म हुआ था, इनके पिता का नाम देवेन्द्रनाथ ठाकुर तथा माता का नाम शारदा देवी था। यह परिवार बडा ही सुसम्पन्न, सुशिक्षित एव सुसस्कृत था। इनके पिता एक बडे जमीदार थे। ठाकुर का ही अग्रेजी म रूपान्तर 'टगोर' हुआ। सन् 1883 म मणालिनी देवी नामक कन्या से रवीन्द्रनाथ का विवाह हुआ। रवीन्द्रनाथ की शिक्षा अधिकतर घर पर ही हुई। साहित्य सगीत तथा दर्शन से उन्हे बाल्यकाल से ही बडा प्रेम था। बगाल के सुरम्य प्राकृतिक दृश्यो का भी इनके हृदय पर गहरा प्रभाव पडा। आपके ज्येष्ठ भ्राता द्विजेन्द्रनाथ अच्छे विद्वान थे। उनसे आपको बहुत कुछ सीखने को मिला। इनके दूसरे भाई सत्येन्द्रनाथ भारतीय लोक सेवा (I C S) म उत्तीर्ण होने वाले प्रथम भारतीय थे। सन् 1878 म रवीन्द्रनाथ पहली बार इग्लण्ड गये और वहा उन्होने अग्रेजी साहित्य का भली भाँति अध्ययन किया।

साराश म, टगोर एक सच्चे देश भक्त एव राष्ट्रवादी विचारधारा के व्यक्ति थे। ऐसे महान दूरदर्शी, साहित्य सेवी, समाज एव राष्ट्र प्रेमी, मनीषी की जीवन ज्योति 9 अगस्त 1941 को सदा के लिए बुझ गई।

III बगला साहित्य को कवि टगोर की देन

रवीन्द्रनाथ के जीवन के साथ-बग भाषा का बडा ही घनिष्ट सम्बन्ध है, दोनो के प्राण जैसे एक हो। रवीन्द्रनाथ के उदय के बाद ही बग साहित्य का परिपूर्ण विकास हुआ। उन्होने-साहित्यिक, सास्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक, ज्ञान विज्ञान सम्बन्धी समस्त विषयो पर रचनाएँ की है।

प्रारम्भ से ही कविता की ओर झुकाव—बाल्यकाल से ही रवीन्द्रनाथ ने बगला भाषा म कविताएँ लिखना शुरू कर दिया था। टगोर ने जब पहली कविता लिखी तब उनकी उम्र केवल सात वर्ष की थी। पन्द्रह वर्ष की अवस्था म तो उनकी कविताये 'भारती' पत्रिका म प्रकाशित होने लगी थी। उनकी सर्व प्रथम कृति 'कवि कथा' के नाम से प्रकाशित हुई थी। दूसरा काव्य सग्रह 'बनफूल' के नाम से प्रकाशित हुआ। शीघ्र ही उनका खण्ड काव्य 'गाथा' भी प्रकाशित हो गया।

वप की न्म्र होते होते उनने माहित्य न वगला म ग्रपना स्थान वना लिया ग्रौर उनकी गिनती ग्रच्छे साहित्यकारा मे होने लगी ।

काव्य रचना म इन्ह उपनिपदा, प्राचीन तथा मध्यकालीन साहित्य विशेपत कालिदास तथा वगला साहित्य के वैष्णव गीता, हिन्दी के संत माहित्य तया वगाल के ग्रामीण गीतो म वडी प्रेरणा मिली। उनकी ग्राजीवन साहित्यिक साधना के फलस्वरूप वगला साहित्य ग्रपनी कीर्ति के सर्वोच्च शिखर पर पहुच गया।

टैगोर महाकवि के रूप मे—रवीन्द्र बाबू की साहित्यिक प्रतिभा सवतोमुखी थी। परन्तु, उनका काव्य सर्वाधिक लोकप्रिय सिद्ध हुग्रा। ग्रत साहित्यिक जगत मे वे कवी के रूप मे ग्रधिक विख्यात हैं। इनकी काव्य रचनाग्रों में प्रकृति प्रेम तथा ग्राध्यात्मिकता का स्पष्ट प्रभाव झलकता है।

17 वप की ग्रवस्था तक पहुँचते पहुँचते टगोर ने ग्रनेक कविताएँ लिख डाली। इनके गीता म वगला भापा का नवीन रूप प्रकट हुग्रा। उनकी ग्रधिकाश रचनायें नई शैली मे लिखे हुए प्रेमगीत थे। इनका प्रथम गीत सग्रह 'सांध्य-गीत' के नाम से प्रकाशित हुग्रा। रवीन्द्र के ये गीत वष्णव कवियो के काव्य से प्रभावित थे। इसी तरह एक काव्य सग्रह 'प्रभात सगीत' रचा गया। इस पर ग्रग्रेजी कवि शैली का प्रभाव प्रतीत होता है। यद्यपि प्राचीन ढर्रे के कवियो ने इनकी काव्य रचनाग्रो की ग्रालोचना की, किन्तु नवीन शिक्षित वगाली वग न इनका स्वागत किया। 'छवि ग्रो गान'—नामक ग्रन्य कविता सग्रह तथा 'कडि ग्रो कोमल' काव्य ग्रन्थ के उपरात उनका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ मानसी प्रकाशित हुग्रा। सोनातरी सीरीज की कविताएँ इसके बाद लिखी गई। इनकी ग्रधिकाश कविताएँ सौन्दय ग्रौर शैली की दृष्टि से उच्चकोटि की हैं।

गीताजलि पर नोबल पुरस्कार विश्व कवि

रवीन्द्रनाथ टगोर की सव श्रेष्ठ काव्य रचना 'गीताजलि' सन् 1909 म वगला भापा मे प्रकाशित हुई। यह रवीन्द्र के ग्राध्यात्मिक भावो से ग्रोत प्रोत गीतो का ग्रनुपम सकलन था। इस रचना ने वास्तव मे कवि का नाम विश्व म ग्रमर कर दिया। इस काव्य को जब सी एफ एन्ड्रूज न सुना तो वे इस पर इतने मुग्ध हुए कि उन्होने कवि से इसका ग्रग्रेजी ग्रनुवाद करने का ग्राग्रह किया। उन्हीं की प्रेरणा म रवीन्द्र बाबू ने इसका ग्रग्रेजी ग्रनुवाद किया। जिसने इस ग्रन्थ की ख्याति दूर-दूर तक फैलादी।

विभिन्न पाश्चात्य देशो के साहित्यिक पत्रा म इस ग्रन्थ की चर्चा हुई। तथा यूरोप की ग्रनेक साहित्यिक संस्थाग्रो ने इस ग्रन्थ का न [illegible] के वतलाया। "उसमे जो ग्रद्भुत दाशनिक तथा [illegible]
ग्रागे सभी श्रद्धा के साथ नत मस्तक हुए। इस विश्व
क महापुरुष प्रसिद्ध हुए।"

गीताजलि की अभ्यातरिक गहराइयो, काव्य सौष्ठव, भाषा की प्राञ्जलता एव विचारो की नवीनता के कारण ही इस महान् ग्र थ को नाबल पुरस्कार के योग्य ठहराया गया। सन् 1913 मे नोबल पुरस्कार समिति ने यह पुरस्कार टगोर को उनकी रचना गीताजलि' पर प्रदान किया। इसके फलस्वरूप रवीन्द्र बाबू का नाम तो विश्व भर म फला ही, साथ ही भारत का नाम भी ऊँचा हो गया। साहित्यिक के क्षेत्र म भारत को प्रथम बार यह विख्यात पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

इसके साथ ही गीताजलि के देश और विदेशो की अनक भाषाओ म अनुवाद प्रकाशित हुए। अनेक देशा ने कवि को सादर आमन्त्रित करके इनका सम्मान किया भारत सरकार ने भी आपको 'नाइट', 'सर आदि सर्वोच्च उपाधियो मे विभूषित किया।

टगोर–एक सफल गद्य लेखक के रूप मे—बगला कविता के अतिरिक्त उन्होने लेख, उप यास, कहानिया और नाटक भी लिखे।

व पाश्चात्य साहित्य तथा सस्कृति से भी भलि भाति परिचित थे। फिर भी अपन विचारा वेष भूषा, सस्कृति आदि मे भी वे पूर्णतया भारतीय थे, किन्तु इग्लण्ड निवासियो अर्थात अ ग्रे जो की कमठता, सच्चाई व आधुनिक दृष्टिकोण से वे अत्यधिक प्रभावित हुए।

रवीन्द्र बाबू ने आरम्भ से ही साहित्य की विभिन्न विधाओ मे लिखना आरम्भ किया था। यूरोप से लौटने के पश्चात उन्होने अपनी यात्रा का वत्तान्त 'भारती' पत्रिका म प्रकाशित करवाया। उनका करुण' नामक उप यास तथा 'भग्न हृदय' नामक पद्य बद्ध नाटक भी प्रकाशित किया गया। इन दोनो ही रचनाओ म टगोर ने मानव–जाति के प्रति अपनी करुणा और वेदना को व्यक्त किया।

उपन्यास साहित्य—रवि द्रनाथ टगोर के उपन्यासो मे समकालीन सामाजिक स्थिति विशेषत उच्च मध्यम वग के लोगो का जीवन चित्रित है। मध्यम वग के लोगों की मनोदशा, सामाजिक समस्याओ का सुन्दर चित्रण इनके उप यासो म मिलता है। राष्ट्रीय समस्याओ पर भी इनमे अच्छा प्रकाश डाला गया है। सन 1901 स 1907 के मध्य उन्होने अपना प्रसिद्ध उपन्यास 'गोरा' सम्पूर्ण किया। इनक द्वारा रचित अन्य उल्लेखनीय उपन्यास है—करुणा, बहू, ठकुरानी हाट, राजर्षि, चार अध्याय, आख की किरकिरी, नौका डूबी आदि।

कहानी साहित्य—कथा-क्षेत्र मे भी टगोर न अत्यधिक कुशलता का परिचय दिया। इन्होने अनक उच्च कोटि की कहानिया लिखी। वास्तव म, लघु कथाएँ लिखने का प्रारम्भ बगला साहित्य म रवि द्रनाथ टगोर से ही शुरू हुआ। इनकी कहानिया म भारतीय जीवन का बडा ही मार्मिक चित्रण है। उनकी प्रसिद्ध रचना काबुलावाला इसका ज्वलत उदाहरण है। उनके अनक कहानी-सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

नाटक साहित्य—नाटक रचना म भी रवी द्र बाबू की गति अबाध थी। इन नाटको म अनेक नाटक दुखान्त ही ह। फिर भी, काव्य में प्रकृति प्रेमी और चिन्तन शील कवि, नाटक लिखते समय अपनी भावनाओ को इस धरती पर उतार लाया है। 'नलिनी' म उन्होन अपनी इस करुणा को स्वच्छ प्रदान कर दिया है। 'मायार खेल' म भी उन्होन मानवीय कष्टा का जो निरूपण किया है, वह अद्वितीय है। इनके अतिरिक्त उन्होन 'डाक घर' 'चाडालिका' 'चित्रांगदा' 'नदी की पूजा' 'राजा' तथा रक्त कारबी आदि अनेक नाटक और नाटिकाएँ लिखी। सौन्दय के दृष्टिकोण मे 'चित्रा तथा' उवशी' रचनाएँ बहुत ही सुन्दर हैं।

निष्कर्ष—इस तरह टगोर को बगला साहित्य का एक युग-निर्माता कहा जा सकता है। वे लेखक, कवि समालोचक, सगीतज्ञ तथा अभिनेता म ी कुछ थे। उन्होन अपनी रचनाओ मे क्लिष्ट साहित्यिक बगला के स्थान पर बाल चाल की बगला भाषा को अपनाया और उसम अद्भुत सौन्दय और कमनीयता भर दी। अपने काव्या त्मक गुणो से उन्होंने उस भाषा का सगीत मय बना दिया।

IV टैगोर की उपलब्धिया मूल्याकन

यथार्थवादी लेखक—रवीन्द्र बाबू की साहित्य सजना उनके जीवन के अंतिम क्षण तक चलती रही। वे सच्चे साहित्यकार थे। उनका साहित्य कल्पना मात्र पर आधारित न होकर जीवन का साहित्य था। वह देश की आध्यात्मिक भावना का प्रतीक है। उनके उपन्यास इस धरती पर पलने वाले सैकड़ा परिवारा के जीवन पर आधारित हैं। उनकी कहानिया मानवीय भावनाओ का सच्चा स्वरूप हैं उनकी कल्पनायें सत्य पर आधारित हैं। अत उनम दद है और मानवीय पीडाओ के लिए करुणा है।

मानवता के पुजारी मनुष्य की वदना—पथ्वी व प्रकृति म रूप उत्पन्न करने वाले जीवन देवता की शक्ति रवीन्द्र बाबू इन्सान म ही पाते हैं। व किसान मजदूर रूपी नर देवता की आराधना के पोषक थ। देश की सम्पन्नता की आधार शिला वे उन्ही को मानते थे। भारत वष के पतन के कारणो मे वे एक कारण किसान व मजदूर को समाज मे उचित सम्मान न मिलना ही मानते थे। इसीलिए उन्होने अपने देश वासियो को प्रोत्साहित और प्रेरित किया कि वे समस्त लोगों को बराबर समझें। कवि की मानवीय अभिरुचि का उनकी आध्यात्मिकता कही भी दबा नही पायी। उनके साहित्य मे मानव को एक गौरव मिला, जो प्राचीन साहित्य म कहीं नही था।

टगोर ने भारतीयता का इतना व्यापक बनाया कि उसम समूची मानवता का समावेश हो जाय। उन्होन अपने ग्रन्थ ग्रेटर इंडिया म अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए, इस तथ्य पर जोर दिया है कि महान भारत का इतिहास बनाने वाले सिफ हिन्दू ही नही है सदियो पहले मुसलमान अपनी सास्कृतिक परम्पराओ को लेकर

यहा आय और इनके इतिहास का अ ग बन गये। फिर, पश्चिम की निधि लेकर भारत म अ ग्रेज (ईसाई) आय। इस तरह नये भारत पर किसी एक जाति या धम का एकाधिकार नही है। यहा विभिन्न धम और सस्कृति वालो को प्रेम, और सामजस्य का जीवन जीन है शाति का वह साम्राज्य बनाना और प्रेम एव एकता का विकास करना ही आज के भारत की सबस बडी समस्या है। स्वय टगोर ने इस समस्या क हल करने का भरसक प्रयत्न किया। बगाल मे शाति निकेतन' म उ होन अपन अ त राष्ट्रीय विश्व विद्यालय —'विश्व भारती'—का स्थापना सन 192' म इस लिए का थी कि पाश्चात्य और प्राच्य सस्कृतिया के श्रेष्ठ प्रतिनिधि सम्पक म आये और एक विश्व बधुत्व का वातावरण पदा हो जिसम भारत के युवक युवतिया पोषण पाय।

आदश समाज सुधारक— रवी द्रनाथ टगोर भारत के आदश समाज-सुधारक हैं। और वह सुधार आजकल के अ याय सुधारको की भाति केवल सिद्धा तो मे ही सीमित नही है, उनक चरित्र और प्रत्येक काय म उसका निर्देशन मिलता है। जसी उनकी सुधार सम्ब धी उक्ति है, वैसी ही आपकी कृति भी है। उ होने जाति प्रथा अस्पृश्यता तथा समाज मे स्त्रियो की दयनीय दशा पर भी अपनी रचनाओ में तीव्र प्रहार किया। साथ ही अनेकानेक अ ध विश्वासो तथा अज्ञानता के विरुद्ध भी उ होने बडी ही व्यगात्मक भाषा मे आक्षेप किए। इस तरह अपनी रचनाओ के द्वारा उ होने भारतवासियो का उनकी वास्तविक अवस्था से परिचित कराया। उ होने यह भी बताया कि उनकी अवस्था म सुधार किस प्रकार हो सकता है।

निष्क्रियता और पलायनवाद की भावनाओ के टगोर कट्टर विरोधी थे। उ होने भारतीय समाज को रचनात्मक आधार पर पुन व्यवस्थित करन का सदेश दिया। उ होने कम करन पर बल दिया और हर व्यक्ति को समाज और सस्कृति के उत्कष म यथायोग्य अपना योगदान देने का आग्रह किया।

रवीन्द्र का देश प्रेम—भारत के राष्ट्रीय नेताओ म उनका एक विशेष स्थान था। स्वदेश प्रेम के व जीवन्त स्वरूप थे। देश की प्रत्यक वडी बडी समस्याओ मे आपन सन्न भाग लिया और उन,पर बडी निर्भीकता से आपने विचार प्रकट किए। आपका यह स्वदेश प्रेम केवल लेख और व्याख्याना तक ही रहा हो यह नहो, बल्कि आपने उसके लिए अपूव स्वाथ त्याग और अपनी असीम निर्भीकता का भी परिचय दिया। उ होने भारत देश क बारे म बडी मम-स्पर्शिनी कविताएँ लिखी ह। 'भारतीयता क्या है और किस राह पर चलने से देश का भविष्य उज्जवल होगा—कम अपनी पूव अवस्था की प्राप्ति हो सकेगी, यह महाकवि न अपनी देश विषय की कविताओ म बडी निपुणता के साथ अकित कर दिखाया है।''

टगोर का जीवन-दशन व्यापक मानववाद उनके जीवन दशन का मूल मन्त्र था। उ होन अपन देशवासियो को प्रोत्साहित किया कि व समस्त लोगो का सम्मान

समझें। वे सच्चे अर्थों मे राष्ट्रीय भावना का उदय देखना चाहते थे। उन्होंने भारत वासियो को सिखाया कि वे अपने को भारत के किसी एक प्रदेश का निवासी न मानकर समस्त देश का निवासी समझें। उनका सुप्रसिद्ध गीत 'जन गण-मन अधि नायक' भारत का राष्ट्रीय गीत बन गया।

निष्कर्ष—रवीन्द्रनाथ टैगोर का मत था कि विश्व की समस्त संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति का कलेवर सर्वाधिक उदार एवं विशाल है। वे मानव समाज में संकीर्णता के विचार नहीं देखना चाहते थे। वे भारतीय अध्यात्म और पाश्चात्य आधुनिकता, स्वतन्त्रता एवं प्रगति के बीच सामंजस्य स्थापित करना चाहते थे। वे साम्प्रदायिकता के घोर विरोधी थे। वे आर्थिक समानता पर आधारित समाज के प्रबल पक्षधर थे।

साराश में, रवीन्द्रनाथ टैगोर केवल साहित्यकार ही नहीं सफल अध्यात्म दार्शनिक एवं सफल वक्ता थे। उनका दर्शन भारतीय अध्यात्म का दर्शन था। वे जीवन के वास्तविक द्रष्टा थे। वे अपने आप में एक संस्था थे। वे सच्चे दे- भक्त एवं राष्ट्रीय विचार धारा के व्यक्ति थे। 'अनेक वर्षों तक कवि एवं दार्श- टैगोर पाश्चात्य देशों मे भारतीय संस्कृति के राजकीय प्रतिनिधि माने ज- रहे हैं।"

10

महात्मा गांधी का सामाजिक और सांस्कृतिक महत्त्व

(Social and Cultural Significance of Gandhi)

I राष्ट्रीय, आन्दोलन मे गाधीजी का योगदान

"वे इसलिए इतने महान् व्यक्ति नहीं थे कि उन्होने अपने देश को स्वाधीनता के सग्राम का सफलतापूर्वक सचालन किया बल्कि वे महान् इसलिए थे कि हिंसा, स्वार्थ, शक्ति की तृष्णा और नैतिक पतन के वर्तमान वातावरण मे सत्य, अहिंसा और साधनो की विशुद्धता का कठिन पाठ भी उन्होने अपने व्यावहारिक जीवन के द्वारा लोगो के गले उतार दिया।'

— डॉ जॉन हेंस होम्स

जीवन-परिचय —श्री मोहनदास करमचद गाधी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 मे एक धार्मिक परिवार मे हुआ था। उनके पिता राजकोट के दीवान थे। गाधी जी 19 वर्ष की अवस्था मे मैट्रिक पास करके कानून की शिक्षा प्राप्त करने इग्लण्ड गये थे। सन् 1891 मे वे वकालत की परीक्षा पास कर बरिस्टर बनकर भारत लौटे और यहाँ वकालत शुरू की। वे 1893 ई मे दक्षिणी अफ्रीका मे पैरवी करने गये थे। वहाँ रग भेद के पक्षपात के कारण भारतीयो पर जो अत्याचार हुए उन्हें दूर करने के लिए उन्होने 'सत्याग्रह' के विलक्षण तथा शक्तिशाली शस्त्र का आविष्कार कर उसका प्रयोग किया था। वहाँ सफलता मिलने के पश्चात् व 1914 ई मे भारत लौट आये तथा साबरमती मे एक आश्रम खोला। भारत को स्वतन्त्रता देने के लिए उन्होने अग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध एक अहिंसात्मक आन्दोलन छेड़ [illegible] 1920 मे असहयोग आन्दोलन तथा 1931 मे पुन सविनय अवज्ञा [illegible] किया जो लन्दन मे हुई प्रथम गोलमेज कान्फ्रेंस तक चलता रहा। [illegible] छोडो' आन्दोलन से भारतीय जनता की शक्ति तथा दृढ सकल्प

समझें। वे सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय भावना का उदय देखना चाहते थे। उन्होंने भारत वासियों को सिखाया कि वे अपने को भारत के किसी एक प्रदेश का निवासी न मानकर समस्त देश का निवासी समझें। उनका सुप्रसिद्ध गीत 'जन गण-मन अधि नायक' भारत का राष्ट्रीय गीत बन गया।

निष्कर्ष—रवीन्द्रनाथ टैगोर का मत था कि विश्व की समस्त संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति का कलेवर सर्वाधिक उदार एवं विशाल है। वे मानव समाज में संकीर्णता के विचार नहीं देखना चाहते थे। वे भारतीय अध्यात्म और पाश्चात्य आधुनिकता, स्वतन्त्रता एवं प्रगति के बीच सामंजस्य स्थापित करना चाहते थे। वे साम्प्रदायिकता के घोर विरोधी थे। वे आर्थिक समानता पर आधारित समाज के प्रबल पक्षधर थे।

सारांश में, रवीन्द्रनाथ टैगोर केवल साहित्यकार ही नहीं सफल अध्यापक, दार्शनिक एवं सफल वक्ता थे। उनका दर्शन भारतीय अध्यात्म का दर्शन था। वे जीवन के वास्तविक द्रष्टा थे। वे अपने आप में एक संस्था थे। वे सच्चे देश भक्त एवं राष्ट्रीय विचार धारा के व्यक्ति थे। "अनेक वर्षों तक कवि एवं दार्शनिक टैगोर पाश्चात्य देशों में भारतीय संस्कृति के राजकीय प्रतिनिधि माने जाते रहे हैं।"

10

महात्मा गांधी का सामाजिक और सांस्कृतिक महत्त्व

(Social and Cultural Significance of Gandhi)

I राष्ट्रीय, आन्दोलन मे गाधीजी का योगदान

"वे इसलिए इतने महान् व्यक्ति नहीं थे कि उन्होंने अपने देश को स्वाधीनता के सग्राम का सफलतापूर्वक सचालन किया बल्कि वे महान् इसलिए थे कि हिंसा, स्वार्थ, शक्ति की तृष्णा और नैतिक पतन के वर्तमान वातावरण मे सत्य, अहिंसा और साधनों की विशुद्धता का कठिन पाठ भी उन्होंने अपने व्यावहारिक जीवन के द्वारा लोगों के गले उतार दिया।"

— डा जॉन हेन्स होम्स

जीवन परिचय—श्री मोहनदास करमचन्द गाधी का जन्म 2 अक्टूबर, 1869 म एक धार्मिक परिवार म हुआ था। उनके पिता राजकोट के दीवान थे। गाधी जी 19 वर्ष की अवस्था म मैट्रिक पास करके कानून की शिक्षा प्राप्त करने इंग्लैण्ड गये थे। सन् 1891 मे वे वकालत की परीक्षा पास कर बैरिस्टर बनकर भारत लौटे और यहाँ वकालत शुरू की। वे 1893 ई मे दक्षिणी अफ्रीका म पैरवी करने गये थे। वहाँ रग भेद के पक्षपात के कारण भारतीयो पर जो अत्याचार हुए उन्हें दूर करने के लिए उन्होंने 'सत्याग्रह' के विलक्षण तथा शक्तिशाली शस्त्र का आविष्कार कर उसका प्रयोग किया था। वहाँ सफलता मिलने के पश्चात वे 1914 ई म भारत लौट आये तथा साबरमती म एक आश्रम खोला। भारत को स्वतन्त्रता देने के लिए उन्होंने अग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध एक अहिंसात्मक आन्दोलन छेड दिया। सन् 1920 में 'असहयोग आन्दोलन' तथा 1931 मे पुन 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' शुरू किया जो लन्दन मे हुई प्रथम गोलमेज कान्फ्रेंस तक चलता रहा। सन् 1942 के 'भारत छोडो' आन्दोलन से भारतीय जनता की शक्ति तथा दृढ सकल्प

समझें। व सच्चे अर्थों म राष्ट्रीय भावना का उदय देखना चाहते थे। उन्होंने भारत वासियों को सिखाया कि वे अपने को भारत के किसी एक प्रदेश का निवासी न मानकर समस्त देश का निवासी समझें। उनका सुप्रसिद्ध गीत 'जन गण-मन अधि नायक' भारत का राष्ट्रीय गीत बन गया।

निष्कर्ष—रवीन्द्रनाथ टगोर का मत था कि विश्व की समस्त संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति का कलेवर सर्वाधिक उदार एव विशाल है। वे मानव समाज म सकीर्णता के विचार नहीं देखना चाहते थे। व भारतीय अध्यात्म और पाश्चात्य आधुनिकता, स्वतन्त्रता एव प्रगति के बीच सामंजस्य स्थापित करना चाहते थ। व साम्प्रदायिकता के घोर विरोधी थे। वे आर्थिक समानता पर आधारित समाज के प्रबल पक्षधर थे।

साराश मे, रवीन्द्रनाथ टगोर केवल साहित्यकार ही नहीं सफल अध्यापक, दार्शनिक एव सफल वक्ता थे। उनका दर्शन भारतीय अध्यात्म का दर्शन था। व जीवन के वास्तविक द्रष्टा थे। वे अपने आप म एक संस्था थे। व सच्चे देश भक्त एव राष्ट्रीय विचार धारा क व्यक्ति थे। "अनेक वर्षों तक कवि एव दार्शनिक टैगोर पाश्चात्य देशों मे भारतीय संस्कृति के राजकीय प्रतिनिधि माने जाते रहे हैं।"

10

महात्मा गांधी का सामाजिक और सांस्कृतिक महत्त्व

(Social and Cultural Significance of Gandhi)

I राष्ट्रीय, आन्दोलन मे गाधीजी का योगदान

"वे इसलिए इतने महान् व्यक्ति नही थे कि उन्होने अपने देश की स्वाधीनता के संग्राम का सफलतापूर्वक संचालन किया बल्कि वे महान् इसलिए थे कि हिंसा, स्वार्थ, शक्ति की तृष्णा और नैतिक पतन के वर्तमान वातावरण में सत्य, अहिंसा और साधनों की विशुद्धता का कठिन पाठ भी उन्होने अपने व्यावहारिक जीवन के द्वारा लोगो के गले उतार दिया।"

— डॉ जॉन हेंस होम्स

जीवन परिचय—श्री मोहनदास करमचंद गाधी का जन्म 2 अक्टूबर, 1869 में एक धार्मिक परिवार मे हुआ था। उनके पिता राजकोट के दीवान थे। गांधी जी 19 वर्ष की अवस्था में मैट्रिक पास करके कानून की शिक्षा प्राप्त करने इंग्लैण्ड गये थे। सन् 1891 में वे वकालत की परीक्षा पास कर बैरिस्टर बनकर भारत लौटे और यहाँ वकालत शुरू की। वे 1893 ई मे दक्षिणी अफ्रीका में परवी करने गये थे। वहाँ रंग भेद के पक्षपात के कारण भारतीयो पर जो अत्याचार हुए, उन्हें दूर करने के लिए उन्होंने 'सत्याग्रह' के विलक्षण तथा शक्तिशाली शस्त्र का आविष्कार कर उसका प्रयोग किया था। वहा सफलता मिलने के पश्चात् वे 1914 ई में भारत लौट आये तथा साबरमती में एक आश्रम खोला। भारत को स्वतन्त्रता देने के लिए उन्होंने अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध एक अहिंसात्मक आन्दोलन छेड दिया। सन् 1920 मे 'असहयोग आन्दोलन', तथा 1931 में पुन 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' शुरू किया जो लन्दन मे हुई प्रथम गोलमेज कान्फ्रेंस तक चलता रहा। सन् 1942 के 'भारत छोडो' आन्दोलन से भारतीय जनता की शक्ति तथा दृढ संकल्प

का पता लगा। उनके प्रथम आन्दोलन एव सत्य निष्ठा के कारण भारत 15 अगस्त, 1947 को स्वतन्त्र हुआ। विदेशी अग्रेजी साम्राज्यवादियो को हिन्दुस्तान से जाना पडा। इस स्वाधीनता प्राप्ति का बहुत कुछ श्रेय महात्मा गाधी को ही है जिन्होने 25–30 वर्षों तक देश के स्वाधीनता सग्राम का सफल नेतृत्व कर अहिंसात्मक ढग से हिन्दुस्तान को आजादी दिलवाई। परन्तु देश के दुर्भाग्य से नाथूराम गोडसे नामक अध-साम्प्रदायिक व्यक्ति ने उनकी 30 जनवरी, 1948 को दिल्ली मे हत्या कर दी। इस घटना से न केवल भारतवासी, अपितु सम्पूर्ण विश्व का शान्ति प्रिय मानव-समुदाय दुख के सागर मे डूब गया। गाधी जी ने 'हिन्दू राष्ट्रवाद' और 'मुस्लिम राष्ट्रवाद' को एकान्वित कर एक, सामान्य 'भारतीय राष्ट्रीयता' का रूप दिया। यह उनके जीवन का एक सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था।

असहयोग आन्दोलन राजनीति मे नई दिशा—महात्मा गाधी का भारतीय राजनीति मे सक्रिय भाग सन् 1919 से प्रारम्भ हुआ क्रूर जनरल डायर के नृशंस कारनामा ब्रिटिश सरकार की दमन पूर्ण नीति तथा ब्रिटिश पालियामेंट के कुछ भी न करने की भावना से क्षुब्ध होकर महात्मा गाधी ने ऐसी निकम्मी और भारत विरोधी अग्रेजी सरकार से पूर्ण असहयोग करने का निश्चय किया। 20 अगस्त, 1920 ई को देश भर मे असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ। सभाये हुई, भाषण हुए और विदेशी माल की होलिया जली। स्कूल, कॉलिज और कचहरियाँ बन्द हो गयी। देशभक्त लोगो ने सरकारी नौकरिया छोड दी तथा पदविया त्याग दी। देश मे अजीब सा वातावरण बन गया। लाखो नर-नारी, ग्रामीण व शहरी, युवक और प्रौढ घरो से निकल कर सडको पर आ गये। वन्देमातरम के नारो से आकाश गूज उठा। राष्ट्रीय तिरगा झण्डा देश के आकाश मे फहराने लगा। इस पर अग्रेजी सरकार ने असहयोग मे भाग लेने वाले हजारो लोगो को पकड कर जेलो में भर दिया। आन्दोलनकारियो को लाठी और गोलियो का शिकार बनाया गया। 1921 तक आन्दोलन चरम सीमा पर पहुँच गया। परन्तु, चौरा-चौरी गाँव के हिंसात्मक घटना से क्षुब्ध होकर गाधीजी ने अचानक अपना असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया। जनता मे हिंसापूर्ण प्रतिक्रिया को अहिंसात्मक आन्दोलन के विपरीत समझा गया। अग्रेजी सरकार ने स्थिति का लाभ उठा कर गाधीजी पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया और उन्हे 6 वर्ष का कारावास दण्ड दिया गया।

इस आन्दोलन से स्पष्ट हो गया कि भारतीय राजनीति को नई दिशा प्रदान की गयी है। अभी तक आन्दोलन इस प्रकार के समूचे देश मे एक साथ सम्पन्न नही हो सके थे और न ही इस प्रकार के शान्त प्रदर्शनो को देखा ही गया था। अभी तक देश का युवक हिंसा का जवाब हिंसा से देने के लिए प्रसिद्ध था वही युवक अब बिना उद्विग्न हुए, हुकूमत के अत्याचारो को साहस तथा धैर्य के साथ सहन करने का परिचय देने लगा। देश की राजनीति मे सत्य और अहिंसा को स्थान मिला। इस तरह देश मे पहली बार एक नई चेतना, एक नई जागृति एव उत्साह उत्पन्न

हुआ। अभी तक राष्ट्रीय काग्रेस सगठन का काय कुछेक उच्च शिक्षित व्यक्तियो के मध्य केवल वादविवाद तक सीमित था। परन्तु, सब प्रथम बार गाधीजी के नेतृत्व म देश भर के जन-साधारण ने राष्ट्रव्यापी पमान पर स्वाधीनता आदोलन म खुलकर भाग लिया। विदेशी अग्रेजी सरकार से असहयोग करके एव इगलण्ड मे निर्मित वस्तुओ का दश भर म बहिष्कार करके विदेशी साम्राज्य की राजनतिक व आर्थिक स्थिति पर करारी प्रभावपूण चोट की गई।

1930 का सविनय अवज्ञा आदोलन—सन् 1930 के लाहौर अधिवेशन म काग्रेस ने जवाहरलाल नेहरु के सभापतित्व में पूण स्वराज्य को अपना लक्ष्य घोषित किया। 2 माच 1930 को गाधीजी न गवनर जनरल लाड इरविन को 11 मागो का एक माँग पत्र प्रस्तुत किया और उसके अस्वीकार कर दिये जाने पर 12 माच से देश भर म 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' छेड दिया गया। इस राष्ट्रव्यापी आन्दोलन क अन्तगत नमक-कानून तोडकर नमक बनाने, सरकारी नौकरी त्यागन तथा छात्रो द्वारा सरकारी स्कूल कालेजो का बहिष्कार करन, शराब, अफीम तथा कपडा की बिक्री को रोकने हतु स्त्री सत्याग्रही जत्थो द्वारा धरना देन, विदेशी कपडो की होली जलान, सरकार को कर न देन आदि के लिए आम लोगो को प्रोत्साहित किया गया। गाधीजी के नेतृत्व मे अब भारतीय जनता स्वाधीनता प्राप्ति के लिए हर प्रकार के कष्ट झेलने को तयार हो चुकी थी। फलस्वरूप, देशभर मे हजारा लोगा ने सरकारी अनुचित कानूनो को भग किया। विदशी वस्त्र जलाय गए, शराब की दुकानो पर धरन दिय गये। इससे अग्रेजी प्रशासन देश भर मे ठप्प हो गया। किसानो न भी ग्रामा म लगान कर देने से इकार किया। स्त्रियो ने भी पर्दा त्यागकर इस आदोलन म बढ चढ कर हिस्सा लिया। अनेक बडे बडे नगरो मे स्त्रिया द्वारा धरना दिये जाने के कारण शराब की बहुत सी दुकानें बन्द हो गइ। क्रुद्ध होकर अग्रेज सरकार ने गाधीजी सहित अन्य नेताओ तथा 60,000 सत्याग्रहिया को जेल के सीखचा म बन्द कर दिया। परन्तु 5 माच, 1931 को लाड इरविन को गाधीजी से समझौता करना पडा। अधिकाश राजनीतिक बन्दियो को रिहा कर दिया गया तथा उनकी जब्त सम्पत्ति भी उन्ह लौटा दी गई।

पूण-स्वाधीनता से कम पर समझौता नहीं गाधीजी के नतृत्व की एक विशेषता यह रही कि उन्होन राष्ट्रीय आदोलन को पूण स्वाधीनता की माग का दृढ आधार दिया। ब्रिटिश सरकार जब कभी भी सुधार योजना लाती और उसम काग्रेस क उद्देश्य की पूर्ति होती नहीं दिखाई देती तो फिर आन्दोलन तज कर दिया जाता। 1935 के एक्ट म अग्रेजी सरकार ने सघ व्यवस्था को लागू कर प्रान्तो को पूण स्वायत्त शासन देना स्वीकार कर लिया। 1937 म विभिन्न प्रान्ता म चुनाव हुए और 8 प्रा ता म काग्रेस का पूण बहुमत मिला। इन मन्त्री मण्डला न गाधीजी द्वारा निधारित रचनात्मक कायक्रम की अनक बातो पर अमल किया। सभी पुरान स्वाधीनता सनानियो व क्रान्तिकारियो को जेल से मुक्त कर दिया गया। राज्य

शासन सभालने का उन्हें प्रथम प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। परन्तु 1939 म द्वितीय महा युद्ध छिडने पर, बिना देश क नताओ से राय लिये भारत को मित्र राष्ट्रो की ओर से युद्ध म झोक दिया गया। इससे रुष्ट होकर गाधीजी के निर्देश पर सभी कांग्रेसी मत्रीमण्डलो न अपन त्याग पत्र द दिये। गाधीजी को काग्रेस की बागडोर पुन सभालनी पडी और स्वाधीनता सग्राम न नया मोड लिया।

1042 का 'भारत छोडो आन्दोलन'—अग्रेजी सरकार न घोषणा की कि यह महायुद्ध मानव जाति की स्वतन्त्रता के लिए फासिस्टो के विरुद्ध लडा जा रहा है। इस पर भारतीय नताओ ने घोषणा की कि एक आजाद देश ही दूसरे देशो की आजादी की रक्षा के लिए सहयोग दे सकता है। इसलिए सवप्रथम यह जरूरी है कि पहले हिन्दुस्तान को पूर्ण स्वतन्त्रता का दर्जा दिया जाय। सन् 1942 म सर स्टफड क्रिप्स भारतीय नेताओ का सहयोग प्राप्त करन क उद्देश्य से कुछ प्रस्ताव लेकर भारत आए। परन्तु गांधीजी तथा राष्ट्रीय काग्रेस ने स्वाधीनता स कम किसी भी प्रस्ताव को स्वीकार करने से साफ इन्कार कर दिया। क्रिप्स प्रस्तावो की अस्वीकृति के बाद भारत मे राजनीतिक गतिरोध उत्पन्न हो गया। भारतीय नताओ ने समझ लिया कि अग्रेज सरकार भारत को आजादी नही देना चाहती। वह हिन्दू तथा मुसलमानो म फूट डालकर स्वय अपना साम्राज्य स्थायी रखना चाहती है। अतएव काग्रस न गाधीजी के नतृत्व म 8 अगस्त, 1942 ई० को बम्बई म अग्रेजो 'भारत छोडो' के ऐतिहासिक प्रस्ताव को पारित किया।

इस प्रस्ताव के द्वारा हिन्दुस्तान से अग्रेजी हुकूमत के तुरन्त हटाये जाने की माग की गई। गाधीजी न इस प्रस्ताव पर अपने विचार व्यक्त करते हुए भारतीय जनता का **'करो या मरो'** का आह्वान किया। इस पर अग्रेजी सरकार न 9 अगस्त 1942 की मध्य रात्रि का गाधीजी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, मौलाना आजाद आदि नेताओ को बम्बई म गिरफ्तार कर लिया। देश के विभिन्न भागो म प्रमुख काग्रेस नेताओ को सरकार ने जेल के सीखचो मे बन्द कर दिया। कांग्रेस को गैर-कानूनी सस्था घोपित कर दिया गया। सरकारी अत्याचारो की बाढ़-सी आ गई। हजारो लोगो को गिरफ्तार कर बडे से बडा दण्ड दिया गया फिर भी जनता सघर मे विचलित नही हुई। इस आन्दोलन न भारतीय जन जीवन म अभूत-पूर्व राजनीतिक जागृति और उत्साह उत्पन्न कर दिया। अग्रेज सरकार ने भी भली भाति समझ लिया कि अब भारतीय जनता अपनी पूर्ण स्वाधीनता के लिए कठोर से कठोरतम त्याग व बलिदान स पीछे नही हटेगी। इसी दौरान 1945 मे द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त हो गया।

भारत की स्वाधीनता प्राप्ति (15 अगस्त 1947—रूस व अमरीका के सहयोग से ब्रिटिश साम्राज्य की जमनी व जापान पर विजय हुई। परन्तु अब वह युद्ध जर्जरित खोखला साम्राज्य रह गया था। इसी समय इंग्लण्ड के नये चुनावो म लबर पार्टी की सरकार बनी। लबर पार्टी (मजदूर दल) की भारतीय जनमत के प्रति सहानुभूति

थी। 1946 ई० में इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री एटली ने एक मन्त्रिमण्डल मिशन भारत भेजा पर कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने उनकी योजना'आन्तरिक सरकार को स्वीकार नहीं किया। अंत में मार्च 1947 में लार्ड माउंटबेटन भारत के अंतिम वायसराय बनकर आए। उस समय तक देश में एक ओर मुस्लिम लीग और दूसरी ओर हिंदू-सभा आदि के विषैले प्रचार के कारण साम्प्रदायिक सद्भाव समाप्त हो चला था। अतएव, माउंटबेटन ने 3 जून, 1947 को हिंदुस्तान का विभाजन कर, भारत व पाकिस्तान नामक दो राष्ट्रों की स्थापना करने की योजना बनाई। गांधीजी और खान अब्दुल गफ्फार खां ने इसका पूरा विरोध किया लेकिन तत्कालीन परिस्थितियोंवश एवं कटुता व हिंसा को बढ़ते देखकर सरदार पटेल जवाहरलाल नेहरू आदि अधिकांश भारतीय नेताओं ने इस योजना को स्वीकार कर लिया। मुस्लिम लीग तो इसे पहले ही स्वीकार कर चुकी थी। इसके फलस्वरुप **भारतीय स्वाधीनता अधिनियम'** के अंतर्गत 15 अगस्त 1947 ई० को हिन्दुस्तान को ब्रिटिश साम्राज्य से आजादी मिल गई। महात्मा गांधी के नेतृत्व में चल रहा दीर्घकालीन स्वतन्त्रता संग्राम सफल हुआ। इसे अधिकांश इतिहासकार मानते हैं कि स्वाधीनता प्राप्ति का बहुत कुछ श्रेय महात्मा गांधी को ही है जिन्होंने 25-30 वर्षों तक देश के स्वाधीनता-संग्राम का सफल नेतृत्व कर अहिंसात्मक ढंग से हिंदुस्तान को पूर्ण स्वतन्त्रता दिलवाई।

निष्कर्ष मूल्यांकन—महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन का संचालन जिस कुशलता से किया उसने स्वतन्त्रता प्राप्ति को किसी सीमा तक सरल बना दिया। उन्होंने यह बिलकुल समझ लिया कि अंग्रेजी-साम्राज्य जैसी महाशक्ति का सामना सिर्फ सत्य और अहिंसा से ही किया जा सकता है। इसके अलावा राष्ट्रीय कांग्रेस को भी उन्होंने एक समन्वयपरक संस्था बनाये रखा। राष्ट्रीय आन्दोलन के समय कांग्रेस पार्टी में कई बार सैद्धांतिक एवं व्यक्तिगत मतभेद हुए। किन्तु गांधीजी में विभिन्न तथा विरोधी विचारों का एक रूप एवं समन्वित करने की अपूर्व क्षमता थी। डा० राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है कि इस क्षमता के ही कारण कांग्रेस पार्टी कई बार विघटित होने होते बची। कांग्रेस पार्टी के मंच पर सभी विचारधाराओं को एकत्रित कर एक रूप बनाना गांधीजी के ही वश की बात थी।

स्वराज्य प्राप्ति तथा भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का संचालन करने में महात्मा गांधी ने एक अत्यन्त ही निपुण आन्दोलन संचालक, दूरदर्शी राजनीतिज्ञ और अनुभवी मनोवैज्ञानिक व्यक्ति का परिचय दिया। सत्य एवं अहिंसा का राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रयोग कर महात्मा गांधी ने एक महान एवं श्रेष्ठतर आत्मशक्ति का प्रयोग किया जिसने साम्राज्यवादियों को घुटने टेकने के लिए विवश ही नहीं किया बल्कि विरोधियों को भी गांधीजी की प्रशंसा करनी पड़ी। सारांश में अलबर्ट आइंसटीन के शब्दों में, गांधीजी ने यह प्रदर्शित कर दिया कि एक शक्तिशाली मानव समूह को, चालाकी या चालबाजी द्वारा ही नहीं, जैसा कि सामान्य राजनीति

म किया जाता है, किन्तु जीवन आचरण के श्रेष्ठ नैतिक उदाहरण द्वारा संगठित किया जा सकता है। इस पूर्ण नैतिक पतन के युग में गांधी ही एक ऐसे राजनीतिज्ञ थे जो राजनीतिक क्षेत्र में उच्च मानवीय सम्बन्धों पर दृढ रहे।"

डॉ० के एम पणिक्कर ने भारतीय संघर्ष में गांधीजी के योगदान का वर्णन करते हुए लिखा है, "भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्ति में महात्मा गांधी के योगदान को सभी पक्षों द्वारा स्वीकार किया जाता है। ये महात्मा गांधी ही थे, जिन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद को, जो बौद्धिक वर्ग तक सीमित एक आन्दोलन था, एक क्रान्तिकारी जन आन्दोलन का रूप प्रदान किया। उन्होंने इस आन्दोलन के संगठन और अनुशासन का विकास किया और आन्दोलन को प्रभावदायक कार्य पद्धति प्रदान की। इन सबके अतिरिक्त उनके द्वारा ही इस आन्दोलन में सामाजिक न्याय की भावना, समानता की इच्छा और दलित वर्गों की मुक्ति की चाह उत्पन्न की गयी।' महात्मा गांधी ने अपने कार्यों से भारत राष्ट्र के जन जन के हृदय में स्थान पा लिया भारतीय जनता के द्वारा उन्हें 'राष्ट्र पिता' के नाम से सम्बोधित किया गया।

फ्रेंच दार्शनिक रोम्यां रोलाँ ने ठीक ही कहा है कि "गांधीजी ही केवल भारत के राष्ट्रीय इतिहास के ऐसे नायक हैं, जिनकी किंवदंतियां युगों तक प्रसिद्ध रहेंगी। उन्होंने मानवता के सन्तों और महात्माओं में अपना स्थान प्राप्त किया है और उनके व्यक्तित्व का प्रकाश सम्पूर्ण विश्व में फैला हुआ है। गांधीजी वस्तुतः एक महान् पुरुष थे जिन्हें राष्ट्र पिता, राष्ट्र निर्माता तथा युग पुरुष की उपाधियों से विभूषित किया गया है।

II गांधी जी के समाज-सुधार सम्बन्धी विचार

समाज सुधार के क्षेत्र में गांधीजी के विचार सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि इस ओर किन्हीं भी भारतीय राजनीतिज्ञों ने ध्यान नहीं दिया था। भारत में जितने भी राजनीतिक आन्दोलन हुए हैं, उनमें समाज सुधार की समस्या को जान-बूझकर राजनीति से अलग रखा गया। भारतीय नेताओं का कहना था कि हम सबसे पहले स्वाधीनता प्राप्त करनी है, समाज सुधार का कार्य तो बाद में भी हो सकता है। राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। परन्तु गांधीजी का दृष्टिकोण इसके विपरीत था। वे जीवन को एक पूर्ण इकाई मानते थे और कहते थे कि जीवन को राजनीतिक सामाजिक धार्मिक, आर्थिक आदि भागों में विभाजित नहीं कर सकते। अतएव राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ-साथ समाज सुधार का काम भी अनिवार्य है। जब तक हम सामाजिक जीवन को शुद्ध नहीं करेंगे, तब तक स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती। सामाजिक सुधार के क्षेत्र में महात्मा गांधी के विचार अस्पृश्यता शिक्षा नशाबंदी, साम्प्रदायिक एकता स्त्री-उत्थान आदि के विषय में अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

1 अस्पृश्यता विरोध हरिजनों का उत्थान गांधीजी एक महान् समाज शास्त्री थे। समाज के क्षेत्र में वे आदर्श समाज की स्थापना में विश्वास करते थे।

उनके आदश समाज म ऊँच नीच, छूआ-छूत अथवा वग भेद को कोई स्थान नही था। उनके विचार म धम क आधार पर कोई भी वण बना हुआ नही था। वे बहुधा जहाँ कही भी जाते-ठहरते हरिजन बस्ती म अपना समय जरूर देते। उनकी प्राथना सभाये वही हुआ करती थी। उनका विश्वास था कि देश मे जब तक अछूत वग का उत्थान नही होता तब तक देश का विकास नही हो सकता।

अस्पृश्यता हिन्दू समाज मे सदिया स चली आ रही थी जो एक प्रकार से सामाजिक अभिशाप सिद्ध हुई। इसने देश की एकता को विघटित किया, सामाजिक असमानता को प्रोत्साहित किया तथा निबल वग के शोषण म सहायक हुई। गाधीजी ने इस सामाजिक कलक को मिटाने का भगीरथ प्रयत्न किया। मध्य तथा आधुनिक कई सत एव सामाजिक सुधारको ने इस पर प्रहार किया। किन्तु किसी को भी उतनी सफलता नही मिल पायी जितनी की गाधीजी को मिलती थी।

गाधीजी ने अछूत एव पिछडे वग के लिए हरिजन जसे उच्च शब्द का प्रयोग कर उनम आत्म सम्मान की भावना उत्पन्न की। हरिजना क उत्थान के लिए उन्होने जीवन भर अनथक प्रयत्न किया। उन्होने छूआ छूत की समस्या को राष्ट्रीय पमाने पर हल करने के लिए उसे काग्रेस के राजनीतिक कायक्रम का अग बनाया। सन् 1932 म गाधीजी ने हरिजन उद्धार काय के लिए हरिजन सेवक सघ का गठन किया। इस सघ का प्रमुख उद्देश्य हरिजना का शक्षणिक, आर्थिक तथा सामाजिक स्तर ऊँचा उठाना था। इस सस्था ने गाधीजी के निर्देशन म छूआ छूत के खिलाफ देश क कोने-कोने म विरोध किया और सभी सावजनिक कुआ, धमशालाओ सडको स्कूलो श्मसान-स्थलो एव मदिरो को हरिजनो के लिए भी खोल देने का आग्रह किया। गाधीजी ने हरिजन नाम स एक हिन्दी साप्ताहिक पत्र भी अपने सपादन म जीवन पयन्त निकाला था जिसम छूआ छूत क उन्मूलन व अन्य समाज सुधारो के पक्ष म निरन्तर लेख प्रकाशित किय गय। गाधीजी क हृदय म हरिजनो के प्रति कितना प्रेम और आदर था। उनकी इन पक्तियो म व्यक्त होता है —'मैं फिर जन्म लेना नहीं चाहता हूँ पर यदि मुझे लेना ही पडे तो मैं अछूत के रूप मे जन्म लेना चाहूगा ताकि मैं अछूतो के कष्टो एव अपमानो मे भाग ले सकूँ और इन दयनीय परिस्थितियो से अपने को और उनको उभार सकूँ। अत मेरी प्राथना है कि मुझे फिर जन्म लेना पडे तो मुझे ब्राह्मण, क्षत्रिय या वश्य के रूप मे नहीं वरन अति शूद्र क रूप मे जन्म मिले। वास्तव म यह गाधीजी के ही प्रयत्नो का सुपरिणाम है कि भारतीय सविधान म अछूत परम्परा तथा छूआ छूत का व्यवहार को गर कानूनी तथा दण्डनीय घोषित किया है।

2 साम्प्रदायिक एकता के प्रबल समथक गाधीजी के जीवन का उच्चतम आदश था भारत के विभिन्न सम्प्रदायो, जसे हिन्दू मुसलमान इसाई पारसी, सिक्ख आदि को एकता के सूत्र म बाधा जाय। वे इतने दूरदर्शी थे कि उन्होने देख लिया कि सबसे बडी और सबसे अधिक गतिशील अल्प सख्यक (मुस्लिम) जाति

को राष्ट्रीय सगठन का अग बनाये बिना भारत न तो आजादी पा सकता है और न उसकी रक्षा कर सकता हैं और न ही भारत की भौतिक या साम्कृतिक उन्नति हो सकती है। अस्तु उन्होंने 'हिन्दू राष्ट्रवाद' और 'मुस्लिम-राष्ट्रवाद' को एकान्वित कर एक सामान्य 'भारतीय राष्ट्रीयता' का रूप दिया। यह उनके जीवन का एक सबसे महान् उल्लेखनीय काय है।

गाधीजी सब धर्मों के गहरे अध्ययन के बाद इस परिणाम पर पहुँचे थे कि सभी मजहबो के बुनियादी सिद्धात एक हैं, फक तो रूढिया और कम-काण्डो तथा ऊपरी रीति-रिवाजो म है। परन्तु रूढियाँ और कमकाण्ड हमेशा बदलते रहते हैं, पर धम के बुनियादी सिद्धात कभी नही बदलते। अस्तु, गाधीजी ने स्पष्ट शब्दो मे घोषित कर दिया था मैं ऐसी आशा नहीं करता कि मेरे सपनो के आदश भारत मे केवल एक ही धम रहेगा यानी वह सम्पूर्ण। हिन्दू मुसलमान या ईसाई बन जायेगा मै तो यह सोचता हू कि वह पूर्णत उदार और सहिष्णु बनें और उसके सब धम साथ-साथ चलते रहें।' राजनीति म वे धम-निरपेक्षता के समथक थ। उनका कहना था कि न कोई धम श्रेष्ठ है और न कोई निम्न स्तर का। अत सभी मनुष्यो को चाहिए कि वे सभी धर्मों का समान आदर करें। सभी सम्प्रदायो को अपने धम और सस्कृति की रक्षा करने का अधिकार है। भारतीय सविधान मे इसके लिए उन्हे समान रूप से राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकार प्राप्त है।

3 नई शिक्षा प्रणाली के प्रणेता--महात्मा गाधी इस तथ्य से भली-भाति परिचित थे कि प्रजातन्त्र की सफलता अच्छी शिक्षा पर आधारित है। इसलिए व शिक्षा का सावजनिक विस्तार करना चाहते थे। उनका कहना था कि शिक्षा को देश के अनुकूल होना चाहिए। वे अग्रेजी के मा यम द्वारा प्रदत्त शिक्षा-प्रणाली को दोषपूर्ण समझते थे, क्योकि इसके द्वारा न तो शरीर, न बुद्धि और न आत्मा का विकास हुआ है। गाधीजी भारत मे एसी शिक्षा-प्रणाली चाहते थे, जो चरित्र के विकास म सहायक हो सके। उन्होंने कहा था—"बिना आचार के बौद्धिक ज्ञान वसा ही है जसा कि खुशबूदार मसाला लगाया हुआ मुर्दा। वह देखन म तो शायद सु दर लगेगा लेकिन उसमे स्फूर्ति देन वाली या मनुष्य को ऊँचा उठाने वाली कोई बात भी न होगी।' गाधीजी तो बालक के शरीर, मन और हृदय का विकास करने के पक्ष म थे। उनका मत था कि "साक्षरता स्वय म कोई शिक्षा नही है। इसलिए मैं तो बालक की शिक्षा म उसे कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाना शुरू करूँगा।" इसलिए, गाधीजी ने भारतीय शिक्षा पद्धति म आमूल चूल परिवतन एव सुधार लाने के उद्देश्य से 'बुनियादी शिक्षा योजना' का सूत्रपात किया। बुनियादी शिक्षा के जरिये वे देश म फली बेरोजगारी की समस्या को हल करना चाहते थे। व एसी शिक्षा नही चाहते थे जो भारत जसे निधन ग्रामवासियो को महगी पडे। इसी उद्देश्य को

सामने रखकर 'बुनियादी शिक्षा' प्रणाली की योजना तयार की गई । गाधीजी की यह क्रातिकारी बुनियादी शिक्षा 'वर्धा शिक्षा योजना' के नाम से भी प्रसिद्ध है ।

बुनियादी शिक्षा पद्धति की विशेषतायें—मनोवज्ञानिक दष्टिकोण तथा भारतीय परिस्थितिया के सदभ म बुनियादी शिक्षा गाधीजी का एक महत्त्वपूण योगदान था । इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं —

1 शिक्षा बुनियादी दस्तकारी के आधार पर दी जाय ।
2 शिक्षा स्वावलम्बी हो ताकि विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने के साथ-साथ स्वय खच भी चला सके ।
3 शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो ।
4 शिक्षा के द्वारा चरित्र निर्माण हो ।
5 शिक्षा ऐसी हो जिससे साम्प्रदायिक्ता, जातिवाद और धार्मिक असहिष्णुता की भावनाएँ न बढ़ें ।
6 प्राथमिक शिक्षा की अवधि छ साल की हो और उसम अग्रेजी को छोडकर दसवी कक्षा (मैट्रिक अथवा सकण्डरी) स्तर तक सामान्य ज्ञान का पाठय क्रम है ।

महात्मा गाधी ने विद्यार्थिया को स्वावलम्वी बनाने के उद्देश्य स देश भर म बुनियादी शिक्षा का प्रचार किया । उन्होने अनेकानेक राष्ट्रीय शिक्षा सस्थाएँ खुलवाने म सक्रिय सहयोग दिया । साराश म व बालक की सर्वांगीण शिक्षा म विश्वास करते थे । इसलिए हाथ की शिक्षा मस्तिष्क की शिक्षा तथा शारीरिक शिक्षा का दिया जाना आवश्यक समझते थे ।

4 **गांधीजी द्वारा स्त्री-सुधार**—स्त्री सुधार के क्षेत्र म गाधीजी ने पर्दा-प्रथा बाल विवाह देवदासी प्रथा आदि बुराइयो का डटकर विरोध किया । व स्त्रिया को जीवन के हर क्षेत्र म पुरुपो के समान अधिकार दने के पक्ष म थे । व कहा करते थे । स्त्रियो को 'अबला' कहना उनका अपमान करना है । उनके मतानुसार, नतिक बल त्याग, सहन शक्ति और अहिंसा स्त्रियो म पुरुषा से अधिक देखने को मिलती है । उनका स्पष्ट मत था कि ' **स्त्री समाज द्वारा स्वाधीनता आदोलन मे सक्रिय भाग लिये बिना स्वराज्य की मजिल दूर रहेगी ।** उनके असहयोग आन्दोलन स भारतीय नारी का मुक्ति द्वार खुल गया । घर घर म चरखा चलाने स लाखा स्त्रिया को खादी मे रोजगार मिला । साराश म गाधीजी के सत्प्रयत्नो से स्त्री समाज का भारी उपकार हुआ ।

5 **मद्य निषेध**—महात्मा गाधी मदिरापान के विरुद्ध थे । मद्य निषध गाधीवाद के सामाजिक कायक्रम का अग था । उन्ही के प्रभाव के कारण अनेक प्रा ता म राज्य सरकार शराब-बन्दी लागू कर सकी हैं । गाधीजी तो सभी तरह के मादक द्रव्यो-शराब, गाजा, चरस आदि की कडी भत्सना करते थ । उन्होने मद्यपान

को विषपान की सज्ञा दी। उनका कहना था कि मदिरापान से लाखो घर बार चौपट हो गये। यह व्यक्ति को वासनाओ का शिकार बना, उसके स्वास्थ्य का एव चरित्र को चौपट कर देती है। गाधीजी का दृढ विश्वास था कि मद्य निषेध नीति अपनाने पर भारतीयो का शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास हो सकता है। शराब बन्दी आन्दोलन को लोकप्रिय एव प्रभावी बनाने के उद्देश्य से महात्मा गाधी ने कांग्रेस द्वारा सन् 1920 व 1930 म राष्ट्र व्यापी स्तर पर छेडे गये 'असहयोग तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलनो, के कायक्रम म शराब की दुकानो पर सत्याग्रहियो द्वारा धरना देन का भी कायक्रम निश्चित किया था। उस आन्दोलन म लाखो स्त्री पुरुष काग्रेस कायकर्त्ताओ ने भाग लिया था।

आर्थिक विषमता को दूर करने की नीति

गाधीजी ने आधुनिक काल म मशीनीकरण से उत्पन्न आर्थिक विषमता को भारतीय समाज क लिए घोर अभिशाप माना। वे चाहते थे कि समाज का कोई व्यक्ति भूखो न मरे। उसके साथ ही व यह भी चाहते थे कि किसी भी व्यक्ति के पास अत्यधिक पूजी जमा न हो जाय। वे हर प्रकार के शोषण के विरुद्ध थे। गाधीजी ने शोषण की समाप्ति के लिए ट्रस्टीशिप' (सरक्षण) के सिद्धात पर जोर दिया।

गाधीजी भारत की गरीबी, भुखमरी व नग्नता से बहुत ही चिन्तित थ। उनका मत था कि भारत की यह गरीबी और बेरोजगारी की समस्या गृह उद्योग धन्धो के गाव गाव म विकसित करने पर ही दूर हो सकती है। उनके मतानुसार केवल उन्ही वस्तुओ के उत्पादन की भारी मशीन लगाई जावें जिनका उत्पादन गृह व कुटीर उद्योग धन्धो द्वारा न हो सके। ग्रामो को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाने के उद्देश्य से ही उन्होने खादी एव ग्रामोद्योगो का समथन किया था। वे आर्थिक विकेन्द्रीयकरण के पक्ष म थे। उन्होने स्वदेश म निर्मित वस्तुओ के उपयोग पर बल दिया।

निष्कर्ष—गाधीजी के समाज सुधार की समस्त अवधारणा, प्रेम, सहिष्णुता सह अस्तित्व और भाई चारे की भावनाओ पर आधारित थी। उनकी काय प्रणाली पूर्णत अहिंसावादी थी। उनके सर्वोदय समाज की कल्पना नैतिक मूल्यो पर आधारित थी। गाधीजी सम्भवत सबसे महान् भारतीय समाज सुधारक थे।

इस तरह गाधीजी केवल स्वप्न द्रष्टा ही नही, वरन् व्यावहारिक आदशवादी थे। उन्होने जिन सिद्धान्तो और आदर्शों का प्रचार किया उनको व्यवहारिक रूप भी प्रदान किया। उनका खादी कायक्रम स्वदेशी आन्दोलन राष्ट्रीय शिक्षा, हिन्दू मुस्लिम एकता, ग्रामोद्धार, नशाबन्दी छुआ छूत का अन्त, बाल विवाह का अन्त और विधवा विवाह को समथन इत्यादि सब व्यावहारिक आदश थ।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टगोर ने महात्मा गाधी के सम्बन्ध म लिखा है ' गाधीजी राजनीतिज्ञ, सगठन कर्त्ता, जन-नेता और नैतिक सुधारक के रूप म महान्,

हैं, परन्तु इनसे भी महान् वे मनुष्य के नाते हैं, क्योंकि इनमें से कोई भी रूप उनकी महानता को सीमित नहीं करता बल्कि व उनकी महानता में अनुप्राणित होते हैं और उसी के सहारे टिके हुए हैं। यद्यपि व दृढ़ आदर्शवादी हैं और प्रत्येक के कार्यों को अपनी ही कसौटी पर कसते हैं, तथापि वे विचारों की अपेक्षा मनुष्यों को अधिक प्यार करते हैं। इसी कारण हम उन्हें अपनी क्रांतिकारी योजनाओं में बहुत सावधान और परिवर्तनशील पाते हैं। यदि व समाज पर किसी परीक्षा को करना चाहते हैं तो सबसे पहले वे उसे अपने पर करते हैं यदि वे बलिदान तथा त्याग की माग करते हैं तो सबसे पहले व स्वयं उसकी कीमत चुकाते हैं। जबकि अनेक समाजवादी अपने विशेषाधिकारों को त्याग के पूर्व इस बात की प्रतीक्षा करते हैं कि पहले और सब अपने विशेषाधिकारों का त्याग कर दें, यह मनुष्य दूसरों के त्याग की आशा करने से पूर्व स्वयं त्याग करता है।''

III गांधीजी का सत्याग्रह सिद्धान्त व अहिंसा दर्शन

''हम अहिंसा को केवल व्यक्तिगत व्यवहार के लिये ही नहीं वरन सघों, समुदायों और राष्ट्रों में व्यवहार का सिद्धान्त बनाना है।''

—महात्मा गांधी

गांधीजी ने सत्य, अहिंसा और न्याय पर ही आधारित एक आन्दोलन का सूत्रपात किया था। भारत अंग्रेजों के उपनिवेशवाद साम्राज्यवाद, तथा शोषण नीति से दबा आ रहा था। अस्तु, सत्याग्रह आन्दोलन का प्रयोग एक व्यापक तथा निश्चित विज्ञान के रूप में गांधीजी ने भारतीय स्वाधीनता सग्राम में किया।

सत्याग्रह अर्थ व उद्देश्य—सत्याग्रह का अर्थ सत्य की खोज है। सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ सत्य पर अटल रहना है। महात्मा गांधी सत्याग्रह का जो अर्थ समझाते थे उसके अनुसार यह सत्य पर आरूढ़ रहकर प्रेमपूर्वक स्वयं कष्ट उठाने के लिए तत्पर रहना है। सत्याग्रह सत्य की प्राप्ति का अहिंसात्मक साधन है। सत्याग्रही स्वयं कष्ट सहन द्वारा विरोधी को गलत मार्ग से हटाने का प्रयत्न करेगा। वह घृणा को प्रेम से, असत्य को सत्य से हिंसा को अहिंसा द्वारा विजय प्राप्त करने का प्रयास करता है। गांधीजी ने इसे प्रेम बल तथा आत्म बल कहा है।

इस तरह सत्याग्रह का अर्थ होता है सत्य पर आग्रह करते हुए अत्याचार का विरोध करना। अत्याचारी के आगे न तो आत्म समर्पण किया जाता है और न उसकी अन्याय पूर्ण बातों को माना जाता है। अन्यायी या अत्याचारी को उस समय सफलता मिलती है जब लोग भयभीत होकर उसके आगे नत मस्तक हो जाते हैं। किन्तु यदि सत्याग्रही यह निश्चय कर लें कि चाहे जो हो जाय, हम तुम्हारी अन्यायपूर्ण आज्ञा का उल्लघन करेंगे तो अत्याचारी अधिक से अधिक सत्याग्रही को मरवा सकता है, किन्तु आदेश का पालन नहीं करा सकता। इस तरह के जन आन्दोलन में जब शासक देखता है कि उसका आदेश निरर्थक हो रहा है, तब तक सत्या

अहियो द्वारा सहन की जाने वाली कठोर यातनाओ और कष्टो के कारण उसके हृदय पर प्रभाव पडता है। वह कितना ही कठोर, क्रूर, निष्ठुर क्या न हो, उसमे मानव की प्रस्तुत भावना जाग्रत हो जाती है और उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है। उसे लोकमत के कारण भी मजबूर होना पडता है और वह अपने अत्याचारो पर पश्चाताप करने लगता है।

सत्याग्रह का विवेचन करते हुए गाधीजी ने लिखा है, 'यह शास्त्र बल से उल्टा है। मिसाल के लिए, मान लीजिए, सरकार ने एक कानून बनाया जो मुझ पर लागू होता है। वह मुझे पसन्द नही है। अब यदि मैं सरकार पर हमला करके उसे वह कानून रद्द करने को मजबूर करूँ तो मैंने अपनी शरीर बल से काम लिया पर मैं उस कानून को मजूर ही न करूँ, उसे मानने की जो सजा मिले। उसे खुशी से भुगतलूँ तो मैंने आत्म बल से काम लिया अथवा सत्याग्रह किया। सत्याग्रह मे अपनी ही बलि देनी होती है।' जब आत्म बल का पशुबल से सघर्ष होता है तब आत्म बल की विजय निश्चित है।

सत्याग्रह के विभिन्न रूप—*राजनीतिक जन आन्दोलनो को अधिक क्रियात्मक* रूप देने के लिए गाधीजी ने सत्याग्रह के चार स्वरूप बतलाये है (1) निष्क्रिय प्रतिरोध—इस आन्दोलन का अर्थ था कि अन्याय का विरोध शस्त्रो से न करके शाति पूर्वक उपायो से किया जाय। इसका प्रयोग गाधीजी ने दक्षिणी अफ्रीका मे गोरी सरकार के अत्याचारो के विरोध मे किया था। (2) असहयोग—एतिहासिक दृष्टि मे भारत मे यह आन्दोलन 1920 21 मे गाधीजी द्वारा चलाया गया था। इस का उद्देश्य था। भारत को ब्रिटिश सरकार की पराधीनता से मुक्त कराना। इनके अनुसार, शासन कार्य मे सहयोग देने वाले भारतीय कर्मचारी यदि अग्रेजी सरकार से असहयोग कर दें तो अग्रेजी शासन भारत मे कायम नही रह सकता। सरकारी नौकरी छोडना अदालतो, स्कूल कालेजो का बहिष्कार करना ऐसे ही असहयोगी साधन है। असहयोग आन्दोलन, हडताल का रूप भी धारण कर सकता है तथा सामाजिक बहिष्कार अथवा धरने का भी। (3) सविनय अवज्ञा—यह गाधीजी का सबसे अधिक प्रभावशाली और सशस्त्र क्रांति का रक्तहीन रूप है। इसे उन्होने असहयोग आन्दोलन की अन्तिम सीढी बतलाया है। इसका प्रमुख उद्देश्य है, अनैतिक नियमो को तोडना। गाधीजी के अनुसार यह आन्दोलन आज्ञाओ को न मानते हुए भी आदर विनय एव सयम से होना चाहिए। घृणा या शत्रुता की भावना तो इसमे कदापि नही हो। सविनय अवज्ञा आन्दोलन का गाधीजी ने भारत मे सन् 1930 31 मे प्रयोग किया था। (4) उपवास—गाधीजी उपवास को शीघ्र फलदायक कहते हैं। इसे वे अग्निबाण भी कहते है। उपवास के दो उद्देश्य होते है—आत्म शुद्धि तथा अन्याय का विरोध। उपवास वही कर सकता है जिसमे पवित्रता आत्म सयम, नम्रता और अटल विश्वास हो। उपवास मे विपक्षी को कष्ट नही

दिया जाता है, अपितु स्वयं कष्ट को सहा जाता है। यह विपक्षी का विवश करने या बाध्य करने की अपेक्षा उसके हृदय परिवर्तन करने के लिए किया जाता है। वस्तुत अन्याय तथा अनैतिकता से छुटकारा पाने के लिए उपवास एक अन्तिम अहिंसक राजनैतिक शस्त्र है। हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए सन् 1924 मे 24 दिन का और 1947 मे दो लम्बे उपवास गाधीजी ने किये थे। इन उपवासो से उन्हे अधिक सफलता मिली।

सत्याग्रह का आधार अहिंसा विवेचन

"ससार का ध्यान गाधीजी की ओर इसलिए आकृष्ट हुआ कि उन्होंने पशु-बल के समक्ष आत्म बल का शस्त्र निकाला, तोपो और मशीन गनो का सामना करने के लिए अहिंसा का आश्रय लिया।" गाधीजी ने अहिंसा के दो रूप बतलाये हैं—पहला नकारात्मक रूप और दूसरा सकारात्मक। किसी प्राणी को स्वार्थ, क्रोध अथवा द्वेशवश कष्ट देना या हानि पहुँचाना अहिंसा का नकारात्मक रूप है। सकारात्मक पक्ष म अहिंसा के चार मूल तत्व पाये जाते हैं। वे है—(1) प्रेम और उदारता, (2) धय (3) अन्याय का विरोध और (4) वीरता।

अहिंसा को लेकर गाधीजी को जो सुयश प्राप्त हुआ, वह अपनी मिसाल आप है। गाधीजी अहिंसा को मोक्ष प्राप्ति का ही साधन नही बतलाकर उसे सामाजिक शान्ति, राजनीतिक व्यवस्था, धार्मिक समन्वय तथा परिवार का भी साधन बतलाते है। यह मनुष्य एव सम्पूर्ण प्राणी-जगत के लिए व्यवहार योग्य है। गाधीजी ने सत्याग्रह आन्दोलन मे अहिंसा का प्रयोग किया और उनके प्रयोग से ससार के असख्य लोगो म यह आस्था उत्पन्न हुई कि अहिंसा की साधना सामूहिक कार्यो मे भी चल सकती है।

अग्रेज साम्राज्यवादियो के विरुद्ध अपने सघर्ष में गाधीजी पशु और मनुष्य के सघर्ष का स्वरूप देखते थे। उनके शब्दो म अग्रेज हमारे सत्याग्रह सघर्ष को बन्दूको के धरातल पर ले आना चाहते थे, क्योकि बन्दूके उनके पास है जिन्हे वे चला सकते हैं। किन्तु हम तो उसी धरातल पर टक्कर लडेंगे, जिस धरातल के शस्त्र हमारे पास हैं और अग्रेजो के पास नही हैं।'

गाधीजी के अहिंसा के प्रयोग पर एक समय सारा ससार हँसता था और बडे बडे लोग यह कहकर शका से सिर हिलाया करते थे कि इतिहास मे कभी भी तो अहिंसक क्रान्ति नही हुई। किन्तु अहिंसा म जो शक्ति छिपी है, उसे केवल गाधीजी की दृष्टि देख सकती थी। "सच्ची अहिंसा भय नही प्रेम से जन्म लेती है निस्सहायता नही सामर्थ्य मे उत्पन्न होती है। जिस सहिष्णुता मे क्रोध नही, द्वेश नही और निस्सहायता का भाव है, उसके समक्ष बडी से बडी शक्तियो को झुकना पडेगा।"

निष्कर्ष—साराश म, वतमान सभ्यता को विनाशकारी दोषो से मुक्त करने के लिए गाधीजी ने मानव जाति को अहिंसा का पाठ पढाया। उन्होने सघर्ष, भय और सशय के जीवन से छुटकारा देने के लिए एक नतिक समाज की रचना की। गाधीजी के सत्य, अहिंसा और साधना की विशुद्धता को अव्यावहारिक समझने का अर्थ होगा मानवता का परित्याग करना तथा पशुओ के स्तर को प्राप्त करना।

डा राधा कृष्णन—ने ठीक ही लिखा है कि "गाधीजी एक क्रांतिकारी चिन्तक थे, उन्होने राजनीति को शुद्ध बनाने के लिए मानव स्वभाव के परिवतन मे महत्वपूर्ण योगदान दिया।" यह महात्मा गाधी ही थे जिन्होने सत्य और अहिंसा जस मूक सिद्धान्त एव अस्त्रो का एक महान शक्ति के रूप म प्रयोग किया। अग्रेजी साम्राज्यवाद को भारत से उखाड फकने म गाधीजी के अहिंसात्मक सत्याग्रही साधनो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

11

आधुनिक भारत और पाश्चात्य संस्कृति

(Modern India and Western Culture)

(i) राजनीतिक वातावरण
(ii) राष्ट्रीय चेतना
(iii) सामाजिक प्रभाव
(vi) धार्मिक प्रभाव
(v) आर्थिक प्रभाव
(vi) कृषि पर प्रभाव
(vii) शिक्षा एवं साहित्य पर प्रभाव
(viii) कला के क्षेत्र मे जागरूकता
(ix) वैज्ञानिक अन्वेषण एवं अनुसंधान
(x) यातायात के साधनों मे वृद्धि
(xi) राजनीतिक क्षेत्र मे प्रभाव

अंग्रेजों ने लगभग 200 वर्ष तक राज्य किया। इस काल में उन्होंने भारतीय सम्पत्ति का शोषण करते हुए, भारतीय उद्योग धन्धों को लगभग नष्ट कर दिया। उनका निरन्तर प्रयास रहा कि भारत की मिली-जुली संस्कृति पनपने न पाव। भारत की सांस्कृतिक एकता नष्ट हो जाय तथा राष्ट्रीय एकता का यहाँ उदय ही न हो।

(i) राजनीतिक वातावरण—

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से उन्नीसवीं सदी के मध्य तक सम्पूर्ण विश्व दो महत्त्वपूर्ण घटनाओं—फ्रांस की राज्य क्रान्ति और नेपोलियन बोनापार्ट का प्रादुर्भाव—से विशेष प्रभावित रहा। फ्रांस की राज्य क्रान्ति ने सामन्तवादी प्रथा का विनाश तथा प्रजातन्त्र की स्थापना कर नये कीर्तिमान स्थापित किये। इस राज्य क्रान्ति ने स्वतन्त्रता, समानता और भाई-चारे के आदर्श का बीज बोया, जो इतिहास में भविष्य में होने वाले सभी जन आन्दोलनों का मूलमंत्र बना। नेपोलियन बोना-पार्ट की विस्तारवादी नीति से सम्पूर्ण यूरोप संत्रस्त हुआ और यूरोप में राष्ट्रीयता

एव राष्ट्र धर्म का विकास होना सभव हुआ । विख्यात राजनीति शास्त्र हेरल्ड लास्की का कथन है—"उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप के इतिहास को एक शब्द 'राष्ट्रवाद' में बाधा जा सकता है ।"

पश्चिमी देशों म राष्ट्रीयता के इस व्यापक विकास का प्रभाव भारतीय जन मानस पर विशेष रूप से पडा । इसमे भारतीयो म राष्ट्र प्रेम की सुप्त भावना जागत हुई । इस तरह अग्रेजो के सम्पर्क का परिणाम भारत के लिय हितकर हुआ । अग्रेजी साहित्य के अध्ययन से भारतीयो का सभी विषयो में नई व आधुनिक जानकारी हुई । यूरोप के साहित्य और इतिहास का पढने के बाद भारतीयो को बोध हुआ कि मानव समाज सवत्र एक सा ही है ।

(II) राष्ट्रीय चेतना—

राष्ट्रीयता, स्वाधीनता एव लोकतन्त्रवाद आधुनिक युग का मुख्य विशेषताए है । मध्य युग मे इनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी । ब्रिटिश काल म भारत के लोग यूरोपीय विचारधाराओ के सम्पर्क म आये और पाश्चात्य शिक्षा और साहित्य से विशेष रूप से प्रभावित हुए । यूरोप मे राष्ट्रीयता के प्रसार से तथा इटली और जर्मनी के स्वातन्त्र्य युद्ध से प्रेरित हो भारतीयो के मन मस्तिष्क म विचार आया कि इन्ही देशो की भाति हिन्दुस्तान भी आजाद हो सकता है । इस भावना के प्रारम्भिक रूप भारतीय जनता म राष्ट्रीय भावना का प्रादुर्भाव हुआ और देश म राजनीतिक चेतना जागत हुई ।

भारतीयो ने राजनैतिक अधिकारों के लिए सगठित प्रयास किया । सन 1885 म भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना हुई । किन्तु यह सस्था जन साधारण का प्रतिनिधित्व नही करती थी । उधर सामाजिक सुधारवादी आदोलन जनता मे नव जागरण उत्पन्न कर रहे थे, जिसके कारण जनता विदेशी शासन की राजनीतिक घुटन का अनुभव करने लगी थी और अपने को स्वराज्य प्राप्ति के लिए सघर्षों के हेतु तयारी कर रही थी । इस तरह जनसाधारण म धीरे धीरे राष्ट्रीय चेतना का विकास हो रहा था ।

भारत म मुद्रणालयो की स्थापना से भारतीयो को अपनी राजनीतिक महत्वाकाक्षाओ को प्रेस के माध्यम से व्यक्त करने का अवसर मिला । उनमे सामूहिक जागरूकता उत्पन्न हुई और उनको अपनी विकासो मुख शक्ति का आभास होने लगा । उनकी स्वतन्त्रता अधिकार एव राष्ट्रीयता की सुपुप्त भावनाए जागत हुइ ।

यह ठीक ही निर्देश किया जाता है कि प्रारम्भिक भारतीय राष्ट्रवादियो के आदर्श व्यक्ति यूरोपीय देश भक्त थे । 1870 के बाद सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अनेक बार अपने नेताओ से यह प्रश्न किया, 'आप म से कौन मजिनी और गरीबाल्डी बनेगा ?' उनका उत्तर होता था— 'हम सब, हम सब !"

(III) सामाजिक प्रभाव—

पाश्चात्य सभ्यता और सस्कृति के प्रभाव ने भारतीय समाज म क्राति उत्पन्न

कर दी। समाज दो श्रेणियों में विभक्त हो गया। प्रथम श्रेणी के अधिकारी लोग यथास्थितिवादी थे। अर्थात् वे देश के सामाजिक ढांचे में कोई फेर बदल नहीं चाहते थे। दूसरी श्रेणी के लोग प्रगतिवादी थे। उन्होंने अस्पृश्यता, पर्दा-प्रथा, बहु विवाह देवदासी-प्रथा एवं निरक्षरता आदि सामाजिक कुप्रथाओं को समाप्त करने का बीड़ा उठाया जिससे मध्यवर्ग में सामाजिक चेतना जागृत हुई। इसके अलावा पाश्चात्य संस्कृति का भारतीय समाज के सम्पर्क से भारतीय प्राचीन व मध्यकालीन नैतिक विचार परिवर्तित होने लगे। फलस्वरूप विवाह, खान पान, वेश भूषा, आचार विचार, शिष्टाचार व्यवहार आदि पर पाश्चात्य प्रभाव झलकने लगा। जाति प्रथा की जकड़न ढीली पड़ने लगी। इसी प्रकार पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति ने भारतीय जीवन और चरित्र को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया। व्यक्तिवाद के प्रसाद से सामाजिक बंधन ढीले पड़े, जिससे समय की गति के साथ जाति प्रथा और संयुक्त परिवार प्रथा बिखर गई।

(IV) धार्मिक प्रभाव—

पाश्चात्य प्रभाव की प्रारंभिक प्रतिक्रिया अल्पसंख्यक अंग्रेजी पढ़े लिखों तक ही सीमित थी। उनमें प्रायः हर पश्चिमी वस्तु के लिए आकर्षण था और मौन स्वीकृति भी थी। हिन्दू धर्म की अनेक सामाजिक कुप्रथाओं के विरोध में बहुत से हिन्दू ईसाई धर्म की ओर आकर्षित हुए और बंगाल के कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों ने अपना धर्म बदला। इसलिए राजा राममोहन राय ने और उनके उत्तराधिकारी केशव चन्द्र सेन ने इस बात पर विशेष बल दिया कि धर्म को नये वातावरण के अनुकूल किया जाय। बंगाल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों के लोगों ने भी इसी प्रकार के सुधारवादी उपाय किये। स्वामी दयानन्द, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द रवि न्द्रनाथ टैगोर और महात्मा गांधी ने हिन्दू मध्यम वर्ग में तथा सर-सैयद अहमद खां, मौलाना अबुल कलाम आजाद, डॉ० मोहम्मद इकबाल आदि ने मुस्लिम मध्यम वर्ग में एक आध्यात्मिक तथा राष्ट्रीय विरासत के प्रति विश्वास बना था। इस विश्वास में एक आध्यात्मिक एवं धार्मिक भावना मिली हुई थी, साथ ही इसकी एक शक्तिशाली राजनीतिक पृष्ठभूमि भी थी। उभरता हुआ मध्यम वर्ग एक सांस्कृतिक नींव पर आधारित राजनीति चाहता था जो उसे मिली भी।

(V) आर्थिक प्रभाव—

पाश्चात्य प्रभाव की प्रारंभिक प्रतिक्रिया आर्थिक क्षेत्र में विपरीत हुई। ब्रिटिश शासन की आर्थिक एवं व्यापारिक नीति से भारत के परम्परागत उद्योग धंधों को धक्का लगा। देश को मुख्यतः कृषि पर ही निर्भर रहने को मजबूर होना पड़ा। किंतु केवल कृषि जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त न हो सकी। इससे देश में आर्थिक संकट हो गया। इसी समय जर्मनी, जापान, अमेरिका और ब्रिटेन में पूँजीवाद और औद्योगीकरण की उठती लहर ने भारत को चौंका दिया। भारत में कच्चे माल उत्पादन साधनों की कमी न थी। अतः देश में औद्योगीकरण को प्रोत्साहन हुई। परंतु देश

मे नये उद्योगो और व्यवसायों की स्थापना हुई। देश में कृषि के साथ व्यावसायिक प्रगति भी शुरू हुई।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण म रूस म एक बडी क्राति हुई,और 1917 मे वहाँ मजदूरो व किसानो का राज्य स्थापित हो गया। इससे दुनिया भर के मजदूरो को प्रेरणा व सबल मिला। भारत म भी साम्यवाद और समाजवाद की लहर आयी, जिससे खेतिहर और श्रमिकों की हीन दशा की ओर लोगो का ध्यान आकृष्ट हुआ। इसके फलस्वरूप भारत में श्रम आदोलनो का श्रीगणेश हुआ और किसानो क सगठन बनने लगे। कार्ल मार्क्स और एजिल्स द्वारा विकसित समाजवादी विचारधारा से सारा भारत प्रभावित हुआ। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य नवीन आर्थिक विचारधाराओ ने भारत म स्वतत्रता की ज्वाला, सामाजिक न्याय की लालसा, क्रातिकारी भावना और विप्लवकारी प्रवति उत्पन्न की। इनके परिणामस्वरूप धम, पू जीवाद और शोषण के विरुद्ध आवाज उठी लोगो म नवचेतना का प्रस्फुरण हुआ।

18वी शताब्दी के अ त और उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ म इगलण्ड मे औद्योगिक क्राति हुई। इसके फलस्वरूप वस्तुओ का निमाण मशीनो स होने लगा। इसलिए इ गलण्ड को कच्चे माल की आवश्यकता हुई। भारत पर ब्रिटिश आधिपत्य हो जाने से इ ग्लैण्ड की उक्त दोनो आवश्यकताओ की पूर्ति हो गयी। एक तो उसे भारत से कच्चे माल का भण्डार मिल गया, दूसरे अपने माल की खपत के लिए मण्डी मिल गयी। इस प्रकार भारत का कच्चा माल इ ग्लैण्ड भेजा जाने लगा और वहाँ से कारखानो मे बना हुआ पक्का माल भारत आने लगा। पर तु, इसके कारण भारत के प्रचलित उद्योग धधे चौपट हो गये। भारत म इ ग्लैंड के कारखानो व मशीनो द्वारा निर्मित सस्ता माल बिकने लगा। हाथ का बना स्वदशी माल महगा पडने लगा, जो प्रतिस्पर्द्धा म विदशी माल के आगे न टिक सका।

1757 ई से 1857 ई तक भारत का विदेश व्यापार यूरोप के अनेक देशों (फ्रास हालण्ड व इ गलण्ड) क हाथो म था, किंतु धीरे धीरे सपूर्ण व्यापार इ गलण्ड के हाथो म आ गया।

सन् 1860 म ब्रिटिश साम्राज्य की भारत म विधिवत स्थापना के साथ मशीनो के आयात पर जो चु गी कर लगी थी वह हटा ली गई और भारत मे उद्योग धधो का आधुनिक विकास प्रारम्भ हुआ। 19वी शताब्दी के अ तिम चरण म कतिपय शिक्षित एव दूरदर्शी उद्योगपतियो ने तात्कालिक आर्थिक नीति एव व्यावसायिक परिवतन के विषय म जानकारी करके उद्योगो का वैज्ञानिक ढग से सगठन किया। यद्यपि यह अधिकाश व्यवस्था एव पू जी यूरोपियनो की थी, फिर भी भारतीयो ने इसका शुभारम्भ किया। फलत 1854 मे बबई म कपडे की मिल स्थापित की गयी। सन 1877 मे नागपुर, शोलापुर, अहमदाबाद आदि म रुई उत्पादन के क्षेत्र

म सूती कपडो के अनेक मिल खुले । 1905 म स्वदेशी आंदोलन ने भारत म स्थापित उद्योगो को प्रोत्साहन देकर अनेक कल कारखाना को खुलवाया ।

बीसवी शताब्दी के प्रथम चरण स, राजनीतिक आन्दोलन एव असतोष के कारण सरकार आर्थिक सुधार करने के लिए विवश हुई । फलत औद्योगिक विकास के लिए 1905 ई मे उद्योग और वाणिज्य का सब प्रधान विभाग की स्थापना का गयी । प्रथम विश्व युद्ध क उपरात देश क व्यापार वाणिज्य मे वृद्धि हुई । परन्तु 1930 34 में विश्व व्यापी आर्थिक मन्दी के कारण आयात और निर्यात दोनो कम हो गये । दूसरे विश्व युद्ध के दौरान (1 37 45 ई) उद्योग एव व्यापार को विकसित होने का पुन अवसर मिला ।

1937 म लोकप्रिय कांग्रेसी व अन्य प्रान्तीय सरकारो के गठन होने पर भारतीय औद्योगिक योजनाओ को क्रियान्वयन किया गया । फलत देश म गर सरकारी भारतीय व्यापारिक सगठनो (तथा, इण्डियन चैम्बर ऑफ कामर्स) न उद्योग धन्धा के विकास के लिए कदम उठाय । इसी काल म प जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता म एक राष्ट्रीय योजना समिति गठित की गयी ।

रजनी पाम दत्त—के मतानुसार, सचमुच ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन मे भारत का 'औद्योगिकरण' नही हुआ बल्कि 'अनुद्योगिकरण' हुआ है। विकास की गति बडी धीमी रही । साम्राज्यवादी शोषण का यह अनिवाय परिणाम निकला कि देश की खेती हर आबादी हद स ज्यादा गरीब हो गई, जिसकी बजह से भारतीय उद्यागो म बन हुए माल के लिए देश का अन्दरूनी बाजार बेहद सुकड जाता है । भारत की बैंक व्यवस्था पर अंग्रेजी का जो नियन्त्रण कायम था, वह भारत के औद्योगिक एव स्वतन्त्र विकास को रोकने के लिए इस्तेमाल किया जाता था । युद्ध कालीन बोझ क कारण दूसरे महायुद्ध के पश्चात् भारत की आर्थिक हालत बहुत ही नाजुक हो गयी और वह आसमान को छूने वाले मुद्रा प्रसार महगाई और आम तबाही का शिकार हो गया ।

(VI) कृषि पर प्रभाव—

ब्रिटिश-शासन के पूव भारत मे कृषि और उद्योग धधे आदि साथ साथ चलते थे । किन्तु अंग्रेजो क शासन के कारण व्यावसायिक क्षेत्र म भारत परमुखापेक्षी हो गया । पारम्परिक उद्योग धधो के नष्ट कर दिय जान से ग्रामीणो को कृषि पर ही निभर रहना पडा । इससे भूमि की उवरता भी धीरे धीरे कम होती चली गयी । इसके अतिरिक्त जमीदार-प्रथा, बेगार प्रथा, महाजनी प्रथा और प्राकृतिक विपदाओ के कारण किसानो की दशा दिनो दिन बिगडती गयी ।

इसस भी ज्यादा महत्व की बात यह थी कि भूखो मरन वाले भारत से अधिकाधिक माल बाहर भेजा जान लगा । 1849 ई म 8, 58, 000 पौंड को

कीमत का अनाज बाहर गया था। 1858 म 8 लाख पौ ड की कीमत का अनाज बाहर गया। इसी तरह 1877 म 79 लाख पौण्ड का, 1901 म 93 लाख पौण्ड का और 1914 म 193 लाख पौण्ड का अनाज बाहर गया।

उसके साथ साथ उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध म अकालो की सख्या और भयकरता मे भारी बढोत्तरी हो गयी। सन 1800 1825 के काल में अकाल से होने वाली मृत्यु सख्या 10 लाख थी, वह 1875 1900 के काल म बढकर 50 लाख हो गई।

सब प्रथम लाड कजन ने वैज्ञानिक ढग से खेती करने पर बल दिया। उन्होने के द्रीय तथा प्रातीय कृषि विभागो का पुनगठन किया। उच्च कृषि शिक्षा के लिए 1903 ई म 'एग्रीकल्चर ईस्टीट्यूट' । पूना की स्थापना हुई। 1905 म भारत सरकार ने 'अखिल भारतीय कृषि बोड की स्थापना' की। 1906 मे इण्डियन एग्रीकल्चर सर्विस' की व्यवस्था की गयी और कृषि विज्ञान की शिक्षा स्कूल कालेजो म दी जाने लगी। 1908 मे एग्रीकल्चर कालेज, पूना की स्थापना की गयी और उसके उपरात कानपुर, नागपुर, लायलपुर कोयम्बटूर आदि कई स्थानो म कृषि कालेजो की स्थापना की गयी। 1919 ई के सवधानिक सुधारो के बाद कृषि को प्रान्तीय विषय बना दिया गया और प्रत्यक प्रान्त मे एक विभाग खोल दिया गया। केवल अनुसधान सस्थाओ का उत्तरदायित्व भारत सरकार पर था। किसान और खेतिहरो को जमीदारो तथा महाजनो के शोषण व अत्याचारो और दु यवहारो से मुक्ति दिलाने के लिए अनेक कानून पास किये गय।

आजादी के बाद कृषि पर विशेष बल दिया गया। खाद्य सकट का सामना करने के लिए 'अधिक अन्न उपजाओ' तथा 'हरित क्रान्ति' आदि आदोलन चलाये गये। वैज्ञानिक ढग से खेती करने के लिए किसानो को आधुनिक औजारो ट्रैक्टरो, ट्यूब वलो, उवरक आदि के प्रयोग क लिए प्रोत्साहित किया गया। उन्नत शोधित बीज उपलब्ध कराये गये। सिचाई की सुविधा के लिये अनेक बाध व नहरें बनाई गई। किसानो की दशा सुधारने के लिए जमीदारी प्रथा का उन्मूलन किया गया। इन सबके परिणामस्वरूप भारत कृषि उत्पादन म अब आत्म निभर हो गया है।

(VII) शिक्षा एव साहित्य पर प्रभाव—

अग्रेजी शासन क पहले हिन्दुस्तान म प्राचीन शिक्षा पद्धति प्रचलित थी। किन्तु पाश्चात्य सभ्यता एव सस्कृति क प्रभाव से भारत म अग्रेजी शिक्षा का सूत्रपात हुआ। अग्रेजी शिक्षा धीरे धीरे किन्तु तेजी से फली और अन्त म उसका भारतीयो पर पर्याप्त प्रभाव पडा। अग्रेजी के ज्ञान क साथ साथ अग्रेजी साहित्य का ज्ञान और वह सब कुछ आया जो उसमे था। समाचार पत्रो का चलन हुआ। भारतीय कला पर भी पश्चिमी कला का अत्यधिक प्रभाव पडा।

लार्ड हार्डिंग के शासन काल में लार्ड मैकाले ने भारत में अंग्रेजी पाठ्यक्रम की व्यवस्था की। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार से प्राचीन व मध्यकालीन परम्पराएँ धूमिल पड़ गयीं। फलत शिक्षित और अशिक्षित वर्ग के बीच एक गहरी खाई पड़ गयी। अंग्रेजी भाषा के आगमन से देशी भाषाओं व साहित्य के अतिरिक्त भारतीयों को पाश्चात्य देशों के विविध साहित्य के अध्ययन का अवसर मिला जिससे स्वतंत्रता समानता एवं राष्ट्रीयता का उद्रेक हुआ। इस तरह विचारधाराओं का सूत्रपात हुआ, जिसमें देशी साहित्य प्रभावित हुआ। भारतीय गद्य साहित्य की अभिवृद्धि पाश्चात्य पुस्तकों के अनुवाद से हुई। भारतीय गद्यकारों ने पाश्चात्य आदर्श शैली के आधार पर लेख लिखे। पाश्चात्य नाटको व एकांकी के आधार पर नाटक लिखे गये। समालोचना के क्षेत्र में भी पाश्चात्य आदर्शों को अपनाया गया। काव्य का क्षेत्र भी पाश्चात्य प्रभाव से मुक्त न रह सका। 'सबोधन गीत', 'चतुर्दश पदियाँ' तथा 'अतुकान्त कवितायें' लिखी गयी। छायावादी शैली में भी अंग्रेजी शैली का अनुकरण किया गया। पाश्चात्य विद्वानों ने भी देशी भाषाओं के इतिहास, व्याकरण और कोष तैयार किये। ईसाई धर्म का प्रचार करने के उद्देश्य से भारत में मुद्रणालयों की स्थापना हुई। धीरे धीरे देश में विश्वविद्यालयों कॉलेजो, हाई स्कूलों तथा दूसरे स्कूलों को खोलने का सिलसिला चालू हो गया। इनसे स्त्री शिक्षा की भी व्यवस्था की गयी। स्त्री शिक्षा के प्रसार से उनकी स्थिति में सुधार होना शुरू हो गया।

(VIII) कला के क्षेत्र में जागरूकता

प्राचीनकाल से ही भारत कला के क्षेत्र में बड़ा प्रगतिशील रहा है। ललित कला के अतिरिक्त स्थापत्यकला, शिल्पकला और चित्रकला का देश में विशाल भण्डार है। पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के संघर्ष से भारतीय इतिहास के वैज्ञानिक अध्ययन का श्रीगणेश हुआ। ये अंग्रेज ही थे जिन्होंने भारत के अतीत को खोजने में सहायता दी। उन्होंने मार्ग दर्शन किया और भारतीय विद्वानों ने उसका अनुशीलन किया।

जेम्स प्रिंसेप ने 1834 ई में अशोक के शिलालेखों की खोज की। सम्राट अशोक की शान और महिमा अंग्रेज विद्वानों के परिश्रम के बिना छिपी रहती। अंग्रेजों ने सारे बौद्ध साहित्य का अंग्रेजी में अनुवाद किया। और इसे भारतीयों को सुलभ करवाया। डॉ वी ए स्मिथ ने प्राचीन भारत के इतिहास पर अत्यधिक कार्य किया। पुरातत्व के क्षेत्र में कनिंघम का योगदान रहा। अनेक ऐतिहासिक और कलात्मक फारसी भाषा की पुस्तकों का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में छपवाया गया।

इस तरह भारतीयों की प्राचीनकला के प्रति जागरूकता का श्रेय पाश्चात्यों विद्वानों को है। सिस्टर निवेदिता फर्ग्युसन और हैवल आदि ने भारत की गौरव

पूर्ण प्राचीन ललित कलाओं के प्रमुख तत्वों प्रवृत्तियों तथा कलात्मकता का सर्वप्रथम उदघाटन किया था। इनके अतिरिक्त सर जान मार्शल, पर्सी ब्राउन, मैक्समूलर और कुमार स्वामी आदि ने भारत की प्राचीन कला की ओर विश्व के बुद्धि जीवियों का ध्यान आकृष्ट किया। इन पाश्चात्य विद्वानों ने शिलालेखों, मूर्तियों, मुद्राओं और सिक्कों को खोजकर इतिहास के नये अध्याय लिखे। फलत भारतीयों की भी आँखें खुली और वे अपने गौरवपूर्ण स्वर्णिम इतिहास को समझने में सक्षम हो सके। भारत का गौरवपूर्ण इतिहास प्रकाश में आने के फलस्वरूप संसार के सभी देश भारत को आदर की दृष्टि से देखने लगे।

(IX वैज्ञानिक अन्वेषण एवं अनुसंधान—

वैज्ञानिक क्षेत्र में पाश्चात्य सभ्यता का भारतीय संस्कृति पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। ज्योतिष, गणित एवं आयुर्वेद के क्षेत्र में प्राचीनकाल से ही अभिवृद्धि हो चुकी थी। लेकिन ब्रिटिश शासनकाल में ही पाश्चात्य ढंग की वैज्ञानिक शिक्षा तथा चिकित्सा विज्ञान और इन्जिनियरिंग आदि का प्रबंध किया गया। इस हेतु सर्वप्रथम, कलकत्ता और बम्बई में मेडिकल कालेज तथा रूड़की में इन्जीनियरिंग कालेज की स्थापना हुई। 1876 ई में वैज्ञानिक अध्ययन की भारतीय परिषद की स्थापना हुई। जिससे वैज्ञानिक शिक्षण एवं अनुसंधान का श्री गणेश हुआ। 1890 में सर जगदीश चन्द्र बसु ने भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य आरम्भ किया। 1902 में कलकत्ता विश्व विद्यालय में विज्ञान का अध्ययन शुरू हुआ। 1911 में उद्योगपति टाटा के सहयोग से भौतिक विज्ञान एवं रसायन विज्ञान आदि विषयों में अन्वेषण एवं अनुसंधान परक शोध के लिए 'इंडियन इंस्टीटयूट ऑफ साइंस' बैंगलोर की स्थापना की गयी। प्रायोगिक अनुसंधान को समुन्नत बनाने के लिए 'इण्डियन रिसर्च फण्ड एसोसियेशन की स्थापना की गई।

विज्ञान के क्षेत्र में उपर्युक्त प्रगति से प्रेरित होकर अनेक भारतीयों ने अपने क्षेत्र में वैज्ञानिक अनुसंधान करके अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया। इन वैज्ञानिकों में प्रसिद्ध गणितज्ञ श्री निवास रामानुजम, वनस्पति विज्ञान शास्त्री जगदीश चन्द्र बोस, भौतिक विज्ञान शास्त्री चन्द्र शेखर वेंकटरमण और मेघनाद साहा के नाम उल्लेखनीय हैं। चन्द्रशेखर वेंकटरमन ने 1919 ई में नोबल पुरस्कार प्राप्त कर विज्ञान के क्षेत्र में विश्व में भारत को गौरव प्रदान कराया। विभिन्न क्षेत्रों में किये गये वैज्ञानिक अनुसंधानों के परिणामस्वरूप शिक्षा में विज्ञान का महत्त्व बढ़ गया। 1940 में भारत सरकार ने 'वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद की स्थापना की। द्वितीय महायुद्ध की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनुसंधान की समितियों का गठन किया गया, जिसके द्वारा प्लास्टिक व्यवसाय एवं रेडियो तथा अन्य उद्योगों के क्षेत्र में अभूतपूर्व कार्य हुआ।

आजादी मिलने के बाद भारत सरकार ने वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए एक पृथक विभाग की स्थापना की। एवं वैज्ञानिक परामर्शदात्री परिषद का भी गठन

किया गया। आणुविक शक्ति की खोज के लिए एक विशिष्ट समिति स्थापित की गई। इस क्षेत्र म भाभा, विक्रम साराभाई और सेठना आदि के अणु वैज्ञानिकों ने महत्वपूर्ण शोध कार्य करके विश्व में भारत के गौरव को बढ़ाया। शांतिपूर्ण कार्यों के लिए परमाणु शक्ति का प्रयोग भारत का एक कल्याणकारी कदम है। भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान के अतिरिक्त वनस्पति विज्ञान, जीव विज्ञान, भू गर्भ विज्ञान, मानव शरीर रचना विज्ञान के क्षेत्र म अनुसंधान के नये क्षितिज दृष्टिगत हुए है। इन सबके फलस्वरूप सामाजिक जीवन को सुख सुविधा से सम्पन्न किया है।

(V) यातायात के साधनो मे वृद्धि—

आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के अंग्रेजों का सूत्रपात रेल, तार डाक आदि से हुआ जो आधुनिक युग की देन है। इसके कारण दूरस्थ प्रदेशों से निकटतम संपर्क स्थापित हो गया और जनसंपर्क मे वृद्धि हुई। यातायात के साधनों की उन्नति से भारतीय सामाजिक और आर्थिक स्थिति म युगान्तकारी परिवर्तन हुए। अंग्रेजों के आगमन के बाद की अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना रेल मार्गों का निर्माण था। रेल, तार, रेडियो हवाई जहाज आदि के आविष्कार से देश, आवागमन और संचार व्यवस्था म अत्यधिक प्रगति हुई

रेल के निर्माण के कारण दुर्गम स्थान सुगम हो गये, अविकसित क्षेत्र विकसित होने लगे तथा जगह जगह औद्योगिक केन्द्र स्थापित होने लगे। पदार्थों को ऐसे स्थानों पर पहुँचाया जाने लगा, जहाँ उनका अभाव था। विभिन्न प्रांतों के निवासी परस्पर एक दूसरे के सन्निकट आने लगे और उन्ह राजनीतिक एवं सांस्कृतिक एकता की अनुभूति हुई। लोग जीविका के लिए दूर-दूर जाने लगे। जाति के बंधन शिथिल हो गये और छूआ छूत कम हुई। लोगों की कूपमंडूकता में कमी आयी। उनमें सांस्कृतिक चेतना और राष्ट्रीय एकता की भावना उत्पन्न हुई।

देश के विभिन्न भागों म पक्की सड़कों का निर्माण हुआ, जिससे मोटर और ट्रक आदि अधिक संख्या मे चलने लगे। जहा रेलों से माल नहीं पहुँचाया जा सकता था, वहा ट्रकों द्वारा पहुँचाया जाने लगा। भारत के विदेशी व्यापार की उन्नति के लिए भाप की शक्ति से चलने वाले बड़े बड़े जहाजों का निर्माण हुआ। अंग्रेजी शासन म आम लोगों को भी डाक, तार, टेलीफोन की सुविधा हो गयी, जिससे देश के व्यापार व्यवसाय और भौतिक उन्नति म बड़ी सहायता मिली।

(VI) राजनीतिक क्षेत्र मे प्रभाव

पाश्चात्य सभ्यता का सर्वाधिक प्रभाव देश की प्रशासन व्यवस्था पर पड़ा। भारत म अंग्रेजी शासन की सबसे महत्वपूर्ण देन भारत का एकीकरण है। देश के लोगों को एक राष्ट्र के रूप म सोचने के योग्य बनाया। सम्पूर्ण भारत पर एक

द्रीय शासन स्थापित हुआ। प्रान्तीय सरकारें भी थीं, किन्तु वे केन्द्रीय सरकार की ल ऐजेन्ट मात्र थी।

भारत म मौजूदा सविधान दशो मे लोकतन्त्रीय सरकार की स्थापना करता। इसके क्रमिक विकास का क्षेत्र अग्रजो की पाश्चात्य सभ्यता को जाना चाहिए। का प्रारम्भ 1857 मे हुआ और इसकी प्रक्रिया 1861, 1892, 1909, 1919 र 19·5 तक चलती रही धीरे धीरे अग्रेज सरकार ने देश के प्रशासन म भारता को अधिकाधिक भागीदार बनाया। 1947 में अग्रेजा न भारतीयो का न्तत्रीय सरकार सौंपी और उसके बाद भी यही चालू रही।

भारत म ब्रिटिश शासन की अन्य प्रमुख दन देश म ससदीय सरकार है। टिश ससद को विश्व ससदो की मा कहना उचित ही है। अग्रेजा ने भारत मे वही गू किया जो उनके देश मे था। भारतीयो को उस समय की सरकार म प्रश्न तथा क प्रश्न पूछने की अनुमति दी गई। उन्ह बजट पर विचार करने, आलोचना ने तथा रद्द करने का अधिकार दिया गया।

ब्रिटिश शासन और पाश्चात्य सभ्यता की अन्य महत्वपूर्ण देन कानून का सन है। जब अग्रेजी सस्थाओ को लागू किया गया तो देश मे कानून के शासन भी लागू किया गया। अब किसी भी व्यक्ति को गर कानूनी रूप से सजा नही जा सकती थी। कानून के सामने सभी समान थे। सरकारी नौकरा को विशेष वेधा प्राप्त न थी। यदि कोई व्यक्ति देश के कानून का उल्लघन करता था तो दण्ड दिया जाता था, चाहे उसका कोई भी पद या स्थान हो। सभी भारतीयों लिए एक ही कानून लागू किया गया। अग्रेजा के चले जाने के बाद भी भारत लोगा ने पाश्चात्य कानून व्यवस्था को ही स्वीकार किया।

भारत म वतमान शासन की प्रणाली ब्रिटिश शासन और पाश्चात्य सभ्यता देन है। देश म अग्रेजी शासन शुरू होने से पहले सरकार का काम राजा की हीं से चलता था। यदि वह योग्य होता तो सब ठीक चलते थे। परन्तु, अकुशल कमजोर शासन के अधीन सारा ढाचा ही ढह जाता था। इसका भय अग्रेज कार का हो है कि उन्हाने पद्धति वद्ध ढाचा खडा किया जो 'रोटीन' में काम ता था। हर विभाग म काम के बारे म विस्तार से सूचनाए देन के लिए लघु तकें तयार कराई गइ। किसी भी बात के बारे म दो रायें नही हो सकती थी र इस प्रकार म निरकुश कायवाही या प्रशासकीय मशीनरी फेल हो जाने के सर बहुत कम हो गए। 1947 म, अग्रेजा न जब भारत छोडा और प्रशासन को ाने का बोझ स्वय भारतीया पर पडा। देश की स्वतन्त्रता के बाद जिस ढग भारतीय अधिकारियो ने समस्याओ का सामना किया यह सब उसी की देन है।

इस तरह पाश्चात्य सभ्यता में दिक्षित लाखों भारतीय. न न केवल अंग्रेजों की तरह वस्त्र पहनना ही सीखा अपितु अंग्रेजों की तरह सोचना, बोलना, लिखना और काम करना भी सीखा उसी का परिणाम है कि यद्यपि अंग्रेज 1947 में भारत से चले गये किन्तु उनके पाश्चात्य विचार और संस्थाएं हमारे जीवन का स्थायी अंग बन गयी है।

इतिहासकार एडवर्ड थाम्पसन एवं गरेट के शब्दों में, भविष्य में चाहे जो कुछ हो, भारत पर पश्चिम का प्रभाव घटने वाला है। किन्तु यह कल्पना करना मूर्खता होगी कि ब्रिटिश सम्बन्ध भारतीय जीवन पर अपना स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ेंगे। ' कर्त्तव्य के प्रति सजगता, भ्रष्टाचारहीनता, सुधार की भावना, सामाजिक दायित्व की मान्यता को याद रखा जा सकता है और उनकी अच्छी तरह से सराहना की जा सकती है।